Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC-0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

39

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ānanda VĀRTĀ

HINDI & ENGLISH

श्री श्री आनन्दमयी संघ

ॐ मा

मातृ शरणं

Vol. XVI. January, 1969 No. 1

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रथम बार प्रकाशित

अध्यात्म-साहित्य की अनुपम कृति

श्री श्री माँ आनन्दमयी के अमूल्य उपदेशों का अपूर्व संग्रह

* अमर-वाणी *

व्याख्याकार—म० म० डॉ० श्री गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्०

• विभिन्न जिज्ञासु भक्तों के विभिन्न प्रकार के संशयों के समाधान के लिए, विभिन्न स्थान और समय पर जो उपदेश श्री श्री माँ के श्रीमुख से प्रकट हुए थे, उन सबका यथासंभव परिवर्त्तनहीन अवस्था में इस संग्रह में लिपिबद्ध किया गया है।

• श्री श्री माँ के श्रीमुख की वाणी स्वभावतः अत्यन्त सरल और सहज भाषा में होती है, किन्तु कुछ स्थलों पर साधारण पाठकों के लिए भाव समझना कठिन हो जाता है। ऐसे सभी कठिन स्थलों को श्रद्धेय महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज जी ने अपनी व्याख्या के द्वारा सरलीकृत किया है।

• श्री श्री माँ की यह वाणी वास्तव में मातृभक्तों के निकट महावाक्य के सदृश गुरुत्वसम्पन्न है। उनके श्रीमुख से निकले सभी उपदेश महावाक्यों के समान परम आप्तवचन हैं जिसमें शास्त्रों के ही निगूढ़ सिद्धान्त हैं।

* ४० पौण्ड का उत्तम कागज * माँ के दो नयनाभिराम चित्र *

*आकर्षक गेटअप और साजसज्जा से युक्त *

पृष्ठ-संख्या : ३६६ मूल्य : ६) रुपये

श्री श्री आनन्दमयी संघ

भदैनी, वाराणसी—१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Ānanda Vārtā

A quarterly journal dealing mainly with the divine life and teaching of Mata Anandamayee and with other religio-philosophical topics

❋

BOARD OF EDITORS

Mahamahopadhyaya Sri Gopinath Kaviraj, M. A., D. Litt.
Padma Vibhushan

Brahmachari Nirmalananda

Kumari Lalita Pathak, M. A.

Brahmacharini Atmananda.

Sri K. Bose,—*Managing Editor.*

❋

ANNUAL SUBSCRIPTION

India—(Postage free) Rs 6/- only
Foreign—(By Sea Mail) Rs. 10/50 or 15 shillings or $ 2·00
" (By Airmail)—Rs. 25/- or £ 1-10-0 (Europe etc.)
" " —Rs. 35/- or $ 5.50 (North & South America.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ĀNANDA VĀRTĀ

GENERAL RULES

1. The magazine is published in three separate edtions—(1) Hindi-English (2) Bengali-English (3) English. The magazine is published four times a year, in the months of January, April, July & October. The year begins from January.

2. Subscriptions are always payable in advance. Foreign subscriptions may be sent either by international Money orders or Postal orders.

3. Subscriptions to be sent to :—

The General Secretary, Shree Shree Anandamayee Sangha Bhadaini, Varanasi, (U. P.)

4. All correspondence regarding 'Ananda Varta' should mention without fail the subscription number and be addressed to :—

The Managing Editor, "Ananda Varta", Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhadaini, Varanasi, (U. P.)

5. Complaints about non-receipt of the magazine should be sent *within the month of publication.*

6. Any change of address should be intimated to the Managing Editor at the earliest possible opportunity.

7. Subscribers are requested not to dishonour any issue of the magazine sent by V. P. P., as this entails a loss to the Ashram fund. They may kindly inform us *beforehand* if they desire to discontinue subscribing to the magazine.

Published by Shri K. Bose, for
Shree Shree Anandamayee Sangha, Varanasi,
Printed at the Indian Press (Pte.) Ltd., Varanasi-Branch VARANASI.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CONTENTS

Hindi Section

1--मातृ-वाणी 1

2--मातृ-कथामृत--नीलमणि 3

3--श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग--श्री अमूल्यकुमार दत्त गुप्त एम.ए., बी. एल्. 7

4--मातृ-सत्संग— स्वामी भागवतानन्द गिरि ... 14

5—एक विवेचन: मन--हरेकृष्णदास 19

6—एक विश्लेषण :--सौन्दर्य 21

7--देहसिद्धि—महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज ... 23

8—गीतासार-तत्त्व--श्री १००८ महामण्डलेश्वर स्वामी महेश्वरानन्दजी, संन्यास आश्रम, बम्बई 32

9--अनुकम्पाधारा—श्री चरणकमलाश्रिता 42

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CONTENTS

English Section

1. Mātri Vānī 1
2. Conversations with Sri Anandamayi Ma—Prof. B. Ganguly 5
3. Matri Satsang ... —Swami Bhagavatananda Giri 10
4. A little Anthology— 16
5. Some Recent Significant Trends in Contemporary Western Psychology —Dr. B.L. Atreya M.A., D. Litt ... 21
6. Siddhas or Nathas of South India—Their Life and Thought—T. Krishnaji ... 29
7. Vaishnavadevi—A Tirtha of the Himalayas—Saroj 36
8. Matri Lila 40

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Ānanda Vārtā

"अमर आत्मा—अमर पन्थी स्वयम्—अपनेमें आप।"

VOL. XVI] JANUARY, 1969 [NO. 1

—मातृवाणी—

कुछ हुआ नहीं, यह समझना भाग्य की बात है। कुछ भी हुआ नहीं समझ सकने से तो तुम्हारी अन्तर्दृष्टि हो गई है।

× × × ×

इस तरफ आने से अभाव जागरण होता है। और भी आगे जाने से यह अभाव स्वभाव में जाने का प्रथम Stage। उनके बिना दुनिया अन्धकार। दुनिया का कोई आकर्षण ही नहीं। इस स्थिति में तुम आ गए हो—यह बात नहीं कही जा रही, उनके लिए व्याकुलता से अग्रसर होना ही।

× × × ×

सब समय तुम्हारी पाने की इच्छा, अभाव बोध रहा है। तुम साधन करते जाओ; बाकी वे ही पूर्ण कर देंगे। अखंड कृपा होने से अखंड प्रकाश। जितना करोगे उतना ही पाओगे।

× × × ×

आवरण नष्ट करने के लिए कर्म का प्रयोजन है। तुमको जो बुद्धि दी है, उसी से तुम काम करो। उनकी कृपा अहैतुकी है। क्यों कृपा नहीं कर रहे, यह उनकी मौज है। अपना ही तो—जो इच्छा करे। जहाँ हेतु रहता है, वहाँ प्राप्ति की इच्छा और फल भोग। मैंने किया है इसलिए फल भोग रहा हूँ। किसका फल? अपनी क्रिया—अपना फल। भगवान् अपने हैं, एक आत्मा। पहले यह बोध नहीं आता, इसी से प्रश्न उठता है। जहाँ खड़े हो, वहाँ से ऐसा ही दिखाई देता है।

× × × ×

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिस लाइन में ही चलो—पहले हाहाकार, व्याकुलता पाया जाता नहीं। इसके बाद—जैसे कुछ है नहीं, भीतर पाया जाता नहीं। विषय भोग भी अच्छा लगता नहीं।

× × × ×

किसी स्थिति में भी सन्तोष न आ पड़े, इसका ख्याल रखना। किसी को दर्शन, किसी को कुछ अनुभव। कोई आनन्द अनुभव करता है, सुख बोध करता है। सोचता है स्वयं ही भगवान् हो गया है।—आध्यात्मिक मार्ग में परम प्रकाश होने के पूर्व विभूतियों के मध्य अटक जाता है। इनमें अटक जाना ही विघ्न।

× × × ×

इष्ट लक्ष्य-प्राप्ति चाहिए। विभूति रूप में स्वयं। अद्वैत आत्मा—फिर द्वैत-रूप में कौन? वही तो। इस पथ पर कुछ अनुभव न होने से कोई टिक नहीं सकता। इस मार्ग में रहने का भी कोई संयोग रहा है। भगवान् ही इष्ट हैं—यह भूल कर विषय को इष्ट बना लेता है। भगवान् के सिवा दूसरे को सोचने से "दू-इष्ट" आ गए— "दुष्ट"। कब यह दुष्ट बुद्धि जायगी? अपने से ही तन्न तन्न करके विचार करना जरूरी है। विचार करके देखोगे—आज सारा दिन मैंने क्या किया? भगवच्चिन्तन के बिना कितनी देर रहा? कितनी इष्ट चिन्ता, और कितनी अनिष्ट चिन्ता—माने मृत्युगति के मध्य रहा—यह सोचना।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मातृ-कथामृत

(पूर्व्वानुवृत्ति)

नीलमणि

स्थान : रांची आश्रम   काल २०-६-६५

प्र०—आपकी अनुपस्थिति में कैसे भक्तों के इस सत्संग का फल ठीक-ठीक प्राप्त होगा ?

माँ—माँ काली, गोपाल, स्वयं शिव बैठे हुए हैं, यदि इच्छा हो इनके सान्निध्य लाभ की, तो वहाँ समस्त प्रकाश की स्थिति का स्मरण करो। चौबीस घंटे के बीच कभी-कभी सोचो, वे कभी दर्शन देना बन्द नहीं करेंगे—जान लो। सर्वदा उन्हें स्मरण रखो। शब्द नहीं, दर्शन नहीं, किन्तु उसी से सत्संग का लाभ होगा। और जब खूब मन चाहेगा, माँ काली की मूर्ति के पास बैठकर ध्यान करो। जितना अधिक ध्यान करोगे, उतना ही लाभ। माँ काली तो बैठी हुई हैं, तुम लोगों के कल्याण के लिए स्वप्न में, ध्यान में, बीच बीच में वे किसी-किसी से बात भी करती हैं। और एक बात है—यह जो कुछ है, सभी तो तुम्हारे मन के अन्दर है, इसलिए जितनी देर तक सम्भव हो, उनको मनके अन्दर देखने की चेष्टा करो। मनुष्य को भगवान्-लाभ का अधिकार है। अपने को जानो। "मैं कौन हूँ" यह जानने की चेष्टा करो। जो यह नहीं करता वह आत्मघाती है। जहाँ वासना है, वहाँ स्वरूप स्थिति लाभ नहीं होता। वासना रहते यदि शरीरपात हो जाय तो return ticket कटा कर फिर लौटना पड़ता है। विषय वासना लिए हुए शरीरत्याग को ही मृत्यु कहते हैं। विषय वासना का भोग slow poison की तरह होता है। इस poison से धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर होता है। विषय माने जो विष है और जन्म लेने के लिए जो return ticket देता है। मनुष्य जन्म लाभ करके यदि इस आने जाने का चक्कर बन्द करना चाहो तो साधना करो। विषयवासना एक के बाद दूसरी—इसी तरह जागरित होती है लता जैसे बढ़ती है, उसी तरह से विषय भोग की लता को मत बढ़ाओ।

महात्मा माने जिसकी महान् आत्मा है। जीव माने जो बन्धन के बीच में है। जगत् माने जो गति के बीच में है अथवा जिसका परिवर्तन होता है। जीव का स्वभाव है कि जौंक की तरह एक को छोड़ कर दूसरे को पकड़ता है। जीव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जगत् में ऐसा ही होता है। जन्म, मृत्यु फिर जन्म। इससे मालूम होता है कि भगवान् हमसे कितने दूर हैं। दूर बोध, दुर्बुद्धि; दुर्गति, शोक, ताप, दुःख। क्योंकि सभी तो आपेक्षिक है। पुत्र, कन्या, पत्नी—सब तो तुम्हारी अपनी इच्छानुसार रहेंगे नहीं, जब तक निरपेक्ष नहीं होगे, तब तक दुःख नहीं जायगा। दुई लेकर दुनिया, दुई लेकर दुःख द्वन्द्व, अन्धकार। फिर अंधकार में पड़ने का भय है। दुनिया का कितना ही विद्वान् वा पंडित क्यों न हो, उसे भी गिरने का भय है। कोई झूठ बोलता है तो क्रोध करते हो, किन्तु फिर स्वयं ही मिथ्या बोलते हो, तुम स्वयं तो सत्य बोलो, तुम जो सत्य स्वरूप हो। जीव स्वभाव से मिथ्या बोलता है, और सत्यस्वरूप, शुद्ध सत्य, बुद्ध, मुक्त, शान्त तुम्हारा प्रकृत स्वरूप है इसलिए तुम सत्य को चाहते हो। तुम जो ज्ञानस्वरूप हो, तभी आवरण-उद्घाटन करने की तुम्हारी इच्छा, चेष्टा, तुम वास्तव में जो हो, उसी के प्रकाश के लिए भगवान् से दूर हैं इस बुद्धि को हटाना होगा। इस दुर्बुद्धि, दुर्गति को हटाओ। यदि सौभाग्यवश किसी के मन में आए कि अपने को जानना होगा तब ही तो साधना शुरू हुई। अपने को जानो माने भगवान् को जानो—प्रभु-दास सम्बन्ध द्वारा, वा माता पुत्र सम्बन्ध द्वारा, अथवा पूर्ण-अंश, इस भाव द्वारा उनके साथ एक सम्बन्ध स्थापित करो। अग्निस्फुलिंग अग्नि का अंश है किन्तु दाहिका शक्ति दोनों में ही है, इस तरह जीव और हरि भिन्न नहीं हैं। यत्र जीव, तत्र शिव, यत्र नारी तत्र गौरी। तुम एक ही आधार में पिता, पति, पुत्र हो। इसी तरह, भगवान् स्वयं ही प्रभु और स्वयं ही दास हैं। जल, बरफ, वाष्प एक ही चीज है। निराकार, साकार सभी ब्रह्म-ब्रह्मगोपाल, उनको देखो, उनका नाम गाओ। वे ही सीताराम रूप में, राधाकृष्ण रूप में, शिव शक्ति रूप में, शक्ति-शक्तिमान के रूप में, जीवस्वभाव है पुरुष स्त्री को चाहता है; स्त्री पुरुष को चाहती है। किन्तु यदि भगवद्बुद्धि से देखो तो जीव शिव हो जायगा। भीतर बाहर एक वे ही हैं। बुद्धि के द्वारा समझने के लिए अलग अलग कहा जाता है।

कोई-कोई कहते हैं, भगवान् जहाँ हैं, रहें, मैं तो खूब मजे में हूँ। मजे से रहने से ही ठीक। यही हुई दुर्बुद्धि—दूर बुद्धि। इस दुर्बुद्धि को हटाने के लिये गुरु के निर्देश में चलो, सत्संग करो। रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध सब के बीच में उनका सत्संग करो। गुरु प्रदत्त अक्षर रूप में नाम रूप में स्वयं भगवान् हैं, उनका जप करो। अक्षर—जिसका क्षय नहीं। अक्षर रूप में भी भगवान् ही हैं। यदि अभी किसी को गुरु लाभ नहीं हुआ है तो उनका जो नाम अच्छा लगे उसका जप करे। अथवा जो ज्योति देख पाओ, उसका ध्यान करो। वह ज्योति क्या है? असली ज्योति का ही तो प्रतिरूप। उस असली ज्योति के प्रकाश से ही तो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सब आलोक का प्रकाश। सारी शक्ति सिर के अन्दर है। वहाँ उनके रूप का प्रकाश होना चाहिए। जितने अनन्त प्रकार के रूप हैं, सब उन्हीं के प्रतिबिम्ब हैं, और उनके नाम और रूप की बात क्या? जब तक नाम रूप के बीच में हो, तब तक नाम रूप ही पकड़ कर चलो। यदि नाम रूप अच्छा नहीं लगता तो आत्म-ज्योति का ध्यान करो। बाहर का उजाला उन्हीं की ज्योति है। क्रिया रूप में भी वे ही हैं। गुरुप्रदत्त क्रिया का अवलम्बन कर के चलो। जितने विग्रह हैं, वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य सब के भीतर वे ही हैं। उनको लेकर रहो।

यह शरीर यह बात नहीं कहता कि घर छोड़कर जंगल में जाना होगा। जहाँ भी जाओ, वासना रहने से, वहीं घर बस जायगा। जहाँ भी रहो, वहीं ध्यान करो, साधना करो। विन्दु-विन्दु जल पड़ने से जैसे पत्थर पर्यन्त टूट जाता है, उसी तरह अभ्यास के द्वारा उनको भी पाया जा सकता है।

गृही साधक के लिए स्त्री शक्ति रूपिणी, पुत्र बालगोपालवत् गृहस्थाश्रम में भगवान् का मैनेजर होकर काम करो। जाते समय कोई साथ नहीं जायगा। अवश्य अनेक समय देखा जाता है कि स्वामी स्त्री वा प्रेमिक प्रेमिका दोनों जन एक साथ जल में डूब कर मरते हैं। किन्तु यह मोह के फलस्वरूप शरीर की अपमृत्यु है। वे आत्मघाती हैं। ईश्वर के लिए डूबना चाहिए। मनुष्य शरीर भगवान् की दी चीज है, उसे भगवान् की सेवा में लगाना चाहिए। आत्महत्या महापाप, उससे अन्धकार और कष्ट लाभ। दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर उसे भगवान् की सेवा में लगाना जरूरी है। ऋषि पति ऋषि पत्नी ऋषि बालक—इस भाव से गृहस्थाश्रम की नीति के अनुसार ऋषिपन्था का अवलम्बन कर के चलो। जिसने संन्यास लिया है, वह संन्यास आश्रम के नियम अनुसार चलेगा।

भगवान् हमारी आत्मा, प्राणों के प्राण। वे दूर नहीं। अति निकट हैं। जहाँ भी हो, जिस भी अवस्था में हो, साधना शुरू कर दो। देरी मत करो। दूर नहीं जाना पड़ेगा। यहाँ से ही यहीं उन्हें पुकारना शुरू करो। जिनको पकड़ने से तुम माया बन्धन से रिहाई पाओगे उन्हें कस कर पकड़ो। किसी को छोड़ना नहीं पड़ेगा—केवल भगवान् को पकड़ना होगा। मोहजनित संसार बन्धन ठीक नहीं। मोहातीत होकर निर्लिप्त भाव से सेवा करो।

साधु को महात्मा कहते हो क्योंकि उन्होंने महान् को पाया है, महान् को पकड़ा है। परमात्मा माने परम आत्मा, जिसके बाद, जिसके ऊपर, जिसके बाहर और कोई नहीं। तुम्हारे अपने अन्दर परमात्मस्वरूप रहा है। जो रूप, जो स्वरूप तुम्हारी अन्तरात्मा के अनुकूल, उसी लाइन को पकड़ कर चलो। गुरु

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जैसा कहें उसी भाव से चलो। और अगर गुरु संग न हुआ हो तो जो नाम, जो रूप अच्छा लगे, मन में शान्ति लाये, उसी नाम रूप को लेकर पहले चलो।

तुमने इस शरीर को जैसा बजाया, वैसा ही पाया। जो जाता है, वह फिर आता नहीं। जो करोगे, आज ही करो, अभी करो।

प्र०—माँ ने कहा था जो छोड़ना पड़ेगा वह बड़ी बात नहीं है जो पकड़ना होगा वही बड़ी बात है। है न ?

माँ—पकड़ी हुई चीज, छोड़ी हुई चीज दोनों ही छोड़ जाती हैं। जहाँ पकड़ने छोड़ने का प्रश्न नहीं, वही स्वयं प्रकाश। जो नित्य है, उसी को पकड़ो। जिसे पकड़ने से जो करने से पकड़ने छोड़ने का प्रश्न नहीं आता, उसी को पकड़ो। वे हैं अधर वा अधरा उन्हीं को धरो। मन से उनको पकड़ा नहीं जा सकता। अ–मन होना पड़ेगा। तुम में तुम्हीं हो। इसलिये जिस धरने से (पकड़ने से) पकड़ने छोड़ने का प्रश्न नहीं रहता उसी को धरो (पकड़ो)

प्र०—मन क्षणक्षण में परिवर्तित क्यों होता है ?

माँ—मन का यही स्वरूप है। मन से ऊपर उठना होगा। उसको स्थित करने का उपाय ही तो आगे बताया गया।

यह शरीर कहीं जाता नहीं, किसी का लेता नहीं, देखता नहीं, खाता नहीं, बोलता नहीं। जैसा बजाया, वैसा बजा।

अपना देह व्रजभूमि है। यह हृदय-कमल गोकुल है। उसमें निवास करने वाले–क्षमा-दया-प्रेम-विवेक आदि सद्गुण शान्तिरूपी-मधुर दूध देनेवाली-गौवें हैं। ब्रह्माकार-निर्द्वन्द्व-शुभ-प्रवृत्तियाँ गोपियाँ हैं। श्रीकृष्ण चिदात्मा हैं। पवित्र ब्रह्मविद्या श्री राधिकाजी हैं। उनके साथ आत्माराम-श्रीकृष्ण जब रमण करते हैं तब उसे अपार -महान् सुख की प्राप्ति होती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग

श्री अमूल्यकुमार दत्त गुप्त एम० ए०, बी० एल्

पंचम खंड

अखंड महायोग की माँ साधना

इसके बाद गोपालदादा (स्व० श्रीयुक्त गोपाल चट्टोपाध्याय) ने अखंड महायोग की बात उठाई। वे माँ से बोले, "गोपीबाबू उस दिन जो बात बोले उस सम्बन्ध में मेरी कुछ जिज्ञासा है। वह सब बात क्या इतने लोगों के सामने कहूँ या एकान्त में तुम से पूछूँ ?"

माँ (मुझसे)—तुम क्या कहते हो ?

मैं—यह बात तो गोपालदादा अच्छा समझते हैं। वे क्या पूछेंगे, वे ही जानें।

गोपालदादा—मेरा यह सब कहने का उद्देश्य यह है कि अनेक लोग यह सब आलोचना सुनकर गलत धारणा लेकर जा सकते हैं क्योंकि कहा गया कि हरि दुर्गा—यह सब नाम करने से नहीं चलेगा—माँ कहना चाहिए। इससे सम्भव है बहुत लोग गलती से समझ लें कि वे क्या इतने दिन गलत रास्ते पर चले हैं।

यह सुन कर माँ ने मेरी ओर देखा। मैं बोला, माँ, तुम यदि इस सब विषय का समाधान कर दो तो लोगों की गलत धारणा लेकर जाने की सम्भावना कम है।

माँ—यह मैं नहीं कह सकती। मेरा यदि वह भाव आवे तो हो सकता है। आयगा कि नहीं, कह नहीं सकती।

उपस्थित साधुओं ने कहा कि उनकी इच्छा है कि यह सब आलोचना वहीं हो जावे। तब वे भी उसे सुन सकेंगे। वे भी वंचित नहीं होना चाहते। अन्त में माँ बोलीं,—अच्छा तो है। यहीं आलोचना हो जाय; तब भी यह बात कहे रखती हूँ कि इस सब आलोचना के बीच में यदि तुम अपने भाव का समर्थन न पाओ तो तुम उसे ग्रहण मत करना।

गोपालदादा—मेरा प्रश्न है कि गोपी बाबू जो कह रहे थे कि माँ नाम करे बिना कुछ नहीं होगा; इस "माँ" का अर्थ क्या ? जिन्होंने विश्व सृजन किया है, वे ही तो माँ ?

माँ (मुझसे)—गोपीबाबू "माँ" का क्या अर्थ करते हैं ?

मैं—माँ कहने से किसी खंड सत्ता का बोध नहीं होता। "माँ" कहने से

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काली, दुर्गा,—यह सब नहीं समझा जाता। जो सृष्टि का मूल कारण हैं वे ही माँ हैं। वास्तव में शब्द है "म"। वह आकार से युक्त होकर मा हुआ।

माँ—हाँ, बाबाजी ने ऐसा ही कहा था। प्रणव का "म" आकार युक्त होकर "मा" हुआ है। तुम लोग शब्द ब्रह्म—यह सब कहते हो न। पिता जी ने और भी कहा कि पीछे यह "मा" भी नहीं रहेगी। उस पर परमानन्द ने कहा था "तब तो यहाँ अद्वैत वेदान्त के साथ कोई विरोध नहीं।"

गोपालदादा—"मा" कहने से यदि सृष्टि का आदि कारण समझें तो यह "मा" भाव जितना हमारे अन्दर फूट उठेगा, उतनी ही हमें उसका सान्निध्य लाभ करने में सुविधा होगी। क्योंकि मा-सम्बन्ध ही आदि सम्बन्ध, भ्राता, स्वामी, पति, पुत्र सभी इस मा सम्बन्ध के साथ किसी न किसी रूप में युक्त हैं। गोपीबाबू ने क्या इसी अर्थ में मा नाम करने को कहा था?

माँ—यह प्रश्न पिताजी से ही करना अच्छा है। वह कुछ भी छिपाते नहीं। सभी कुछ स्पष्ट बोलते हैं। फिर भी एक बात है—तुम भी तो हरि पिता हरि माता इस तरह कहते हो। यदि हरि किंवा शिव को इस भाव से जगत् का आदि कारण मानो, तो फिर क्या गोलमाल है। क्योंकि ऐसा करने से मा भाव तो तुम्हें हरि में भी मिल गया। पूर्ण के अन्दर तो समस्त भाव ही हैं।

फिर हरि, दुर्गा, काली—यह सब अलग-अलग तत्त्व के हिसाब से भी माने जाते हैं। अलग-अलग तत्त्व के हिसाब से इनकी साधना धारा भी अलग है। खंड हिसाब से देखने से यह सब धाराएँ भी अनन्त हैं। इसी तरह मा साधना की एक अलग धारा भी हो सकती है क्योंकि पूर्ण के मध्य यह है, यह नहीं है, यह बात कही नहीं जा सकती। वास्तव में सभी इतना सुन्दर है। उस अवस्था में कुछ भी छोड़ा नहीं जाता—सभी सत्य।

तुम लोग प्राण की साधना की बात कहते हो। फिर मन की साधना भी हो सकती है। मन का कुछ-कुछ प्रकाश है और कुछ-कुछ अप्रकाश। इस अप्रकाश मन का विकास करने की चेष्टा भी एक प्रकार की साधना है। पिताजी ने उस दिन कहा था न कि यह मन ही मा है। फिर जो लोग साधना की एक निर्दिष्ट धारा लेकर अग्रसर हुए हैं, जैसे कृष्ण साधना वा काली साधना, वे जब तक पूर्णत्व तक नहीं पहुँचते हैं, तब तक कह सकते हैं कि शास्त्र में मा साधना की कुछ भी बात नहीं पाई जाती। इस स्थान पर खंडभाव से देखने से साधना का विषय अनन्त जो अनन्त वह क्या लिखकर, कहकर शेष किया जा सकता है। शास्त्र में नहीं लिखा कहने से ही वह असत्य नहीं होता। कलकत्ते से काशी आने में कितनी ही जगह बीच में आती हैं। वे सब क्या टाइम टेबिल में है? फिर भी जो सदा जाग्रत भाव से

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कलकत्ते से काशी पर्यन्त आता है, वह सब स्थान ही देख सकता है। ऐसे ही जिसने पूर्ण सत्य पाया है, वह देखता है कि सभी सत्य है। और भी देखो जों हरि किंवा शिव की साधना करते हैं, उन्हें जैसे कई नियम पालन करने पड़ते हैं, वैसे ही इनके (अर्थात् गोपीबाबू के भी) कई एक नियम हैं जैसे यह लोग क्षण पकड़ कर माँ नाम करते रहते हैं। सर्वदा माँ नाम स्मृति के मध्य में रहने की चेष्टा करते हैं। इसलिये तुम्हारी साधना से इनमें विशेषत्व कहाँ है ? खंड भाव से देखने से सत्य भी अनन्त। यह हुई एक तरफ की बात।

और यदि कल्पना के राज्य में आओ तो कल्पना का अन्त नहीं। कल्पना के रूप में कितना कुछ फूट उठता है, कौन इसका शेष देख सकता है ? और मजे की बात यह है कि सत्य के प्रकाश के बीच जैसे एक प्रकार का तेज प्रकाश पाता है, वैसा ही तेज कल्पना के राज्य में भी देखा जाता है। किसी सत्य वस्तु को प्राप्त करके, कोई-कोई उसका प्रकाश करते समय, खूब तेज के साथ बोलने लगता है। इसमें कोई दोष नहीं होता क्योंकि यह तेज उस सत्य के अन्दर स्वभावतः ही है। किन्तु कोई काल्पनिक वस्तु प्रकाश करते समय जिस तेज का प्रकाश होता है वह अनेक समय अहंकार से होता है। यह क्षति का कारण होता है। कौन सा सत्य का वास्तविक तेज और कौन अहंकार जनित तेज, वह जों पकड़ सकता है, सहज ही में पकड़ लेता है। किसी दूसरे के पक्ष में यह समझना बूझना खूब ही कठिन है।

मैं—सत्य एवं कल्पना के बीच में क्या पार्थक्य है ? कल्पना में क्या सत्य का कोई आभास नहीं ?

माँ—यह दोनों भिन्न स्तर की बातें हैं। कल्पना है मन का व्यापार—क्योंकि मन से ही तो लोग कल्पना करते हैं। सत्य का स्तर अलग है। इसमें बहुत बातें हैं। इस समय वह होगीं नहीं।

मैं—तुमने एक दिन कहा था कि जो सत्य नहीं, उसकी कल्पना भी नहीं की जाती।

माँ—हाँ।

मैं—उसके उत्तर में मैंने कहा था, "क्यों ? घोड़े का अंडा", उस पर तुम ने कहा था कि ऐसे भी लोग हैं जो घोड़े का अंडा कहने से फिर उसे दिखा भी सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्ततः कल्पना के हिसाब से वह सत्य है। ध्यान का समय निकल गया है देखकर श्रीमान भूपेन उठ खड़े हुए। यह देखकर माँ बोलीं, "यह सब आलोचना अन्य समय होगी। इस समय नित्यकर्म हो।" इसलिए कमरा अंधेरा करके दस मिनट ध्यान चला। उसके बाद फिर मेरे प्रश्न को

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उठाकर कहने लगीं, "उस समय कह रही थी कि ऐसे लोग हैं जो घोड़े का अंडा दिखा सकते हैं। वास्तव में यदि सोचो कि एक मात्र सत्य ही है और कुछ नहीं तो उस अवस्था में कल्पना का स्थान नहीं। तब जो कल्पना की जाती है वह सत्य हो जाती है। तुम लोग क्या नहीं कहते हो कि यह जगत् ईश्वर की कल्पना है? फिर कल्पना और सत्य के बीच में पार्थक्य है; जैसे हरिद्वार बिना गए किसी ने उस स्थान की एक कल्पना कर ली। पीछे जब वह हरिद्वार गया तो उसने देखा कि हरिद्वार वास्तव में वैसा नहीं जैसा उसने कल्पना की थी। यहाँ देखो कल्पना सत्य से भिन्न है। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर संक्षेप में देने के लिए इस समय ऐसे बोलो।

इसके बाद हम सब उठ खड़े हुए। श्री श्री माँ आहार करने गईं।

२२-१२-४८—आज सवेरे आश्रम नहीं जा सका। खुकुनी दीदी आज कलकत्ते आई हैं। बन्धुवर मनमोहन वेलडांगा से दीदी के साथ आए हैं। वे श्री श्री माँ के आदेश से ही वेलडांगा गए थे और माँ के आदेश से ही वहाँ से आए हैं। शाम को गीता की व्याख्या के समय उपस्थित था। गोपालदादा ने आज कर्म योग पर वक्तृता दी। सन्ध्या कीर्तन के बाद आज भी फिर सदालोचना आरम्भ हुई। गोपालदादा ने ही प्रसंग उठाया।

सत्य एवं कल्पना

गोपालदादा बोले, "कल जो सत्य एवं कल्पना के सम्बन्ध में तुमने कहा उसमें थोड़ा गोलमाल रह गया, क्योंकि सत्य के साथ यदि कल्पना युक्त हो जाय तब तो अनेक समय मुश्किल हो सकती है।

माँ—सत्य तो सत्य ही है और कल्पना तो कल्पना ही।

मैं पीछे बैठा था। शंकरानन्द स्वामी जी ने मुझसे माँ के सामने बैठने को कहा। मैंने थोड़ी आपत्ति की किन्तु स्वामी जी और खुकुनी दीदी के जोर देने पर, माँ के सन्मुख जाने को बाध्य हुआ। कल माँ ने सत्य और कल्पना के सम्बन्ध में जो कहा था, उस सम्बन्ध में मेरा भी कुछ जिज्ञास्य था। मैंने माँ से कहा, "माँ, तुम जो आज कह रही हो, और कल जो तुमने कहा था—उन दोनों के बीच में ढूँढ़ कर कोई सामंजस्य नहीं पाता।

माँ—आज तो कल नहीं है। कल की बात कल हुई थी और आज की बात आज है। मैं कब क्या कहती हूँ, उसका क्या ठीक है?

मैं—कल्पना और सत्य यदि अलग हों, तो यह बात सत्य कैसे हो सकती है कि जो सत्य नहीं उसकी हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—तुम कल्पना को क्या कहना चाहते हो ?

मैं—यदि कहूँ कि कल्पना सत्य की छाया है ?

माँ—कल मैंने कहा था कि एक ऐसी अवस्था है जहाँ कल्पना भी सत्य है–जो सत्य संकल्प हैं, वे जो कल्पना करेंगे उसका सत्य होना बाध्य है। इस जगत् को तुम ईश्वर की कल्पना कहते हो न ? इस अर्थ में कल्पना सत्य–अन्यथा कल्पना और सत्य अलग-अलग—अर्थात् जो सत्य है वह सत्य है, जो कल्पना है वह कल्पना। कल्पना जो अनेक समय सत्य नहीं होती, यह भी तुम समझ सकते हो। जैसे मैंने कल कहा था कि हरिद्वार के सम्बन्ध में जो तुमने कल्पना की, हरिद्वार जाकर देखा वैसा नहीं है। दर्शनादि के सम्बन्ध में तुम लोग अनेक समय कल्पना करते हो पर जब वास्तविक दर्शन होता है तब तुम्हीं कहते हो कि यह रूप होगा इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सके। इसीलिए कहा जाता है कि जो सत्य है—वह सत्य ही है। फिर कल्पना के स्तर पर कल्पना सत्य है। जैसे रोशनी का प्रकाश होने पर छाया नहीं रहती, वैसे ही सत्य का प्रकाश होने पर कल्पना नहीं रहती।

इसके बाद स्वामी शंकरानन्द बताने लगे कि माँ कैसे प्रणव उच्चारण करती थीं। वे बोले, 'शास्त्र' में कहा है कि स्त्रियों को प्रणव का अधिकार नहीं इसीलिए माँ "हरि बोल-हरि बोल" उच्चारण करते-करते शेष में प्रणव उच्चारण करती थीं। यह सुनकर माँ बोलीं, यह "बोल" ही ॐकार हो जाता था। वास्तव में इच्छा करके उच्चारण करती थी ऐसा नहीं था। प्रणव ठीक-ठीक उच्चारण करने से शरीर की जो अवस्था होती है, वह हो जाती थी। यह जैसे मशीन की तरह ठुक् ठाक् करके सब अपने आप हो जाता था। और मैं केवल देखती जाती थी। प्रणव वा जिसको तुम शब्द ब्रह्म कहते हो और जो वर्णमाला कही जाती है, वह सब वास्तव में सत्य हैं। एक-एक स्तर में यह देखे जाते हैं। सभी कुछ जो है, किसको मिथ्या कह कर फेंक दूँगी। अवस्था भेद से सभी सत्य। और मजा यह कि वही-वही अवस्था प्राप्त होने से इन सबका प्रकाश भी हो जाता है। फिर प्रकाश के भी प्रकार हैं। ऐसी अवस्था भी है जब मन में आता है कि यही शायद समग्र सत्य है और इसके बाहर और कोई सत्य नहीं। और ऐसी भी अवस्था है जहाँ सब कुछ सत्य है इसका प्रकाश होता है।

मैं—माँ, यह जो तुमने प्रकाश की बात कही वह क्या सत्य और कल्पना इन दोनों क्षेत्रों में ही समान होती है, प्रकाश से तो हम लोग सत्य का ही प्रकाश समझते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—हाँ, सत्य का भी प्रकाश होता है। और कल्पना का भी प्रकाश हो सकता है। यदि कोई कल्पना लेकर एक लक्ष्य हो जाय, तो वहाँ सत्य का प्रकाश होगा ही। जिसे लेकर एक लक्ष्य होगा, वहीं सत्य का प्रकाश होगा। क्योंकि सकल स्थान में सत्य है। न फिर भी याद रखना यदि सत्य के साथ द्वन्द्व (अर्थात् सन्देह) रहे तो द्वन्द्व काट कर सत्य प्रकाश होता है; किन्तु यदि कल्पना के साथ द्वन्द्व रहे तो कुछ भी प्रकाश नहीं होगा। द्वन्द्व को काटने की सामर्थ्य सत्य में है। किन्तु कल्पना में वह नहीं है। अब कल्पना और सत्य में क्या पार्थक्य है, समझे ?

मैं—हाँ माँ, समझा

इसी समय खुकुनी दीदी माँ को आहार कराने के लिये लेने आईं। आलोचना बन्द हो गई। हम भी प्रणाम करके उठ आए।

२३-१२-४८ वृहस्पतिवार। आज दोपहर को गोपीबाबू ने सपरिवार प्रसाद ग्रहण किया किन्तु आज गोपीबाबू के साथ किसी विषय में आलोचना नहीं हुई। शाम को गोपालदादा ने गुरुतत्त्व के सम्बन्ध में वक्तृता दी। रात को ८ बजे कीर्तन शेष होने पर सदालोचना आरम्भ हुई।

स्वामी शंकरानन्द के साथ श्री श्री माँ का प्रथम साक्षात्कार

स्वामी शंकरानन्द श्री श्री माँ के साथ अपने प्रथम साक्षात्कार की बात करने लगे। स्वामी जी बोले; "आनन्दमयी माँ काशी में हैं सुनकर गोपीबाबू और मैंने उनसे मिलने का निश्चय किया। पर जाकर देखा माँ समाधिस्था। तीन दिन माँ समाधिस्था थीं।" शेष दिन बाबा भोलानाथ जोर करके सचेतन करने की चेष्टा में लगे।" स्वामी जी के इतना कहने तक श्री श्री माँ हँसकर कहने लगीं, "वे लोग समाधि छुड़ाने के लिये क्या चेष्टा नहीं करते थे। वे लोग कान के पास इतने जोर से चिल्लाते थे कि उससे कान का पर्दा फटकर जो मैं बहरी नहीं हुई—यही आश्चर्य मालूम होता है।"

गोपाल दादा—बधिर जो नहीं हुईं—यह हमारा भाग्य। एक तो ऐसे ही प्रश्न करके उत्तर नहीं मिलता। बहरे होने से तो कोई बात ही नहीं थी (सब हँसते हैं)।

माँ—कान के पास जोर से चिल्लाने के अतिरिक्त वे और भी एक काम करते थे। मेरा मेरुदण्ड इतने जोर से रगड़ते थे कि दूसरे दिन देखा जाता कि वह फूल गया है और दर्द के कारण छुआ नहीं जाता। वे सोचते थे ऐसा करने से ही शायद समाधि भंग होती है। वास्तव में तो समाधि जब भंग होनेवाली थी तभी भंग होती। बीच-बीच में समाधि टूटने और उन लोगों के ऐसा करने में आकस्मिक योगायोग होने से यह लोग सोचते कि समाधि भंग करने का एकमात्र यही उपाय है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वामी शंकरानन्द—जो हो, बाबा भोलानाथ की धक्का धक्की से जब माँ कुछ-कुछ सचेतन हुईं तो बाबा ने हम लोगों से प्रश्न करने को कहा। मैंने गोपीबाबू से कुछ पूछने को कहा पर गोपीबाबू ने प्रश्न करने का भार मेरे ही ऊपर दिया। तब मैंने माँ से पूछा, "माँ, तुम हमें कैसे देखती हो।" माँ तब भी अच्छी तरह बोल नहीं सकती थीं। जिह्वा जड़ित थी। तब भी उत्तर दिया, "तुम ही तो मैं।" उत्तर सुनकर हम अवाक् हो गए। सोचा यह तो मूर्तिमती श्रुति हैं।"

(क्रमशः)

एक बार एक विद्वान् किसी राजा के समीप किसी उत्तम कार्य के लिए धन की याचना करने गये। राजा ने उनसे कहा—'कल देंगे।'

रात्रि में राजा वेश परिवर्तित करके एक भड़भूजे की दूकान पर गया। वहाँ रात भर उसने भाड़ झोंकने की मजदूरी की। मजदूरी के उसे चार पैसे मिले। उन्हें लेकर राज-भवन लौट आया। दूसरे दिन वे विद्वान् राजा के समीप आये तो राजा ने बड़े आदर से उन्हें वे चार पैसे देकर कहा—'मेरे पास तो बस इतना ही धन मेरा है। शेष कोष तो प्रजा का है। हम उसके केवल संरक्षक मात्र हैं।

उस विद्वान् ने राजा के संकोच के कारण पसे ले लिये परन्तु मन में क्रोध के कारण वे चारों पैसे उन्होंने फेंक दिये। उन पैसों में से एक पैसा कल्पवृक्ष बना, एक कामधेनु बना, एक चिन्तामणि बना और एक कल्पलता बना।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ ॐ माँ ॥

मातृ-सत्संग

(४७)

श्री स्वामी भागवतानन्द गिरि

ता० २४ जनवरी १९४८ पौष शुक्ला त्रयोदशी, २००४

स्थान :—श्री श्री माँ आनन्दमयी आश्रम, अष्टभुजा हिल्स–विन्ध्याचल (उ० प्र०)

परमकृपामयी माँ के आदेश से मैं कल प्रयाग से काशी होकर माँ के विंध्याचल आश्रम में आया हूँ। इसलिये माँ के ता० २३ जनवरी १९४८ के सत्संग का वर्णन नहीं लिख सका हूँ।

माँ आज विन्ध्याचल आश्रम में पधारी हैं। माँ ने कल मुझ को काशी आश्रम में भेजा था क्योंकि विन्ध्याचल आश्रम में श्री श्री काली पूजा होने वाली है; इसलिये काशी से मैं श्री श्री काली माँ का विग्रह और पूजा के बर्तन इत्यादि लेकर आ गया हूँ। माँ आज दोपहर को ३॥ बजे प्रयाग से विन्ध्याचल आश्रम में पधारी हैं। माँ के शुभागमन से आश्रम में सर्वत्र आनन्द से परिपूर्ण वातावरण बन गया है। आश्रमवासियों ने माँ का बहुत सुन्दर आनन्दपूर्वक स्वागत किया। माँ ने आश्रम में आते ही आश्रम का निरीक्षण (Inspection) शुरू कर दिया है। घूमते-घूमते माँ ऊपर अपने कमरे के बरंडा में गईं। माँ के साथ आठ, दश मातृ भक्त लोग भी ऊपर घूम रहे हैं। विन्ध्याचल आश्रम—अष्टभुजा पहाड़ के ऊपर है। माँ का कमरा ऊपर है। माँ के कमरे की चारों तरफ बहुत बड़ा-बड़ा बरन्डा है। चारों तरफ सुन्दर प्राकृतिक दृश्य दीख रहा है। उत्तर तरफ दूर में श्री गंगा माँ सुन्दर और शान्त रीति से प्रवाहित हो रही हैं। माँ ऊपर आकर चारों तरफ घूम-घूमकर प्राकृतिक दृश्य देख रही हैं। माँ इस स्थान की बहुत प्रशंसा कर रही हैं। माँ ने कहा,—"विन्ध्याचल आश्रम की वायु में नीरवता मालूम हो रही है। यहाँ मनुष्य लोक रहते हैं तब भी—स्थान निस्तब्ध मालूम पड़ता है। यहाँ की वायु भी तरंगमयी है। ऐसा मालूम होता है कि वायु यहाँ हर समय नृत्य करती है।" माँ के साथ में स्वामी दिव्यानन्दजी भी आये हैं। उनको भी यह स्थान खूब पसन्द आया है। माँ अपने भक्तों के साथ चारों तरफ विशाल प्राकृतिक दृश्य के आस्वादन में मुग्ध होकर तन्मय हो गयी हैं। चारों तरफ प्रकृति ने सुन्दर हरा-हरा गलीचा बिछा दिया हो ऐसा मालूम होता है। यह दृश्य देखकर माँ ने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहा,--महेश भट्टाचार्य ने इस शरीर को कहा था कि माँ, देखो भगवान् ने कैसा सुन्दर बगीचा, बिना पैसा खर्च किये, बिना परिश्रम--कैसा सुन्दर बगीचा बनाया है ? कैसा सुन्दर लग रहा है ? कथा प्रसंग में माँ ने कहा,—"ऐसा सुना है कि भूतकाल में यहाँ एक बहुत बड़ा विराट मन्दिर था। उस मन्दिर का नाट्य मन्दिर (Hall) इतना बड़ा था कि कितने ही राजा लोग अपने सैन्य के साथ नाट्य मन्दिर में खड़े रहकर दर्शन कर सकते थे। यह स्थान एक पवित्र शक्तिपीठ है। यहाँ तीन मन्दिर--त्रिकोणाकार में है। एक काली माँ का मन्दिर है--दूसरा अष्टभुजा का मन्दिर है और तीसरा मन्दिर--श्री श्री विन्ध्यवासिनी जी का मंदिर है। इस आश्रम के सामने यह जो बड़े-बड़े पत्थर पड़े हैं वहाँ एक बार यह शरीर घूमने गया था। इस शरीर के साथ एक डॉक्टर भी थे। इन पत्थरों में से एक पत्थर का कटोरा जैसा एक पत्थर मिल गया। उस पत्थर के कटोरा को स्वामी शंकरानन्द जी व्यवहार करते थे। डॉक्टरों ने उस पत्थर के कटोरे की जाँच की तो पता चला कि यह कटोरा पत्थर का नहीं है लेकिन--यह तो मनुष्य की हड्डी का है। हजारों वर्ष पहले किसी महात्मा को समाधि दी होगी उसके शरीर की यह हड्डी है। यह हड्डी ही बहुत लम्बे समय के प्रभाव से पत्थर के रूप में परिणत हो गई है। जिन महात्मा की समाधि से यह हड्डी निकली थी वे महात्मा एक बार माँ के पास में ज्योतिर्मय शरीर से आये थे। माँ के साथ कुछ वार्तालाप भी हुआ था। माँ के साथ उनकी क्या बातें हुई वो तो माँ जाने ! माँ के पास से सुना है कि माँ के साथ ज्योतिर्मय शरीर से मुलाकात होने के बाद उनकी ऊर्ध्वगति हो गई है।

शाम का समय हुआ है। सूर्यदेव अस्ताचल पर जा रहे हैं। मातृ दर्शन के लिये बाहर से कई भक्त लोग आये हैं। माँ उत्तर तरफ के बरन्दा में बैठीं हैं। माँ के सामने मातृ भक्त लोग भी बैठे हैं। किसी भाई ने माँ से प्रश्न किया।

प्र०--भगवान् को प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिए ?

माँ--भगवान् को प्राप्त करने के लिये खूब व्याकुल होकर पुकारना चाहिए। बिना व्याकुल हुए भगवान् नहीं मिलता है। भगवान् के त्याग में ही सब से बड़ा दुःख है, भगवान् के बिना जहाँ जाओगे वहाँ सिर्फ दुःख ही मिलेगा। पशु, पक्षी भी मनुष्य के मुताबिक खाता है, पीता है, सन्तान उत्पन्न करता है और बच्चों का पालन करता है। यदि मनुष्य भी—ऐसा सब से बड़ा दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर भी अपना असली घर--माँ के स्वरूप साक्षात्कार या तो भगवत् प्राप्ति को नहीं करता है तो फिर पशु और मनुष्य में क्या फर्क है। पशु पक्षी भी खा पीकर दिन व्यतीत करता है। भगवान् को पाने के लिये कोशिश करो। यदि कोशिश

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं करोगे तो मन उदास रहेगा ही। मन स्वभाव से ही चंचल है। जिनको प्राप्त करने से मन स्थिर हो ऐसा करना चाहिए। जैसे छोटे-छोटे बच्चे लोग सारा दिन खेल कूद पसन्द करते हैं वैसे मन भी खूब चंचल रहता है। इसलिये मन कों वश में करने की कोशिश करो। जब तक गुरु की प्राप्ति न हो तब तक 'तत्' भाव से रहने की कोशिश करो।

प्र०—भगवान् का भजन करना तो अच्छा नहीं लगता—क्या किया जाय ?

माँ—भगवान् का भजन करना अच्छा लगे वा न लगे—अच्छा लगाना ही पड़ेगा। इस जगत में दो रास्ते हैं—एक है श्रेय का रास्ता और दूसरा है प्रेय का रास्ता। श्रेय की तरफ ही चलना पड़ेगा। यह वस्तु खाने का खूब मन ललचाता है—और इसे यदि ज्यादा खा लिया तो पेट खराब होगा। जों वस्तु श्रेष्ठ हों उससे प्रेम करों। श्रेय को ही प्रेम करना पड़ेगा। जैसे किसी मनुष्य को रोग होता है और वह दवा खाना चाहता नहीं है तब हम लोग जवरदस्ती करके दवा खिलाते हैं। ठीक ऐसे ही भगवान् का भजन अच्छा लगे या न लगे भगवान् का भजन अवश्य करना ही चाहिए। भगवान् रूपी परम धन का तुमने त्याग किया है। उसको फिर से प्राप्त करना ही पड़ेगा। तुम लोंग क्या श्रीमद्भागवत की कथा सुनते हो या पढ़ते हो? एक बार पाप ने भगवान् से प्रश्न पूछा—"हे प्रभु ! आप ने सब लोगों का स्थान ठीक कर दिया है लेकिन मेरा स्थान आप ने कहाँ रखा है ?" भगवान् ने कहा, "जहाँ भगवान् की कथा न होती हों वहाँ जाकर रहेगा।" भगवान् को प्राप्त करने की कोशिश करो। जब जब तुम से जो कुछ कर्म होता है वह उनकी पूजा ही है ऐसा समझ कर कर्म करना चाहिए। जो कुछ कार्य हो वह भगवत् बुद्धि से करो। तुमको जैसे अच्छा लगे—वैसा भावपूर्वक भगवान् का भजन करना चाहिए। (बोलते बोलते माँ की आवाज धीमी पड़ गयी) कोशिश करनी ही पड़ेगी। भगवान् का भजन करना अच्छा नहीं लगता है ऐसा कहकर श्रेष्ठ वस्तु को क्या फेंक दोगे ?

प्र०—हम लोगों को भगवान् का अभाव मालूम ही नहीं पड़ता है।

माँ—अभाव हो जाये उसका अभाव करो। जैसे धन का अभाव होने से मनुष्य धन की आकांक्षा करता है वैसे अभाव के अभाव की इच्छा रखो। अभाव के अभाव को जागृत करने से तो अभाव की ही वृद्धि होवेगी।

आत्मस्वभाव के अभाव की जागृति करो। भगवान् के अभाव को जागृत करने की आवश्यकता है।

जैसे मनुष्य को रोग होने से डॉक्टर के पास दवा लेने के लिये दौड़ता है ठीक वैसे ही भवरोग के लिये भगवान्रूपी डॉक्टर का औषध लेना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

औषध लेने के समय जैसा नियमित होता है—भगवान् के भजन के लिये भी समय नियमित करो। निश्चय करो कि २४ घन्टे में से इतना समय मैं भगवान् के भजन में लगाऊँगा। हाथ से जो कुछ कर्म करते हो–वह सब कर्म 'तत्बुद्धि' से भगवान् की सेवा समझ के करते रहो। तत्बुद्धि से सबको भगवान् समझकर प्रणाम करो। भगवान् से प्रार्थना करो कि, "हे प्रभु ! मैं तुम्हारा हूँ। मैं तुम्हारा यंत्र हूँ और तुम मेरा यंत्रज्ञ हो"। रात को सोते समय समस्त अच्छे बुरे कर्मों को भगवान् के श्री श्री चरणकमलों में समर्पण कर दो। सुबह में उठते समय भी भगवान् के श्री श्री चरणकमलों में प्रणाम करो। छोटे-छोटे बच्चों को भी भगवान् को प्रणाम करने के लिये सिखाना चाहिये।

सायंकाल का समय है। माँ भक्तों के साथ पैदल ही पहाड़ पर घूमने के लिये निकली हैं। घूमते-घूमते 'माँ' श्री महेशचन्द्र भट्टाचार्य के भजनालय की तरफ गई हैं। इधर-उधर घूम के भजनालय के कम्पाउन्ड में स्थित पंचवटी का माँ निरीक्षण कर रही हैं। माँ का वहाँ बैठने का ख्याल होने से हम लोगों ने वहाँ थोड़ा बैठने की जगह साफ करके माँ को आसन पर बैठाया। वहाँ बैठकर भिन्न-भिन्न प्रसंग पर माँ बोल रही हैं। कथा प्रसंग में माँ ने कहा—"एक दफे यह शरीर विन्ध्याचल आश्रम में था। यहाँ पर एक सुन्दर आम का बहुत बड़ा वृक्ष था। उसी वृक्ष से किसी व्यक्ति ने उस पेड़ से आम के पुष्पों को इस शरीर को खिलाया। इस घटना के कुछ दिनों के बाद देखा गया कि इतना बड़ा वृक्ष अपने-आप चार टुकड़ों में विभक्त होकर गिर पड़ा। जैसे मनुष्य के ब्रह्म रंध्र से जीवात्मा निकलने से मनुष्य मर जाता है—ठीक वैसे ही इतने बड़े वृक्ष से जीवात्मा निकल जाने पर वृक्ष गिर पड़ा। इस आम के पेड़ की लकड़ी को आश्रम की यज्ञशाला के लिये रखा गया। इस आम की लकड़ियों में से एक लकड़ी के टुकड़े को इस शरीर ने कमलाकान्त को रखने के लिये दे दिया। जब काशी आश्रम में १४ जनवरी १९४७ में एक करोड़ गायत्री मंत्र का अखंड महायज्ञ शुरू हुआ तब सबसे प्रथम इस आम की लकड़ी के टुकड़े से शुरू हुआ था। इस लकड़ी के द्वारा ही प्रथम अग्नि प्रगट की गई थी।

प्र०—माँ, इस वृक्ष के रूप में कोई महात्मा ही होगा क्या ?

माँ—निश्चय ! कितना सुन्दर। उनके शरीर का सारा अंग यज्ञ के लिये काम में आ गया।

पंचवटी में जब हम सब लोग माँ के पास बैठे थे तब सूर्यदेव धीरे-धीरे अस्ताचल पर जा रहे थे। आज सब मातृ भक्तों के हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो रहे हैं। सब लोग माँ के दिव्य मुखमंडल पर अपनी-अपनी दृष्टि को रखकर बैठे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। माँ ने कहा—"कितना सुन्दर है ! यहाँ जिस-जिस को आना था वे ही आये हैं। एक ज्यादा भी नहीं और कम भी नहीं। जिस समय जो होना है वही होता है। इसके बाद स्वामी दिव्यानंदजी ने माँ के सामने स्तुति, स्तोत्र का गान किया। निःशब्द वातावरण हो रहा है। सब लोग अपने-अपने इष्टदेव के चिन्तन, ध्यान में मग्न होकर माँ के सान्निध्य में बैठे हैं। सबके हृदय में अपार आनन्द हो रहा है। पंचवटी जैसे पाँच पवित्र वृक्षों के नीचे जगत जननी परम करुणामयी माँ के सान्निध्य में बैठकर जप ध्यान करने में किसको आनन्द का अनुभव नहीं होगा ?

आज रात को यहाँ श्री श्री काली पूजा का कार्यक्रम है। माँ का कोई भक्त यह विशेष श्री काली पूजा करा रहे हैं। श्री श्री माँ काली की सुन्दर प्रतिमा तैयार होकर काशी से आई है। पूजा करने के लिये काशी के प्रसिद्ध पंडित विशुदा पधारे हैं। पूजा मंडप को भी सुन्दर रीति से सजाया गया है। रात को नव बजे के बाद श्री श्री काली माँ की पूजा आरम्भ हो गई है। माँ की पवित्र उपस्थिति में पूजा होने लगी है। पूजा के समय स्वामी दिव्यानंदजी ने श्री श्री काली कीर्तन, श्यामा संगीत इत्यादि सुन्दर सुस्वर से गाकर सबका आनन्दवर्धन कराया है। प्रायः रात को १॥ बजे के समय पूजा पूरी हो गई। पूजा पूरी होने के बाद प्रसाद वितरण हुआ।

(क्रमशः)

——

एक मनुष्य ने भंग पी और अपने बच्चे को कन्धे पर बैठाकर भीड़ में मेला देखने गया। वहाँ वह थोड़ी देर में चौंका। आगे-पीछे देखा कि बच्चा नहीं है। भंग के नशे में चूर मेले भर भटकता फिरा। मुनादी वाले को पैसे दिये। नगर में बच्चे खो जाने का ढिंढोरा कराया। घर लौटा तो द्वार में प्रवेश करते समय झुका नहीं। कन्धे पर बैठे बच्चे को चौखट की चोट लगी। वह रो पड़ा। वह चौंका—'अरे ! तू मेरे कन्धे पर है ?'

आत्मा स्वयं प्रकाश—नित्य प्राप्त है। अज्ञान के कारण अप्राप्त जैसा प्रतीत होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक विवेचन : मन

हरे कृष्ण दास

"मनुष्य अपने मन को ऐसे ही दोष देता है। असल में तो मन का कोई दोष नहीं है। क्योंकि मन को हम जिधर लगायें उधर ही लगेगा। मन को शास्त्र में महा चंचल तथा दुर्निग्रह बताया गया है। ऐसे मन को काबू में लाने के लिए आर्ष-शास्त्र में बहुत सारे कौशल तथा युक्तियाँ बताई गई हैं। उनमें यह भी एक युक्ति है—कि मन मनाया जाय, न कि 'मन को मना किया जाय।' मन को साधना के पहले स्तर में बलात् रोकने की कोशिश करने से मन और भी उद्दण्ड और उपद्रवी बन जाता है। द्रष्टाभाव से—साक्षीभाव से जब हम उसे देखने लगते हैं तो वह अपने आप उछलना-कूदना बन्द कर शान्त हो जाता है।

एक राजा ने एक साथ कई अरबी घोड़े खरीदे, उन्हें खूब अच्छी तरह से खिला-पिलाकर प्रबल बनाकर इस बात की घोषणा कर दी कि जो कोई घुड़-सवार इन घोड़ों पर सवार होकर तीस मील घेरे में चक्कर काटकर राजधानी में पहले वापस आयेगा उसे सिपहसालार बना दिया जायेगा। इसे सुनकर बहुत से घुड़सवार इस आशा में आगे तो आये, लेकिन किसी की इतनी हिम्मत न होती थी कि उन घोड़ों पर सवारी करे—क्योंकि वे घोड़े इतने उद्दण्ड और चंचल थे कि वे किसी के भी काबू में नहीं आते थे। इधर राजा ने एक दिन निश्चित कर दिया और सात सवार घोड़े पर सवार होकर निकले। कई एड़ी लगाते घोड़े को भगाते गिरते-चढ़ते, लहुलूहान हो थक कर चूर हुए आये। आते ही गिर पड़े। उनमें उस समय बात करने की भी शक्ति नहीं रही। पर एक घुड़सवार घोड़े के ऊपर सवार न होकर घोड़े के साथ-साथ चलता रहा। जहाँ घोड़ा रुकता था वहीं रुक भी जाता था और जहाँ वह सवार घोड़े का रुख शान्त देखता चढ़ भी जाता था। समय पर घोड़े को हरी-हरी घास भी खिलाया था। धीरे-धीरे उस सवार के साथ घोड़े का गहन परिचय हो गया। घोड़े को निश्चय हो गया कि यह सवार मेरा प्रहरी है। मेरा मित्र है, इस कारण घोड़ा स्वयं सवार के अधीन हो गया। सवार भी उसे प्रेम से खिलाता-पिलाता घोड़े के पीछे-पीछे चलता था। जब सात दिन पूरे होने को आये तो घुड़सवार घोड़े पर बैठा। वह हँसता-खेलता गाता समय पर सन्ध्या होने से पहले राजधानी पहुँच गया। राजा को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जब बाकी के सभी सवार लहू-लूहान होकर बेहोश पड़े हुए हैं यह कैसे हँसता-गाता घोड़े पर सवार होकर सानन्द आ गया। देखते-देखते राजा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ने समझ लिया कि घोड़े को काबू करने की युक्ति यह जानता है। हमारा मन भी एक प्रकार का घोड़ा है। शास्त्रों में मन को भी घोड़े की उपमा दी गई है। अगर हम उसका निरीक्षण करें,उसकी देखभाल करें तो कोई कारण नहीं कि वह हमारे वश में न हो जाय। पर हम जब उसके साथ जबर्दस्ती करते हैं तो वह और भी उद्दण्ड हो जाता है। हमारा कहना नहीं मानता। हमारी अवज्ञा करता है।

पर मन के साथ प्रेम करने से मन भी अपना परम प्रेमी हो जाता है। मन को देखने से मन में लय हो जाता है। इस कारण समझदार सवार की तरह निरीक्षण करने पर तो मन अधीन हो जाता है और नहीं तो मनुष्य जीवन भर प्रतिक्षण मन के दास बन जाता है और दासता के अशेष दुःख को भोगता है। मन को अधीन नहीं कर पाता। मन मन के ही हाथ आता है। मन जब शान्त हो तो मन से ही मन को भगवान् के चरणों में लगा देनी चाहिये। इस प्रकार धीरे-धीरे मन शान्त और भगवान् के चरणों में अपने आप लग जाता है।

इसलिये कहा गया है—

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"

गीता में भी श्रीभगवान् के श्रीमुखारविन्द के ये शब्द निकले हैं—

"आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः"

मन ही बन्धु है—मित्र है—मुक्ति का कारण है और यह ही शत्रु भी है—बंधन का हेतु है।

योगभाष्य में व्यासजी कहते हैं—

"चित्तनदी उभयतो वाहिनी। वहति कल्याणाय वहति पापाय च।"

यह चित्तरूपी नदी उभयवाहिनी है। कल्याण भी करती है तो पाप भी। समझदार घुड़सवार की तरह जो इन मन को वश में कर लेता है उसे कल्याण ही कल्याण प्राप्त होता है।"

— —

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है गढ गढ काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सहारा दै बाहर मारे चोट॥

गुरु कुम्हार की भाँति शिष्यरूपी पात्र का सुधार करता है। यद्यपि ऊपर से चोट लगाता प्रतीत होता है परन्तु अन्दर हाथ का सहारा भी देता है। करुणामय गुरु बाहर से कठोर और भीतर में कोमल होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक विश्लेषण :—सौन्दर्य

"सौन्दर्य की माँग जीवन की माँग है। सौन्दर्य उसे नहीं कहते जिससे अरुचि हो और वह भी सौन्दर्य नहीं है जो कभी रुचिकर और कभी अरुचिकर हो। सौन्दर्य वही हो सकता है जो सदैव रुचिकर रहे अर्थात् जिसमें उत्तरोत्तर प्रियता बढ़ती रहे। क्या इस प्रकार का सौन्दर्य किसी भी उत्पन्न हुई वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति देश-काल आदि में है ? यदि नहीं है तो वस्तु व्यक्ति आदि की ममता, कामना एवं तादात्म्य मानव को सौन्दर्य से विमुख करता है। सौन्दर्य स्वरूप से नित्य तथा अनन्त है। अतएव उसके प्रति प्रियता भी नित्य तथा अनन्त होनी चाहिये। जो प्रियता सदैव नहीं रहती वह वास्तव में प्रियता नहीं है अपितु आसक्ति है। आसक्तिजनित रुचि का नाश करना अनिवार्य है। आसक्ति से उत्पन्न हुई रुचि मानव को श्रमित करती है, शक्तिहीन बनाती है, चेतनाशून्य करती है, सजगता नहीं रहने देती तथा उसमें असावधानी घोषित करती है, जो विनाश का मूल है। सीमित परिवर्तनशील सौन्दर्य वास्तव में सौन्दर्य नहीं है अपितु अनन्त नित्य सौन्दर्य की माँग है। उसे देख वास्तविक, नित्य, अनन्त सौन्दर्य की माँग तथा उसकी खोज करनी चाहिये। पर यह भी तभी सम्भव होगा जब मानव वास्तविकता के बिना किसी प्रकार चैन से न रह सके। वास्तविकता की खोज किसी पराधीनता जनित उपायों से सम्भव नहीं अपितु पराधीनता का अन्त करने पर ही मानव वास्तविकता की खोज कर सकता है।

देखे हुए सौन्दर्य की रुचि तथा सुने हुए सौन्दर्य की माँग होती है। इन्द्रिय दृष्टि तथा बुद्धि दृष्टि से जो कुछ देखने में आता है वह देखा हुआ ही है। सुना हुआ तो केवल वहा है जो इन्द्रिय तथा बुद्धि से परे है। उसको किसी भी संकेत भाषा से कहा जाय, पर वह सुना हुआ है, देखा हुआ नहीं है। देखा हुआ जो कुछ है उसी का प्रभाव रुचि के रूप में अंकित है और बिना देखे हुए की माँग है। यद्यपि देखे हुए का आश्रय तथा प्रकाशक वही है जो देखा हुआ नहीं है परन्तु मानव असत् संग के कारण प्रकाशक तथा आश्रय को भूलकर देखे हुए को ही सब कुछ मान लेता है जो वास्तव में कुछ नहीं है। और जो सब कुछ है, उससे, 'कहाँ है' ? 'कैसा है' ? 'कुछ नहीं है' आदि कहकर विमुख हो जाता है, उसमें आस्था नहीं करता। उसी का परिणाम यह होता है कि माँग के रहते हुए भी मानव रुचि का दास हो जाता है जो संघर्ष तथा विनाश का मूल है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देखे हुए में जो आकर्षण है वह उसी का है जो देखा हुआ नहीं है। जो देखा हुआ नहीं है, उसकी कोई सीमित परिभाषा नहीं की जा सकती। मानव की माँग ज्यों-ज्यों स्पष्ट होती जाती है त्यों-त्यों सुने हुए की महिमा प्रत्यक्ष होती जाती है और ज्यों-ज्यों महिमा प्रत्यक्ष होती जाती है त्यों-त्यों माँग और अधिक उत्कृष्ट तथा स्पष्ट होती जाती है। इतना ही नहीं, अनन्त की माँग भी अनन्त है, उसके सम्बन्ध में जितना भी कहा जाय कम है। अद्वितीय होने से अनुपम है पर वह सभी का अपना है। उसी में अनन्त सौन्दर्य, ऐश्वर्य तथा माधुर्य है।"

(एक महात्मा के प्रसाद)

——

*** श्री श्री माँ आनन्दमयी ***

[चतुर्दश भाग]

श्री श्री माँ के जीवन का धारावाहिक इतिहास की अपूर्व गाथा प्रकाशित हो गयी। इस भाग में श्री श्री माँ के साथ पाण्डेचेरी में माँदार का साक्षात्कार, रमणाश्रम में रात्रिवास, सूक्ष्मदेही महापुरुषों का महामिलन, वृन्दावन आश्रम में शिव-प्रतिष्ठा तथा दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों की भ्रमण लीलाएँ वर्णित हैं।

अक्तूबर १९५२ से सितम्बर १९५४ तक की घटनाएँ।

पृष्ठ संख्या २४० मूल्य — तीन रुपये

प्राप्तिस्थान

श्री श्री आनन्दमयी संघ

भदैनी, वाराणसी–१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देहसिद्धि

महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज

'जातस्य ध्रुवो मृत्युः', 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्' आदि वचनों के द्वारा पञ्चभूतमय षाट्कौशिक देह की मृत्यु अवश्यभावी कही गई है। महाभारत में बकरूपी धर्म ने युधिष्ठिर से पूछा था 'किमाश्चर्यम्'—आश्चर्य क्या है ? तब युधिष्ठिर के उत्तर से यही तथ्य प्रकट हुआ था कि प्रतिदिन प्राणी यमपुरी में जा रहे हैं यह जानकर भी प्रत्येक प्राणी यह सोचता है कि वह संसार में स्थायी रहेगा एवं उसकी मत्यु नहीं होगी। यही एक परम आश्चर्य की बात है। इस विषय में योगशास्त्र में कहा है कि सभी जीव स्वाभाविक रूप से मन ही मन प्रार्थना करते हैं मैं स्थायी रूप से संसार में रहूँ, मेरा अभाव न हो।

देह कहने से हम लोग शुक्र-शोणित द्वारा रचित योनिज शरीर को समझते हैं। प्रारब्ध कर्मों के फल-भोग के लिए जीव इस देह को ग्रहण करता है। यह देह शास्त्रों में चेष्टा, इन्द्रिय तथा भोग का आश्रय कहा गया है। न्यायवैशेषिक मत में देह सिद्धि का यही तात्पर्य है। सांख्य मत में 'सप्तदशैकं लिङ्गम्' सूत्र द्वारा लिङ्ग शरीर स्वीकृत है एवं पञ्चभूतात्मक स्थूल देह स्वीकृत है। वेदान्त में स्थूल देह और सूक्ष्म देह से अतिरिक्त मूल अविद्यारूप कारण देह स्वीकृत है। यहाँ तक गुणों की व्याप्ति है। कार्य और कारण भेद से भौतिक शरीर दो प्रकार का है। फिर कार्य देह स्थूल और सूक्ष्म भेद से दो प्रकार का है। प्रचलित दर्शनों, पुराणों और उपपुराणों में तीन प्रकार की देह का उल्लेख दिखाई देता है।

भौतिक देह विकारी है, इस विषय में दो मत नहीं है। किन्तु उसके विकारी होने पर भी मन्त्र, औषधि और तप के प्रभाव से, उपासना के योग से तथा ज्ञान के प्रभाव से अथवा अन्य किसी प्रक्रिया से भौतिक शरीर भी इतना अधिक निर्मल हो सकता है कि वह नश्वर होते हुए भी अविनाशी हो सकता है एवं मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। यह केवल कल्पना नहीं है, शास्त्र और अनुभव से सिद्ध है। इस विषय में अनुसन्धान करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति 'काल दहन तन्त्र' एवं 'मृत्युञ्जयतन्त्र' में कायसिद्धि का विवरण देख सकते हैं। चिदम्बर निवासी रामलिङ्ग शास्त्री ने लगभग १०० वर्ष पूर्व कायसिद्धि प्राप्त की थी एवं समागत लोगों के सामने वे दिन के उजाले में अदृश्य हुए थे। यह एक प्रामाणिक तथ्य है। इस विषय में और भी सत्य घटनाएँ उपस्थित की जा सकती हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूतसमूह स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय अर्थवत्त्व इन पाँच स्वभावों से युक्त है। भूतसमूह के इस पञ्चविध स्वरूप के संयम द्वारा जयलाभ होने पर योगी की अणिमा आदि की सिद्धि और कार्यसम्पत् की अभिव्यक्ति होती है। भूतजय होने पर योगी का जैसे एक ओर रूपलावण्य का विकास होता है दूसरी ओर वैसे ही शरीर वज्र के तुल्य दृढ़ होता है। यही मुख्य कायसम्पद् है। सिद्धदेह भौतिक धर्मों द्वारा अभिभूत नहीं होती। यही सिद्धदेह का प्रधान लक्षण है।

देह सिद्ध होने पर जरा, व्याधि आदि विकारों से मुक्त होकर मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करने में समर्थ होती है। कभी-कभी देखा जाता है कि देह एक ही साथ अजर और अमर दोनों ही होती है। फिर कभी-कभी देखने में आता है कि अजरत्व और अमरत्व दोनों एक साथ विद्यमान नहीं हैं। जब अजरत्व और अमरत्व दो धर्म एक ही देह में रहते हैं तब उस सिद्धदेह को दिव्य तनु कहा जाता है और कोई-कोई देह जरारहित होकर भी दीर्घ काल के पश्चात् काल का ग्रास बनती है। किन्तु वैसा होने पर भी उसमें दिव्य शब्द का गौण प्रयोग होता है। फिर कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि देह मरणरहित होने पर भी उसमें जरा आती है किन्तु यह जरा सोमकला के द्वारा इच्छानुसार हटाई जा सकती है। तत्पश्चात् जब वह शरीर जीर्ण हो जाता है तब उस शरीर का जीर्ण वस्त्र के तुल्य त्यागकर औपपादिक देह की तरह बाल्य, पौगण्ड एवं किशोर अवस्थापन्न पुरुष के तुल्य देह ग्रहण करना संभव है। अथवा जिसमें युवावस्था का केवल उन्मेष हुआ हो ऐसा तरुण शरीर भी प्राप्त किया जा सकता है। जीव का देह सम्बन्ध जन्म, आयु और भोग के तुल्य प्रारब्ध कर्म से होता है। भोग द्वारा प्रारब्ध क्षय होता है एवं देह-पात होता है। इसी का नाम मृत्यु है। यौगिक प्रक्रिया से काय-सम्पत् प्राप्त होने पर केवल भूतधर्मों द्वारा अनभिभव ही नहीं होता बल्कि मृत्यु भी रुक जाती है।

बौद्धमत में बोधिसत्त्व की दस भूमि रूप हेतु अवस्था में चार प्रकार की सम्पदा आविर्भूत होती है। उनमें वज्रसार स्थिर कायसम्पद्रूप रूपकाय सम्पद् उल्लेख योग्य है। श्रुति में भी इस प्रकार के योगाग्निमय शरीर में व्याधि, जरा और मृत्यु के अभाव की बात सुनने में आती है।

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥ (श्वेताश्वर २-१२)

देहसिद्धि की विभिन्न प्रक्रियाएँ विभिन्न स्थलों में दिखाई देती हैं। देह वज्राङ्ग तथा आयु की असाधारण वृद्धि होने पर भी एवं भूतसमूह के द्वारा उसके अनभिभूत होने पर युगान्त में, महायुगान्त में, कल्पान्त में अथवा महाकल्पान्त में उस देह का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पात अवश्यम्भावी हैं। इसलिए देहसिद्धि भी आपेक्षिक है ऐसा कहना उचित है। क्योंकि देह के उपादानों की भलीभाँति शुद्धि न होने के कारण प्रदीप्त कालाग्नि के प्रभाव से वह जल जाती है। किन्तु ये सब सिद्धपुरुष चिरंजीवी एवं कल्पान्त-तक रहनेवाले कहे जाते हैं। "अपाम सोमममृता अभूम" इस उक्ति के द्वारा सोम-पान के प्रभाव से अमरत्व लाभ जैसा प्रलयकाल स्थायी है देह भी वैसा ही है। इस प्रकार देह सम्पत् कालपरिच्छिन्न है अतएव वह वास्तविक नहीं है। किन्तु इस प्रकार की स्थिति किसी विशेष प्रकार की देह के सम्बन्ध में सत्य होने पर भी हम जिस प्रकार की देहसिद्धि के विषय में विचार कर रहे हैं वह ऐसी नहीं है। देह जब शुद्ध सत्त्वमय अथवा चिन्मय रूप से स्थित होती है तब निरपेक्ष पारमार्थिक सिद्धि का उदय होता है। उस अवस्था में मृत्यु की कोई संभावना नहीं रहती है। इस विषय में यह ज्ञातव्य है कि षोडशकल पुरुष की जो षोडशी नामक कला है वही अमृत कला एवं पूर्ण सोम कला है। उसके द्वारा देह का आपूरण होने पर कालानल उस देह में प्रवेश नहीं कर सकता एवं उसके फलस्वरूप देह का शोषण भी नहीं होता। उस अवस्था में देह और आत्मा अभिन्न हो जाते हैं यही सिद्धा-वस्था और मृत्युञ्जयता की प्राप्ति है। भली भाँति (सम्यक् रूप से) जिस देह में साधना होती है—आयु का क्षय होने पर उसका पात योगी की इच्छा से अथवा काल के प्रभाव से हो जाता है। किन्तु सम्यक् प्रकार से देह सिद्धि होने पर वह सिद्ध देह चिन्मय रूप धारण कर लेती है तब सिद्ध योगी की देह उसकी शक्तिरूप होने के कारण सिद्ध स्वरूप के ही अन्तर्गत होती है। अतएव तब उसके पात की कोई संभावना नहीं रहती। केवल स्वातन्त्र्यवश तिरोभाव मात्र होता है। पूर्ण सामरस्य-दशा में देश और आत्मा शिव-शक्तिरूप धारण कर सर्वथा समरस होते हैं। वह अद्वय स्वरूप और नित्य स्वप्रकाश रहता है। इसीलिए तब तिरोभाव नहीं होता।

सिद्ध सम्प्रदाय में किंवदन्ती प्रचलित है—जिसके द्वारा सम्यक् और असम्यक् कायसिद्धि का भेद स्पष्टतया प्रतीत होता है। ऐसी प्रसिद्धि है–एक बार गोरक्षनाथ ने अल्लाम प्रभुदेव नामक एक महासिद्ध के निकट आविर्भूत होकर उनके सामने अपनी भूतजय और वज्राङ्गता का प्रदर्शन किया था। प्रभुदेव के मत में केवलमात्र वज्राङ्गता प्राप्ति सम्यक् सिद्धि नहीं मानी गई है। देह की स्थिरता होने पर भी जब तक मायानिवृत्ति न हो तब तक परामुक्ति की संभावना नहीं होती। उनके मत में क्षर भूतसमूह तथा अक्षर कूटस्थ के अधीश्वर महादेव के प्रति भक्ति ही परामुक्ति का उपाय है। इस भक्ति का उदय हुए बिना देहसिद्धि होनेपर भी वह परम सिद्धि के रूप में परिगणित नहीं होती है।

4

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोरक्षनाथ ने कहा कि उनके शरीर पर तीखी धारवाला तलवार के प्रहार से भी कुछ क्षति नहीं होगी। प्रभुदेव के मत में छेदन, भेदन आदि क्रिया के द्वारा कायसिद्धि की परीक्षा आसुरिक परीक्षा है। ऐसा होने पर जब गोरक्षनाथ के शरीर पर खड्ग प्रहार किया गया तब देखने में आया कि उनके शरीर का कुछ भी अंश कटा नहीं। यहाँ तक कि उनके शरीर का एक रोवाँ भी काटा नहीं गया, केवल देह से वज्र द्वारा आहत पर्वत के तुल्य शब्द होने लगा। तब प्रभुदेव ने कहा कि कायसिद्ध योगी वायु, धूप, अग्नि, वृष्टि, ठण्डक आदि से पीड़ा का अनुभव नहीं करते हैं। इस प्रकार के योगी जरा और मृत्यु रहित रहते हैं। सिद्ध योगी सब प्रकार के सम्बन्धों का त्यागकर ईश्वर में पूर्ण समाहित रहते हैं। गोरक्षनाथ सब बातें सुनकर प्रभुदेव की परीक्षा करने में प्रवृत्त हुए। उन्होंने तलवार उठाकर नाना प्रकार से प्रभुदेव के शरीर पर प्रहार किये। किन्तु प्रभुदेव उस आघात के समय आकाश की तरह अचल रह गये। आघात कहाँ हुआ यह भी ज्ञात नहीं हुआ। गोरक्षनाथ ऐसी आश्चर्यमय सिद्धि देखकर विस्मित हुए। उनके शरीर पर आघात से शब्द उत्पन्न हुआ था, किन्तु प्रभुदेव का शरीर आकाशवत् निःशब्द रहा। प्रभुदेव ने कहा—"काये घनीभवति सापि घनैव माया"।

रस सम्प्रदाय में अति प्राचीन काल से जीवन्मुक्ति के साधन के निमित्त कार्यसिद्धि उपयोगी है यह विषय ज्ञात था। रस तत्त्व वेत्ता कहते हैं इसी शरीर में परमार्थ संवेदन होना आवश्यक है। शरीर त्याग के बाद ज्ञानलाभ की इच्छा निरर्थक है। किन्तु नाना प्रकार के—व्याधि, जरा, मरण आदि—दुःखों से तापित क्षणभंगुर शरीर के द्वारा मन के अगोचर ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करना संभव नहीं है। अतएव महाज्ञान प्राप्त करने के पूर्व ही अणिमा आदि आठ सिद्धियों से संपन्न स्थिर देह प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। दिव्य देह निर्माण के लिए शिववीर्य पारद और शक्ति बीजरूप अभ्रक की उपयोगिता रसशास्त्र में बारंबार प्रतिपादित है। इसीलिए देह हर गौरीसंभूत कहा जाता है। चूँकि पारद शिव के अङ्ग से उत्पन्न है इसलिए इसे रस कहते हैं। अठारह संस्कारों से संस्कृत रस जैसे एक ओर लौह वेध करने में समर्थ होता है वैसे ही इसके द्वारा ही देह की वेधन क्रिया भी संपन्न होती है। रसके द्वारा लौह का वेधन होने से वह सुवर्ण के रूप में परिणत हो जाता है एवं उसके द्वारा नरदेह का वेध होने पर यह सिद्ध देह में परिणत होता है। वेध क्रिया के द्वारा शरीर के सम्यक् शुद्ध होने पर शरीर आकाश गमन आदि कार्य करने में समर्थ होता है। रसायन विद्या का उद्देश्य लौह को स्वर्ण में परिणत करना नहीं है किन्तु देह की अमरता साधन करना है। लौह का वेधन इसलिए किया जाता है जिससे जाना जा सके कि रससम्यक् रूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से संस्कृत (संस्कार विशिष्ट) हुआ है या नहीं। इस परीक्षा के सिवा उसका दूसरा कोई कारण नहीं है। जीव को पार प्रदान करता है यानी जीव को पार लगाता है इसलिए उसका नाम पारद है। शिवशक्ति बीजरूप पारद और अभ्रक दोनों संघट्ट से रसदेह की अभिव्यक्ति होती है। अनित्य भौतिक देह जिस प्रकार रज और वीर्य के सहयोग से उत्पन्न होती है वैसे ही रसदेह भी शिव-शक्ति की सामर्थ्य से उत्पन्न होती है। जो लय को प्राप्त होता है एवं जिसमें वह लीन होता है उन दोनों में साम्य रहता है। जो पारद अभ्रक को ग्रास करता है उसमें सुवर्ण आदि के लीन होने पर अमृत की सत्ता प्रकट होती है, जिससे देह में स्थिरता आती है।

देह-सिद्धि-लाभ से सम्पूर्ण मन्त्र, शुद्ध अध्वा के अन्तर्गत सब देवता रससिद्ध पुरुष के किंकर हो जाते हैं। अनादि काल से बहुत से उपासक इस देह को प्राप्त कर सिद्धरूप में प्रसिद्ध हुए—उनमें महेश्वर, दत्तात्रेय, शुक्राचार्य आदि के नामों का उल्लेख किया जा सकता है। इसी प्रकार मन्थान भैरव, सिद्धबुद्ध, नागार्जुन, नित्यनाथ, बिन्दुनाथ आदि का नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। ये अमरदेह प्राप्त कर कालवञ्चनापूर्वक त्रिलोक में विचरण करते हैं ऐसी प्रसिद्धि है। चतुष्पाद् ब्रह्म का केवल एक पाद मृत्यु द्वारा व्याप्त है अन्य तीन "अमृतं दिवि" अर्थात् मृत्युहीन और दिव्य हैं। वे निज महिमा में विराजमान हैं। समस्त जगत् एक पाद में स्थित है। वह चल स्वभाव होने के कारण हेय है, किन्तु त्रिपाद विभूति उपादेय और मन की अगोचर है। वह ब्रह्मतत्त्व एकमात्र योगगम्य है। योग शब्द यहाँ पर प्रकृति और पुरुष के शुद्धिसाम्यमूलक है ऐसा समझना चाहिये। नरदेह प्राकृत होने से स्वभावतः मलिन है इसलिए योग सम्पादन के पूर्व ही इसकी विशुद्धि कर लेना आवश्यक है। योग के द्वारा आत्मज्ञान होता है और सम्पूर्ण जगत् की भासक चिद्-ज्योति का आविर्भाव होता है। देह के कालकवलित होने की शङ्का जब तक निवृत्त न हो जाय तब तक देह और आत्मा का वह योग होना संभव नहीं है एवं उपर्युक्त चिज्ज्योति का स्फुरण भी नहीं होता है। यह ज्योति सब क्लेशों से मुक्त, विकल्पहीन, शान्त, एक, स्वयं वेद्य है। मन के योग से विश्व चिद्रूप से भासमान होता है, सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। बाहरी विषयों में उन्मुख सब इन्द्रियाँ अपने आप ही प्रत्याहृत हो जाती हैं एवं सदा के लिए रागद्वेष का परिहार हो जाता है। मानवजीवन की पूर्ण सफलता इसमें निहित है। तब देह तेजोरूप होकर अपनी शक्ति के रूप में परिणत होती है।

अरब देश के रसायनवेत्ता लोगों के मतानुसार सब वस्तुओं में दो अंश विद्यमान रहते हैं। उनमें एक अंश (भाग) जड़ और पार्थिव है एवं दूसरा अंश सूक्ष्म और चेतन, हल्का और ज्योतिर्मय है। एक देह है, दूसरा उसकी आत्मा है। वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूक्ष्म अंश जो स्थूल से बलवान् है—आत्मरूप है। वह आत्मा स्थूल में प्रविष्ट होकर स्थूल को किसी उपाय से परिवर्तित कर देता है।

रसवेत्ता लोगों का प्रथम कर्तव्य है स्थूल और सूक्ष्म को पृथक् करना। उसके पश्चात् स्थूल में उसके अनुरूप सूक्ष्म सत्ता का संचार करना चाहिये। इसी का दूसरा नाम योग्य के योग्य का योजन है। रस विद्या में निष्णात और कर्मकुशल तथा बुद्धिमान् व्यक्ति स्थूल सत्ता से निकली हुई सूक्ष्म सत्ता को पुनः आकृष्ट कर स्थूल में फिर स्थापित कर सकते हैं। सूक्ष्म सत्ता की इतनी दूर तक शुद्धि का प्रयोजन है जिससे वह वेग के साथ अपने अनुरूप मूल सत्ता में प्रवेश कर सके, एवं उसको इतनी दूर तक शुद्ध करने का प्रयोजन है जिससे वह तेजोरूप धारण कर बाह्य तेज को भी प्रतिहत कर सके। इस विषय में विचार करने पर ज्ञात होता है कि रसतत्त्ववेत्ता लोगों का उद्देश्य था प्राकृत सत्ता को अप्राकृत सत्ता में परिणत करना। अप्राकृत सत्त्व, रज और तम से संश्लिष्ट नहीं है एवं वह घनीभूत है, इसलिए वह अखण्ड स्वभाव है। संयोग काल में वह संघर्ष सहन कर सकती है।

नाथयोगी संप्रदाय के मूल प्रवर्तक यद्यपि आदिनाथ थे तथापि संसार में उसके मूल प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ थे ऐसा प्रचार है। उसके बाद गोरक्षनाथ, जलन्धर, चौरङ्गी, भर्तृहरि, आदि विशिष्ट योगी उस सम्प्रदाय में आविर्भूत हुए। ऐसा सुना जाता है कि कपिल, मार्कण्डेय, याज्ञवल्क्य आदि हठयोग के उपदेष्टा थे। नाथयोगियों में कोई-कोई देहसिद्धि के लिए रस-प्रयोग, कोई-कोई वायुप्रक्रिया, अन्य कोई-कोई विन्दु सिद्धि के लिए भिन्न-भिन्न उपायों का अवलम्बन करते थे : वे सभी उपाय योग प्रक्रिया के रूप से गिने जाते हैं। उक्त नाथयोगी लोकोत्तर योग-सिद्धियों के अधिकारी थे। किन्तु यह बात सभी स्वीकार करते हैं कि महाज्ञान के सिवा कायसिद्धि का कोई उपाय नहीं है। यही उनका मुख्य सिद्धान्त है। परपिण्ड से स्वपिण्ड तक समस्त पिण्डों का ज्ञान सम्पन्न होने पर परमपद में समरसता प्राप्त होती है। किन्तु स्वात्मविश्रान्ति के बिना पिण्ड और परम का समरसी भाव होना संभव नहीं है। अतएव सर्वप्रथम विश्रान्ति आवश्यक है। उस विश्रान्ति के कारण सद्गुरु स्वयं हैं। वे वाक्य अथवा दृष्टि के द्वारा शिष्य के चित्त की विश्रान्ति का सम्पादन करते हैं। विश्रान्ति के बाद परमपद साक्षात्कार आवश्यक है। यह साक्षात्कार दुःसाध्य होने पर भी विश्रान्त चित्त के लिए बहुत-कुछ सुकर है।

परमपद साक्षात्कार करने के बाद परमपद में और अपने पिण्ड में सामरस्य का सम्पादन करना आवश्यक है। तब अत्यावश्यक निरुत्थान दशा का उदय होता है। परमपद स्वयं वेद्य तथा वाक्य (वचन) और मन का अगोचर है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगी महत्त्वपूर्ण सिद्धिलाभ करने के अनन्तर, अपने स्वरूप के अनुसन्धान करने की इच्छा से निजावेश-लाभ करते हैं एवं निरुत्थान दशा को भी प्राप्त होते हैं। सच्चिदानन्द चमत्कार, अद्भुत आकारों का प्रकाश, प्रबोध, परमपदप्रवेश आदि कर्मानुसार धीरे-धीरे प्राप्त होते हैं। इसी अनुभव के बल से निजपिण्ड की सिद्धि होती है। तब सिद्ध-पुरुष अपने पिण्ड के साथ परमपद की एकाकारता सम्पन्न करते हैं।

इस मार्ग में कहीं-कहीं क्रमिक चार ज्ञानों की बात वर्णित दिखाई देती है। वे क्रमशः सहज, ससंयम, सोपाय एवं साद्वय नाम से वर्णित हैं। इनके आविर्भाव से प्रकृष्ट निरुत्थान दशा की पूर्वाङ्गरूप स्वात्मविश्रान्ति सुलभ होती है।

आचार्य बलभद्र के मत में परम्परा प्राप्त सन्मार्गप्रदर्शक पुरुष ही गुरुरूप में स्वीकृत हैं। आत्मविश्रान्ति प्रदान की शक्ति केवल उन्हीं में विद्यमान है। उनके द्वारा प्रदर्शित पथ पर जो चलते हैं वे स्वयं वेद्य वस्तु का साक्षात्कार कर पाते हैं। परमात्मरूप सद्गुरु की करुणा दृष्टि ही सब प्रकार के कल्याणों की मूल है। योगी जन सब प्रकार सिद्धियों का त्याग कर स्वात्मैकवेद्य निरुत्थान दशा प्राप्त करते हैं एवं निज पिण्ड को समरस कर सकते हैं।

पहले निजावेश उत्पन्न होता है, उसके अनन्तर स्थिर महानन्द दशा अभिव्यक्त होती है एवं उसके साथ निर्मल प्रकाश का आविर्भाव होता है। यहाँ तक सम्पन्न होने पर निखिल भेद विगलित होकर अभेदमय चैतन्यभासक परमपद का उन्मेष होता है। उसके अनुभव से निज पिण्ड का सम्यग् ज्ञान सम्पन्न होने से परमपद में निजपिण्ड का निर्माण अथवा ऐक्य हो जाता है। तदनन्तर अपनी रश्मि लौटती है। यह दूसरा उन्मेष है। उसका प्रत्याहार होने पर सामरस्य होता है। अपनी किरणों का समूह निजरूप से साक्षात्कृत होता है। यह सामरस्य ही अद्वय तत्त्व है। अवधूत गीता में कहा गया समतत्त्व यही है। अमनस्क में वर्णित भावाभाव-विनिर्मुक्त, नाश और उत्पत्तिरहित, सर्वसंकल्पवर्जन और परब्रह्म दशा भी इसी का नामान्तर है।

महाज्ञान के द्वारा परमशून्ययोग प्राप्त होता है। आदिनाथ श्रीशङ्कर से यह ज्ञान मत्स्येन्द्रनाथ के तुल्य गोरक्षनाथ को भी प्राप्त हुआ था। सिद्धनाथ योगियों की नामावली में बहुत नाम दिखाई देते हैं। वे सब नाम रससंप्रदाय के ग्रन्थों में भी उपलब्ध होते हैं। ८४ सिद्धों के नाम कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। उनमें कोई कोई रसमार्ग में सिद्ध, कोई कोई हठयोग द्वारा सिद्ध और कोई-कोई तान्त्रिक प्रक्रिया अथवा बिन्दु साधन के द्वारा सिद्ध हुए थे। उनके सम्बन्ध में स्थिर किसी सिद्धान्त पर पहुँचना कठिन है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रायः सभी मार्गों में सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर एक मार्ग दृष्टिगोचर होता है। वह मार्ग ब्रह्ममार्ग है। वही शून्य पदवी के नाम से प्रसिद्ध सुषुम्ना नामक मध्यमा प्रतिपत् है, जिसका वर्णन निम्ननिर्दिष्ट प्रकार से किया जाता है।

"भोक्तृ सुषुम्ना कालस्य गुह्यमेतदुदाहृतम्।" अर्वाचीन काल में वज्रयान मार्ग के अनुगामी साधकों के भाव से भावित बाउल तथा सहजिया साधकों के भाव से प्रभावित होकर नाथ योगमार्ग ने कुछ वैशिष्ट्य प्राप्त किया है। उसके फल-स्वरूप वे कायसिद्धि के लिए अतिगुह्य चार-चन्द्र का साधन नामक उपाय का अवलम्बन करते हैं। इस मत में सापेक्ष और निरपेक्ष नाम से दो प्रकार का अमरत्व स्वीकृत है। सापेक्ष अमरत्व सिद्धपद लाभ है। अमृतधारा के स्रावण एवं उसके द्वारा देह संजीवन करना उक्त प्रकार की अमरता प्राप्ति का उपाय कहा जाता है। अधोमुख सहस्र दल कमल को ऊर्ध्वमुख करके उस कमल में स्थित अमृत से मन का अभिषेक करना आवश्यक है। यहाँ पर प्रणव का ध्यान करना चाहिये। ब्रह्मरन्ध्र के द्वार और त्रिवेणी के द्वार को बन्द करना आवश्यक है। इस प्रकार के उपाय का अवलम्बन कर सकने पर सुधाधार फिर नीचे नहीं गिर सकती। योगियों के मन में यह क्रिया आकाशचन्द्र भेद के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर यह बात जानना आवश्यक है कि देह-रस अमृतरूप में परिणत होकर ऊर्ध्वगामी वायु के द्वारा ऊपर पहुँचता है एवं सहस्रार में संचित होता है। इस मत में चार प्रकार के चन्द स्वीकृत हैं—(१) आदिचन्द्र, (२) निजचन्द्र, (३) उन्मत्तचन्द्र और (४) गरल चन्द्र।

रसात्मक निजचन्द्र का ऊपर आकर्षण पूर्वक आकाश चन्द्र में योजन करना आवश्यक है। ऊर्ध्व गति से रस अमृतरूप में परिणत होता है। आकाशचन्द्र सहस्रार में संलग्न है, इस प्रकार से योगी को गरलचन्द्र का पान करना चाहिये। गरलचन्द्र का पान एवं प्रणव का ध्यान आवश्यक है। गरलचन्द्र के द्वारा देह और मन का शोधन और संजीवन होने पर सिद्ध देह प्राप्त होती है।

महायानी बौद्धों ने भी कायसाधन के विषय में उपदेश दिया है। वे कहते हैं पर प्रज्ञा-लाभ के लिए बोधिसत्त्व भूमि में प्रवेश करना आवश्यक है एवं भूमिभेद करना भी जरूरी है। उसके सम्पन्न होने पर प्रज्ञापारमिता की प्राप्ति होती है एवं यही बुद्धत्व सम्पादक महाज्ञान है। अक्लिष्ट अज्ञान जब तक रहता है तब तक पूर्णत्व-लाभ नहीं हो सकता एवं सम्यक् संबोधिनी भी उत्पन्न नहीं होती है। बोधिसत्त्व की काय सम्पत् हेत्ववस्था में ही होती है।

तान्त्रिक बौद्धमत में कोई रसात्मक बिन्दु को बोधिचित्त कहते हैं। चतुर्दल कमल से इसे उष्णीष कमल में स्थापित करना योगसाधना का फल है। षट्चक्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भेद के तुल्य उत्थापन क्रिया अत्यन्त कठिन है। पहले बिन्दु की निम्नतल चक्र में स्थिति आवश्यक है। तदनन्तर निर्माण चक्र से उसे महा सुखचक्र में चढ़ाना चाहिये। वहाँ पर बोधिचित्त का उदय होता है, वह कर्ममुद्रा का स्थान है। उद्भेद का तात्पर्य क्षोभ है। तदनन्तर उस क्षुब्ध बिन्दु को अवधूती नामक मध्य मार्ग से संचालित करना पड़ता है। क्षुब्ध बिन्दु के ऊर्ध्वगमन पथ में भिन्न-भिन्न आनन्दों का आस्वाद होता है। बिन्दु के अधोगमन में भी आनन्द की अभिव्यक्ति अवश्य ही होती है किन्तु वह अस्थायी एवं मलिन होने से त्याज्य है। बिन्दु की अधोगति से जैसे काम देह की उत्पत्ति होती है वैसे ही उसके ऊर्ध्व गमन से दिव्य देह प्रकटित होती है। (क्रमशः)

* श्री श्री माँ आनन्दमयी *

[पंचदश भाग]

राँची आश्रम में दुर्गापूजा, बम्बई में संयम सप्ताह, वृन्दावन में महाप्रभु की मन्दिर-प्रतिष्ठा, सोलन में श्री श्री माँ का जन्मोत्सव, राँची में काली मूर्त्ति की स्थापना, अलौकिक नाना सूक्ष्म दर्शन की बात, विस्तारित आध्यात्मिक आलोचना तथा भारत के विभिन्न स्थानों में माँ की भ्रमणलीला की कहानी इस भाग में वर्णित है।

पृष्ठ संख्या—२२४ मूल्य—तीन रुपये

प्राप्तिस्थान :

श्री श्री आनन्दमयी संघ

भदैनी–वाराणसी—१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गीतासार-तत्त्व

श्री १००८ महामण्डलेश्वर महेश्वरानन्दजी, संन्यास आश्रम, बम्बई

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

यह गीता का प्रसिद्ध श्लोक है। विद्वानों की सम्मति है कि इस श्लोक में समस्त गीता के तात्पर्य का संग्रह है। अतएव इसका रहस्य गूढ़ है। भगवान् ने "स्वधर्मे निधनं श्रेयः", "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" इत्यादि वचनों से यह सिद्ध किया है कि उनका अवतार धर्म की स्थापना के लिए होता है, फिर वही भगवान् पूर्वोक्त श्लोक में धर्म के परित्याग का उपदेश क्यों करते हैं? धर्म परित्याग का क्या रहस्य है? इत्यादि शंकाएँ गीता-स्वाध्यायी के हृदय में हो सकती हैं। अतएव उन शंकाओं का समाधान करने के उद्देश्य से धर्म-परित्याग एवं शरणागति का अनेकार्थ रहस्य 'गीता-तत्त्वांक' प्रेमियों के समक्ष प्रगट किया जाता है—

धर्म शब्द के अर्थ

'सर्वधर्मान् परित्यज्य' इस श्लोक में धर्म शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं। मुख्य सिद्धान्त से अविरुद्ध विविध अर्थ सभी को माननीय होते हैं, अतएव कुछ अर्थ यहाँ यथासम्भव क्रमशः दिखाये जा रहे हैं।

(१)

'धर्म' शब्द से लोकों में प्रसिद्ध श्रौत-स्मार्त-धर्म, वैष्णवधर्म, शैवधर्म, हिन्दूधर्म, यवनधर्म, ईसाई-धर्म आदि संपूर्ण धर्मों का ग्रहण होता है। भगवान् कहते हैं कि—हे भारत! इन सब धर्मों के झंझट (अवान्तर विभाग) को छोड़कर तू मुझ एक, अद्वय परमात्मा के ही शरण में आ जा। अर्थात् जब तक मनुष्य अपने धर्म में अविवेक-पूर्वक राग-अभिनिवेश और अन्य धर्मों से द्वेष-घृणा करता है, तब तक उसको परम-तत्त्व की उपलब्धि नहीं होती। एक, अद्वय प्रभु के वह शरण नहीं हो पाता। इसलिए मुमुक्षु-साधकों को चाहिए कि—वे किसी भी संकुचित-धर्म-विशेष में या सम्प्रदाय-विशेष में अभिनिवेश न करें, 'यत्सत्यं तदुपासितव्यम्'—जो सत्य तत्त्व है, उसी की उपासना करनी चाहिये। किसी एक धर्म विशेष की अन्ध-श्रद्धा से दुम (पूँछ) पकड़ लेने से तत्त्व-दृष्टि का लोप हो जाता है। साधक उदार भावना के विशुद्ध प्रदेश में प्रविष्ट नहीं हो पाता, उल्टे घृणा, द्वेष एवं क्रोध से उसका हृदय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विवेकशून्य हो जाता है। अतः 'सर्वधर्मों को छोड़कर एक ही परमात्मा के शरण हो जाना' इसका यह तात्पर्य है कि एक ही लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए अनेक साधक मुमुक्षु अपनी-अपनी सुविधा एवं रुचि के अनुसार अपने-अपने सुगम मार्ग से चलें, और गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाँय। जिस मार्ग से हम जाते हैं उस मार्ग से यदि कोई दूसरा न जाय तो उससे द्वेष या घृणा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वस्तुत: तत्त्व एक ही है, हमारा आत्मा ही भगवान् है. हम, तुम, आप एवं यह समस्त जगत् उससे भिन्न नहीं है, अतः विष्णुपुराण में कहा है—

एकः समस्तं यदिहास्ति किंचित्,
तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत्।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम्॥

समस्त चराचर प्राणियों का हृदय ही है उसका पवित्र मन्दिर। उस सर्वगत घट-घट निवासी पूर्णात्मा परमेश्वर से हमें अनन्य-निष्कपट प्रेम करना चाहिए। सब धर्मों में एक ही तत्त्व गुप्त रूप से छिपा हुआ है। इसी तात्त्विक-दृष्टि में निमग्न होना सब धर्मों का समन्वय है। यह तात्त्विक-दृष्टि किसी भी धर्म से विरुद्ध नहीं पड़ती, इसमें लेशमात्र भी विवाद की एवं विरोध की कोई बात नहीं है। अतएव पूज्यवर गौड़पादाचार्यजी ने कहा है—

स्वसिद्धान्त-व्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता मतम्।
परस्परं विरुध्यन्ते तैरयं न विरुध्यते॥
अस्पर्शयोगो वै नाम सर्व-सत्त्व-सुखो हितः।
अविवादोऽविरुध्यश्च देशितस्तं नमाम्यहम्॥

भेददर्शी द्वैतवादी लोग अपने भिन्न-भिन्न संकुचित सिद्धान्तों की व्यवस्था करने के लिए दृढ़ अभिनिवेश-पूर्वक एक दूसरे के मत का खण्डन करके राग-द्वेष आदि के कीचड़ में फँसकर परस्पर विरोधी बन जाते हैं। परन्तु यह तात्त्विक-अद्वैत सिद्धान्त किसी से विरुद्ध नहीं पड़ता, क्योंकि इसका सर्वाभिन्न, सर्वात्मा एक, अद्वय विशाल-तत्त्व ही लक्ष्य है। इसमें भेद-भाव का नामोनिशान भी नहीं है, परायेपन का विचार ही नहीं है, तेरे-मेरे का अत्यन्ताभाव है। यह अद्वैत-सिद्धान्त अस्पर्शयोग है। समस्त प्राणियों के लिए सुखकारक एवं हितप्रद है। इसी उदार-स्तुत्य-अद्वय-अनन्य भावना के विशालतम प्रदेश में प्रवेश करने से साधक को जब कल्याण-कारिणी तत्त्व दृष्टि प्राप्त होती है तब संकुचित-क्षेत्रवाले धर्मों से उसकी आस्था उठ जाती है। वह एक ही आत्मस्वरूप की प्रेममयी-सद्भावमयी दृष्टि से

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बिना भेदभाव सब को देखता है। यही गीता के कथनानुसार सब धर्मों को छोड़ देना है।

(२)

गीता में भगवान् ने कहा है—

यज्ञ-दान-तपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

यज्ञ, दान और तपरूप विहित कर्म त्याज्य नहीं है, किन्तु कर्त्तव्य है। क्योंकि यज्ञ, दान और तप महान् विद्वानों को भी पवित्र करते हैं।

इसलिए 'सर्व-धर्मान् परित्यज्य' का दूसरा अर्थ यह हुआ कि—निषिद्ध धर्मों का मन, वाणी एवं शरीर से परित्याग करके एकमात्र भगवान् के शरण में हो जाना चाहिए। शास्त्र में मानसिक, वाचिक और कायिक निषिद्ध कर्म संक्षेप में दश प्रकार के कहे गये हैं। मानसिक निषिद्ध कर्म तीन प्रकार के होते हैं—(१) बुरी नियत से दूसरे के धन को लेने का निश्चय करना, (२) मन से दूसरों का अनिष्ट-चिन्तन करना, (३) मिथ्या तुच्छ वस्तुओं में अत्यन्त आसक्ति करना या शास्त्र-विरुद्ध मिथ्या-पाखण्ड-युक्त मतवादों में अभिनिवेश रखना। वाचिक निषिद्ध कर्म चार प्रकार के हैं—(१) कठोर भाषण करना, (२) झूठ बोलना, (३) चुगली-निन्दा करना, (४) पागल की तरह व्यर्थ बकवास करना। कायिक निषिद्ध कर्म तीन प्रकार के हैं—(१) दूसरे के पदार्थ को अन्यायसे हड़प कर लेना। (२) प्राणियों की हिंसा करना। (३) परदारा का उपभोग करना, इत्यादि।

जब तक मनुष्य इन निषिद्ध-कर्मों का परित्याग न करेगा, तब तक वह पावन-तम-भगवच्छरणागति का अधिकारी नहीं हो सकता। निषिद्ध कर्मों के त्याग से मनुष्य शुद्ध बनकर भगवान् की शरण में जाने का अधिकारी होता है।

(३)

'धर्म' शब्द से वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, साधारण धर्म, असाधारण-धर्म एवं आपद्धर्म इत्यादि का भी ग्रहण हो सकता है। नित्य-नैमित्तिक-काम्य-प्रायश्चित्त रूप विहित-धर्मों का भी ग्रहण होता है।

"त्यज धर्ममधर्मं च" इस स्मृति-वचन के अनुसार अधर्म के साथ धर्म का भी ग्रहण होता है। अस्तु, इससे यह तात्पर्य निकला कि—विहित-अविहित सब धर्मों को छोड़कर, सब धर्मों के अधिष्ठाता एकमात्र शुद्धानन्दाद्वय-परमात्मा की शरण में जाना चाहिए। 'इन सब विहित-धर्मों का अनुष्ठान ईश्वरेच्छा से हों अथवा न हों' इसकी चिन्ता नहीं, भगवान् के एकमात्र पावन-अनुग्रह से ही मैं कृतार्थ हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाऊँगा। 'सर्वतोभावेन' मन, वाणी एवं देह से सर्वात्मा ईश्वर वासुदेव की शरण होना मेरा परम कर्त्तव्य है। ईश्वर-शरण ही सब धर्मों का मूल है। प्रतिक्षण परम आनन्द-घन भगवान् का चिन्तन करना ही परम धर्म है, इससे बढ़कर और कोई धर्म नहीं—ऐसा दृढ़ निश्चय कर संसार के सब वर्णादि-धर्मों की चिन्ता या अभिमान से मुक्त होना ही सब धर्मों का त्याग करना है। यह आचार्य प्रवर श्री मधुसूदन स्वामी का सिद्धान्त है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि—भगवच्छरणार्थी यदि सन्ध्यादि-विहित धर्मों का परित्याग करेगा तो उसको महान् पापरूप प्रत्यवाय होगा।

इसका उत्तर यह है कि सन्ध्यावन्दनादि नित्य-नैमित्तिक विहित धर्मों के त्यागमात्र से प्रत्यवाय नहीं लगता, क्योंकि विहित कर्मों का न करना अभाव है। अभाव से भावरूप पाप की उत्पत्ति नहीं होती है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। किन्तु बहिर्मुख मानव विहित-कर्मों का परित्याग कर कुछ-न-कुछ अवश्य ही करेगा, भगवच्चिन्तन तो बहिर्मुख-व्यक्ति से हो ही नहीं सकता। 'कर्म को न करके कोई भी एक क्षण भी बेकार नहीं रह सकता' यह प्राकृतिक-नियम है। अर्थात् विहित-कर्मों को छोड़ देने पर बहिर्मुख मानव निषिद्ध कर्मों को अवश्य करेगा। फलतः निषिद्ध-कर्मों के सेवन से पाप की उत्पत्ति अवश्य ही होगी। विहित कर्मों को न करने से प्रत्यवाय होगा इसका मतलब इस तरह निकालना पड़ेगा। प्रकृत में भगवच्छरणार्थी विहित-कर्मों का त्यागकर एकाग्रता एवं अनन्य भक्ति से सकल-धर्म-शिरोमणि स्वरूप भगवान् के चिन्तन में तत्पर होता है। निषिद्ध कर्म कभी करता ही नहीं, उनको तो वह पहले से ही छोड़ देता है। इसलिए उसके द्वारा पाप की उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि भगवच्चिन्तन से महान् पुण्य की ही उत्पत्ति होती है। अतः विहित-कर्मों का त्याग कर उसके स्थान में 'सदा भगवच्चिन्तन करनेवाला पुरुष प्रत्यवायी नहीं होता। यद्यपि भगवत्प्रेमी के लिए उचित है कि वह जहाँ तक बने, वहाँ तक लोकसंग्रहार्थ विहित कर्मों को अवश्य करता रहे, परन्तु भगवच्चिन्तन में विशेष प्रेमोद्रेक होने पर परवशता की अवस्था में विहित कर्म आप-से-आप छूट जाया करते हैं। अतएव कहा है—

न कर्माणि त्यजेद्योगी कर्मभिस्त्यज्यते ह्यसौ।

योगी कर्मों को न त्यागे; यदि कर्म उसको त्याग दें तो उसमें कोई चिन्ता की बात नहीं।

(४)

धर्म शब्द से धर्म के कारणभूत—कर्मों का भी ग्रहण होता है। अर्थात् अनन्य-भक्त को लौकिक-वैदिक-सर्व कर्मों का त्याग कर देना चाहिये। सम्पूर्ण कर्मों का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्याग किये बिना मनुष्य निवृत्ति परायण कभी नहीं होता। वह ईश्वर-चिन्तन में अहर्निश नहीं लगा रह सकता। अतः लौकिक-वैदिक यावत् कर्मों के संन्यास की आवश्यकता है। सम्पूर्ण-कर्मों को त्यागकर विरक्त निःस्पृह संन्यासी बनकर 'सर्वात्मा अद्वय अच्युत भगवान् ही मैं हूँ। मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस प्रकार सदा सर्वदा पावन-भावना करना एवं दृढ़ धारणा रखना ही सब धर्मों का परित्याग है। यह भाष्यकार आचार्य श्री शंकर भगवत्पाद का सिद्धान्त है।

(५)

धर्मपद से देह धर्म, इन्द्रिय धर्म, प्राण-धर्म, मनोधर्म, बुद्धि धर्म—आदि धर्मों का भी ग्रहण होता है। इन सब धर्मों का परित्याग कर भगवान् रूप आत्मा की शरण में जाना चाहिये। ब्राह्मणत्वादि-जाति, देवदत्तादि नाम, पितृत्व-पुत्रत्वादि संबन्ध, शुक्लादि रूप एवं जन्म लेना, मरना, चलना-फिरना-बैठना आदि देह धर्म हैं। देखना, सूँघना, सुनना, स्वाद लेना, स्पर्श करना, लेना-देना आदि इन्द्रिय धर्म हैं। क्षुधा-पिपासादि प्राण-धर्म हैं, सुख-दुःख, संकल्प-विकल्पादि मन के धर्म हैं। कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि बुद्धि के धर्म हैं। ये सबके सब धर्म देहादि के हैं। देहादि से अतिरिक्त साक्षी चिदात्मरूप मुझमें ये धर्म नहीं हो सकते। मैं चिदात्मा इन सबों से रहित हूँ, असंग हूँ, निर्लेप हूँ, निर्विकार हूँ—ऐसा दृढ़ निश्चय करके देहादि धर्मों की उपेक्षा करना ही सब धर्मों का परित्याग है।

(६)

अथवा 'ध्रियते आश्रितो भवतीति धर्मः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार धर्म शब्द दृश्य, परिच्छिन्न, जड़ रूप अज्ञान एवं अज्ञान-कार्य समस्त संसार रूप अनात्मवर्ग को बतलाता है। भगवान् रूप आत्मा के अतिरिक्त यावत् कल्पित-पदार्थों का ग्रहण करने से इस पक्ष में 'सर्वधर्मान्' इस वाक्य का 'सर्व' शब्द असंकुचित वृत्ति होकर चरितार्थ होता है। गीता मे

"अहमात्मा गुडाकेश! सर्वभूताशयस्थितः।"
"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत!"
"वासुदेवः सर्वमिति"

आत्मा के अतिरिक्त संपूर्ण नाम-रूपात्मक वस्तुओं को मिथ्या-कल्पित रूप से निश्चय करना ही सर्व धर्मों को छोड़ना।

आचार्य शंकर स्वामी ने भी कहा है—

आत्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम्।
चिन्तयात्मानमानन्दरूपं यन्मुक्तिकारणम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् तमाम दुःखों के कारण महान् पापमय अनात्म-चिन्तन का त्याग करो और मुक्ति के कारण आनन्दस्वरूप आत्मा का ही सदा चिन्तन करो।

इस प्रकार धर्म शब्द के और भी अनेक अर्थ हो सकते हैं। गीता की संस्कृत-टीकाओं तथा महात्माओं के अनुभव में इन अर्थों का संग्रह है।

'शरण' शब्द के अर्थ

आचार्यप्रवर मधुसूदन स्वामी ने गीतोक्त 'शरण' शब्द के तीन अर्थ किये हैं। जैसे—

तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा।
भगवच्छरणत्वं स्यात् साधनाभ्यासपाकतः॥

अधिकारी भेद एवं साधनाभ्यास के तारतम्य से भगवच्छरणागति तीन प्रकार की सिद्ध होती है।

(१) 'तस्यैवाहम्' उस प्रभु का ही मैं हूँ।

(२) 'ममवासौ' वह प्रभु मेरा ही है।

(३) 'स एवाहम्' वह प्रभु मैं ही हूँ।

प्रथम—शरणागति मृदु है। आचार्य भगवान् श्रीशंकर स्वामी ने उसका स्वरूप इस प्रकार बताया है।

सत्यपि भेदापगमे नाथ! तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः॥

जैसे जलरूप से समुद्र और तरंग दोनों एक हैं, परन्तु समुद्र एवं तरंग की दृष्टि से दोनों का कल्पित भेद है। सच्चिदानन्द रूप दृष्टि से जीव और ईश्वर एक हो हैं; दोनों में लेशमात्र भी भेद नहीं है। परन्तु समष्टि और व्यष्टि रूप उपाधि से दोनों काल्पनिक भेद हैं। जैसे समुद्र की तरङ्गें कही जाती हैं, परन्तु तरङ्गों का समुद्र नहीं कहा जाता। समुद्र के अधोन तरङ्गें होती हैं—तरङ्गों के अधीन समुद्र नहीं होता, समुद्र के गुण, कर्म, शक्ति अनन्त है। तरङ्ग के गुण, कर्मादि अनन्त नहीं हैं अपितु स्वल्प हैं। उसो प्रकार ईश्वर के जीव कहे जाते हैं, जीवों का ईश्वर नहीं कहा जाता। ईश्वर के अधीन जीव हैं। जीव के वश में ईश्वर नहीं है। ईश्वर के गुणादि अनन्त हैं; जीव के गुणादि स्वल्प हैं। अतएव 'मैं ईश्वर का हो हूँ, परमेश्वर का दास या मित्र अथवा पुत्र हूँ—ईश्वर के ही शरणागत हूँ' इस प्रकार के भाव का नाम मृदु भगवत् शरणागति है।

द्वितीय शरणागति मध्यम है। इसका स्वरूप भक्त-प्रवर विल्वमंगल जी के आदर्श-चरित्र से स्पष्ट होता है। किसी समय सूरदास-विल्वमङ्गल जी वृन्दावन जा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहे थे। मार्ग में बड़े-बड़े खड्डे और टूटे-फूटे कूप पड़ते थे। परन्तु विल्वमङ्गल जी पक्के भक्त थे। एकमात्र आराध्य प्रभु पर ही उनका विश्वास था। वे निरन्तर अपने प्यारे प्रभु के स्मरण करते चले जा रहे थे। यकायक एक कूप सामने आ गया। एक कदम भी और आगे बढ़ते तो कूप में गिर जाते; परन्तु अन्तर्यामी प्रभु जिनके रक्षक हों, वे भला कूप में कैसे गिर सकते थे? शीघ्र ही भक्तवत्सल-प्रभु एक बालक का रूप धारण करके प्रकट हो गये; उन्होंने मधुरवाणी से कुछ कहकर विल्वमङ्गल जी का हाथ पकड़ा और इस प्रकार उन्हें कूप में गिरने से बचा लिया। इतना ही नहीं, भगवान् मीठी-मीठी बातें करते हुये विल्वमङ्गल जी को वृन्दावन की ओर ले जाने लगे। इधर विल्वमङ्गल जी को निश्चय हो गया कि यह बालक साधारण नहीं है। ये साक्षात् भगवान् हैं। थोड़ी देर बाद जब कठिन मार्ग समाप्त हो गया तब बालक रूप भगवान् जाने के लिए कहने लगे, विल्वमंगल जी उनको रोकने के लिए अनेक प्रकार के अनुनय-विनय करने लगे। परन्तु भगवान् जबर्दस्ती से हाथ छुड़ाकर चल दिए तब विल्वमङ्गल जी ने कहा—

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात् कृष्ण ! किमद्भुतम् ।
हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते ॥

हे प्यारे ! कृष्ण ! आप बलपूर्वक मेरा हाथ छुड़ाकर चल दिये हैं—यह आपका अद्भुत पराक्रम नहीं माना जा सकता है। आपका पराक्रम तो मैं तब मान सकता हूँ जब आप मेरे हृदय से निकलकर अलग हो जांय। अर्थात् आप सर्वदा ही मेरे ही हैं ·आपकी श्यामसुन्दर मुनिमनोहारिणी मनोहर साकार मूर्त्ति मेरे हृदय से कभी भी नहीं निकल सकती। यह विल्वमंगल जी का प्रेमपूर्ण दृढ़ अभिनिवेश था।

इसी प्रकार न्यायाचार्य श्री उदयनाचार्य जी ने भी प्रेमावेश में 'प्रभु मेरा है' ऐसा भाव प्रदर्शित किया था। एक समय उदयनाचार्य जी जगन्नाथ भगवान् का दर्शन के लिए पुरी गये थे। परन्तु वहाँ मन्दिर के फाटक बन्द थे, अतएव वे भगवान् को उलाहना देने लगे—उन्होंने कहा—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि मामवज्ञाय वर्त्तसे ।
उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तव स्थितिः ॥

'हे प्यारे भगवान् ! इस समय तुम ऐश्वर्य मद से उन्मत्त हो रहे हो, मेरी अवहेलना कर मुझे दर्शन नहीं देते। परन्तु ख्याल रखना कि जब नास्तिक बौद्धादि लोग आपका खण्डन करने आयेंगे, तब मेरे ही अधीन आपकी स्थिति होगी। क्योंकि इस समय इन नास्तिकों का शास्त्रार्थ द्वारा मुखमर्दन कर आपकी सिद्धि करनेवाला एकमात्र मैं ही हूँ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्त उदयनाचार्य के इस प्रकार के प्रेमभरे वचनों को सुनकर भगवान् के मन्दिर के द्वार अपने आप खुल गये। भगवान् ने मनोहर दर्शन देकर आचार्य जी को कृतार्थ किया।

तृतीया भगवच्छरणागति विष्णुपुराण में ऐसी कही गई है—

सकलमिदमहं च वासुदेवः
परमपुमान् परमेश्वरः स एकः।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते
हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात् ॥

यमराज अपने भटों से कहते हैं—हे भटो! यह विश्व वासुदेव के रूप ही है 'मैं वासुदेव हूँ' ऐसी जिसकी भावना दृढ़ हो गयी हो, उसको तुम लोग दूर से ही छोड़ देना। अस्तु 'मैं तथा सब कुछ वासुदेव ही है' इस प्रकार की अचल भावना उत्तम शरणागति है, भागवत में भी कहा है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

सर्व चराचर भूतों में जो एकमात्र भगवान् रूप अधिष्ठान अपनी आत्मा को ही देखता है और आत्मरूप भगवान् में सम्पूर्ण भूतों को कल्पित देखता है, वही सर्वोत्तम-वैष्णव भागवत है। यानी उसकी शरणागति सर्वोत्तम है।

भगवच्छरणागति एक महान् धर्म है—जो वेदादि सकल शास्त्रों में प्रतिपादित है, उसके लिए गौण-धर्म के परित्याग की आवश्यकता है। अतएव 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' इत्यादि वचनों के साथ इस प्रकार के धर्म परित्याग का कुछ विरोध नहीं हो सकता।

मामेकम्

'मां' पद के साथ 'एक' पद विशेषण रूप से जोड़कर श्री भगवान् यह सूचित करते हैं कि सर्वत्र मैं एक ही हूँ, समस्त-विश्व नियन्ता परमेश्वर मैं एक ही हूँ; तथा निखिल-भूत-प्राणियों का अन्तरात्मा भी मैं एक ही हूँ, इस प्रकार इस एक पद से भगवान् एकेश्वरवाद तथा एकात्मवाद का प्रतिपादन करते हैं। अर्थात् अनेक नाम एवं अनेक रूप विग्रह होने पर भी सर्वेश्वर भगवान् एक ही हैं। एकाधिक नहीं तथा विविध विभक्त जड़ चेतन शरीरादि-पदार्थों में भी अविभक्त एक ही अन्तरात्मा है। इस तात्पर्यार्थ को द्योतन करने के लिए ही एक पद का प्रयोग किया है, अन्यथा 'मां शरणं व्रज' (मेरी शरण में आ) इतना कहना पर्याप्त था। एक पद जोड़ने की क्या आवश्यकता थी? अतः एक पद जोड़कर श्री

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान् अनेकता में एकता का भाव तथा भेद में अभेदभाव रखने का आदेश दे रहे हैं। यही अध्यात्मप्राण भारतीय संस्कृति का स्तुत्य ध्येय है। अतएव एक भगवान् में समस्त विश्व को तथा समस्त विश्व में एक भगवान् को देखने की महनीय-समुदार भावना ने ही अभी तक भारतीय-संस्कृति को व्यापक, स्थिर एवं प्रशंसनीय बनाये रखा है। इस प्रकार श्री भगवान् ने छठे अध्याय में भी खास रूप से यही उपदेश दिया है कि "सर्व-भूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः"- सर्वभूतों में अन्तरात्मा रूप से अवस्थित मुझ भगवान् को जो भजता है वह योगी है। परन्तु वह योगी मेरा किस प्रकार भजन करता है ? क्योंकि भजन भाव से ही होता है; भाव बिना भजन बनता नहीं—रसास्वाद नहीं हो पाता, इसलिए 'एकत्वमास्थितः' का उपदेश है। एक पद के साथ लगा हुआ 'त्व' प्रत्यय भाव-अर्थ में उपदिष्ट है। एकत्व का अर्थ हुआ एक-भाव। शिव-विष्णु आदि समस्त देवों में अनेक-भाव नहीं किन्तु जो एक-भाव रखता है; एवं समस्त प्राणियों में भी एक-भाव रखता है, वही मुझ भगवान् का शान्ति से एकाग्रता से भजन कर सकता है; और भजन के दिव्य-महान् आनन्द का लाभ कर सकता है।

इसी एक भाव का नाम समभाव है। अतएव भगवान् ने 'समत्वं योग उच्यते' कहा है।

अर्थात् समभाव प्राप्त करना। यानी राग-द्वेषादि कल्मषों का जनक विषमभाव को दूर करना ही योग है। क्योंकि विषमता को दूर किये बिना समता प्राप्त नहीं होती। जिस प्रकार अन्धकार की निवृत्ति के बिना प्रकाश लाभ। समभाव से विषमभाव की निवृत्ति होती है। जिनका मन समभाव में स्थित है, उन्होंने इस जीवन में ही संसार को जीत लिया है। ब्रह्म परमात्मा निर्दोष एवं सम है। इसलिये वे सदा ब्रह्म में ही अवस्थित हैं। इसलिये श्री भगवान् ने कहा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

आत्मा सब में समान है—एक है—अविकार है, पूर्ण है। इसी भाव को हृदय में बाँधकर रखनेवाले का नाम योगी है। इस समभाव द्वारा ही प्राणिमात्र से प्रेम-सद्भाव, सहानुभूति एवं बन्धुता का प्रसार होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का समुदार भाव जाग्रत होता है।

देश में जब कभी विभिन्न मत पंथ को लेकर या ईर्ष्या-घृणित स्वार्थ आदि को लेकर विभिन्न जातियों में या विभिन्न प्रान्तों में परस्पर मनोमालिन्य बढ़ा, एवं एक दूसरे को नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयत्न हुआ तब वैदिक-सनातन-धर्म के पथ-प्रदर्शक सन्त-महात्माओं ने तथा देश के विवेकी नेताओं ने इसी ही एकत्व भावना को जनता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में जाग्रत कर प्रेम-सद्भाव एवं शान्ति का संचार किया। विश्व में आज भी मानव मानव को रक्त-रंजित जिह्वा से ग्रसने के लिए मुँह खोले खड़ा है, आपस में एक-दूसरे की सुख-सम्पत्ति को हड़पने को तैयार हुआ खड़ा है। जिधर देखो उधर ही सामाजिक संघर्ष है, राजनीतिक संघर्ष है और साम्प्रदायिक संघर्ष है। इस अनिष्ट से बचाव का एकमात्र यदि कोई उपाय है तो यही एकात्म-भाव के सर्वत्र प्रसार से ही हो सकता है। विश्व में केवल इसी एकत्व-भावना से ही सच्ची शान्ति की स्थापना हो सकती है।

और यह मानी हुई बात है कि द्वैत की (भेद की) भावना ही विरोध तथा संघर्ष का कारण है। जब अद्वैत-भावना से द्वैत की भावना मिट जायगी, तब परस्पर का विरोध एवं संघर्ष भी स्वतः मिट जायगा। इस श्रीभगवदुपदिष्ट एकत्व-वाद को अपना लेने से ही विश्व का कल्याण है। राग, द्वेष, क्रोध, हिंसादि घृणित भावनाएँ दूसरों के प्रति हुआ करती हैं, अपने स्वयं के प्रति कदापि नहीं होतीं। गीता यही उपदेश देती है कि सर्वत्र एक भगवान् अन्तरात्मा वासुदेव को ही देखो—निश्चय करो सर्वत्र आत्मस्वरूप ही है—अन्य दूसरा कोई नहीं है। सर्वत्र मैं अनन्य स्वयं हूँ।

आधुनिक युग के श्रीरामकृष्ण-परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, श्री रमण महर्षि आदि उच्चकोटि के वन्दनीय महात्माओं ने भी स्वदेश में और विदेश में भी इसी एकत्व भावना का उपदेश देकर विश्व को शान्ति की तरफ आकृष्ट किया था।

अतएव 'मामेकं शरणं व्रज' का तात्पर्यार्थ है कि सर्वत्र मैं भगवान् सर्वात्मा हूँ—ऐसा दृढ़ निश्चय कर ऐसी अनवरत-पवित्र भावना रख, ऐसा प्रभुमय निर्दोष जीवन बना, यही सच्ची शरणागति है। इसके द्वारा ही श्री भगवान् 'सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि'—समस्त पापों से मैं तुम्हें मुक्त करा दूंगा—ऐसा कहते हैं। इसके द्वारा ही सत्य, अहिंसा, त्याग, चारित्र्य, अभय आदि सद्गुण स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। शान्तिः शान्तिः शान्तिः का वैदिक त्रिविध-पाठ भी विश्व में सफल हो जाता है। ॐ तत् सत्—शिवोऽहं शिवः सर्वम् ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुकम्पाधारा

श्री चरणकमलाश्रिता

उन्नीसवाँ संयम-सप्ताह महाव्रत

२९ अक्तूबर से ४ दिसम्बर

संयम-सप्ताह महाव्रत इस बार हिमालय की गोद में, मनोहर दृश्यों से घिरे हुए, कल्याण वन जैसे पवित्र, रमणीक, एवं शान्त स्थान में, माँ की असीम अहैतुकी कृपा से, सानन्द सम्पन्न हुआ। शायद सभी भाई-बहनों ने सुना होगा कि इसी पवित्र स्थान में एक बार माँ ने असंख्य महात्माओं, ऋषि मुनियों (तीनों काल के) को तथा सब अवतारों को सूक्ष्म में देखा था। श्री रामजी को घोड़े पर सवार देखा था। (ये सब ही माँ के ज्योतिपुञ्जमय शरीर से प्रकट होकर उन्हीं के शरीर में विलीन हो गए थे ऐसा भी किसी आश्रमवासी भाई से सुना।) इस महत्त्वपूर्ण स्थान में यह स्वर्ण अवसर हम सबको, करुणामयी माँ की असीम करुणा से ही, प्राप्त हुआ।

यह लेख विशेषकर उन भाई-बहनों के लिये है जो इच्छा रहते हुए भी किसी कारणवश इस पावन महोत्सव में भाग लेने से वञ्चित रह गए। तथा जिन भाई-बहनों को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनके स्मृति-पट पर भी इससे अतीत की मधुर स्मृतियाँ मुखरित हो उठेंगी, तथा एक बार फिर कुछ अंश में महात्माओं की अमृतमयी वाणी का रसस्वादन कर सकेंगे।

माँ के निमंत्रण का आदर करके, तथा हम सब पर कृपा करने, भारत के विभिन्न स्थानों से महात्मा लोग पधारे थे। भगवत्-कथा प्रेमी भक्त वृन्द भी दूर-दूर से इस सुअवसर से लाभ उठाने के लिये आए थे। २८ ता० की शाम को सब व्रतियों के आसन पण्डाल में लग गए तथा २९ अक्तूबर की भोर वेला से कीर्तन के साथ सप्ताह आरम्भ हुआ तथा, सदा की भाँति रात्रि के १० बजे तक सुन्दर प्रोग्राम तथा महात्माओं के श्री मुख से अमृत वर्षा होती रहती थी। उसी सुधा वृष्टि की कुछ बूंदे जमा करने का प्रयास किया है, परन्तु पात्र छोटा होने के कारण, अधिक इकट्ठा न हो सका और जितना जमा हुआ भी, वह माँ की ही अनुकम्पा से। खाने, पीने, रहने आदि के नियमों से तथा कार्य-क्रम से भी, सभी भाई-बहिन, जिन्होंने एक बार भी भाग लिया है, परिचित होंगे। अतः वह सब न दोहरा कर अब महात्माओं के प्रवचनों का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत करती हूँ। यदि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसमें कोई त्रुटि है तो मेरे समझने की भूल है, यदि कोई सार, विशेषता अथवा सुन्दरता है तो वह परम पूज्य महात्माओं की है।

महात्माओं के प्रवचन देने के पहले माँ से कुछ किये गए प्रश्न तथा उनके उत्तर लिखती हूँ :—

प्र०—हम लोगों के पास और सब काम करने का 'टाइम' तो है पर पूजा पाठ के लिये समय की किफ़ायत करते हैं !

माँ—जगत् में सृष्ट हुआ जीव। भगवान् की कल्पना से जो जगत् सृष्ट हुआ। जीव जगत् का थोड़ा जो ध्यान आता है सुनी पढ़ी बातों से ही—अन्दर से नहीं। भगवान् की कल्पना भगवान् का स्वरूप है। स्वरूप प्राप्ति के लिये जो चलते हैं वह भी अनन्त। हम जो कल्पना कर लेते हैं वह फलीभूत होने से सुखी होते हैं—नहीं होने से दुखी होते हैं। संस्कार वश ऐसी स्थिति होती है जो करने नहीं देती। तोल है—स्थिति अनुसार होता है, लेकिन यह स्थिति बदलने के लिए चेष्टा करनी चाहिये। संयमित जीवन लेना। मन बुद्धि की स्थिति में मनुष्य जब तक रहता है तब तक वही उद्‌गार होता है। तुम इस रास्ते में चलोगे और भगवान् रास्ता खोल के नहीं देंगे—ऐसा हो नहीं सकता। उनके साथ सूत्र में जब तक स्पर्श न हो तब तक ऐसा हो नहीं सकता। उनके प्रकाश में घड़ी घंटा नहीं—किस मुहूर्त में हो; कहा नहीं जा सकता। वह किसी के आधीन नहीं। उनकी कृपा तो है ही—हर समय हो रही है—काल देर का सवाल नहीं है। साधन संयम का यही अभिप्राय है कि कब, किस मुहूर्त में, वह क्षण आ जाय। इसीलिये संयमित जीवन की चेष्टा।

प्रश्न—माँ; आपको देखकर कभी-कभी ऐसा लगता है कि आप कहीं चली जाती हैं ?

माँ—तुम्हारे पास ! (सब हंसने लगे) कहीं नहीं जाते—कहीं नहीं आते—किसी का खाते नहीं—किसी का लेते नहीं—किसी को देखते नहीं ! रूप और अरूप जसे जल बर्फ।

अपने अन्दर संयम न होता तो संयमित जीवन लेने के लिए कोशिश नहीं कर सकते।

कृष्ण कहाँ नहीं हैं। हर समय हर जगह हैं। तुम अर्जुन हो जाओ। ठीक-ठीक चाहना आए तो उसी वक्त उनको प्रकट होना ही पड़ेगा।

कोई भाई—कान पकड़ के सीधा करो।

माँ—वह तो कर ही रहा ! (सबका हँसना।)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रश्न—प्रेम करने से पीछे क्या गोपियों तथा चैतन्य महाप्रभु आदि की तरह रोना पड़ता है ? (माँ ने श्री विष्णु आश्रम जी से अनुरोध किया कि वे इसका उत्तर दें)

श्री विष्णु आश्रम जी—विरह में भी एक अद्भुत सुख होता है। विरह में प्रेम जितना बढ़ता है उतना पास रहने से नहीं बढ़ता।

प्रश्न—भगवान् राम ने बालि को ओट से क्यों मारा ? वह तो मर्यादा-पुरुषोत्तम थे ?

श्री विष्णु आश्रम जी—युद्ध नहीं था। (जैसे युद्ध में सामने आना आवश्यक है) उसका पशु जैसा व्यवहार होने के कारण पशु समान था। अतः पशु को मारने में कोई नियम नहीं होता। शिकार भी आड़ से होता है।

प्र०—माँ, ध्यान के समय क्या देखती हैं—कहाँ जाती हैं—किसका ध्यान करती हैं ?

माँ—आज ध्यान मौन के समय यह बात शरीर को ख्याल आई थी कि आज कोई ऐसा प्रश्न न करे सो वही प्रश्न हुआ ! जैसे आँख खोलकर देखती हूँ तुम लोग सब हो वैसे ही आँख बंद किये होने पर भी दीखता है। बताओ मैं क्या करूँ ! बोलना न बोलना, देखना न देखना, चलना बैठना आदि सब समान।

(बाद में आसन आदि के बारे में माँ ने कहा) आसन नीचे कुश ऊपर गर्म फिर उसके ऊपर सिल्क। आसन को कोई दूसरा छुए नहीं—देखे भी नहीं—ऐसा शास्त्र में ऋषि मुनि ने लिखा। अनन्त यात्री अनन्त पथ। ऋषियों की बातें एक दूसरे से न मिलने पर भी मूल में मिलती हैं। दीवाल की धोक लगाकर न बैठे—मेरुदण्ड को सीधा रखे—बिस्तर (पलंग आदि) में बैठकर न करे आदि। मेरुदण्ड सीधा क्यों रखे ऐसी बात किसी के मन में आ सकती है। जैसे बाबा ने कहा थोड़ा कष्ट कर लो। ध्यान के समय, आँख खोलकर या बंद करके, एक घण्टा भी निश्चल होकर नहीं बैठ सकते। कोई घर में कोशिश करे कि एक घंटा (या १५ मिनट या आधा घंटा ही) निश्चल होकर सीधा बैठे। जैसा आसन होता है वैसी गति होती है। अजपा जप तुम्हारे अन्दर है उसका स्पर्श पाने के लिये जप करते हैं। कैसा सुन्दर ! रात में जो सोते हैं अपने पास ही अपना चले जाते हैं। (कहते हैं न बहुत अच्छी नींद आई। यह स्पर्श न हो तो रह नहीं सकते।) भगवान् के राज्य में सब कुछ है। 'सब कुछ' ही नहीं भगवान् स्वयं हैं। मन का होश मनुष्य शरीर में ही हो सकता है। सबका जो स्मरण, जप, ध्यान आदि होता है, अक्षयरूपी भगवान् जो तुम्हारे पास हैं। हर समय मंत्र में मन को रखो, जप करो (जप करते-करते अन्दर से जैसे सुन रहे हैं) संन्यासी लोगों को जो मंत्र देते हैं वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने अन्दर हो रहा। अनन्त के बीच में एक सारे अक्षरों का बीज प्रणव। मंत्र का पूरा समाधान होने के लिये उसी में मन लग जायगा। मन्त्र अक्षर-रूपी भगवान् से योग हो जाना चाहिये। शब्द ध्वनि से नित्य जो हो रहा है उसी से भगवान् को स्पर्श करने की कोशिश करो। अक्षर, शब्द, रस, द्वारा जैसे स्पर्श हो चेष्टा करे। तुम ऋषि सन्तान हो यह मन में रखना चाहिये। जप का लक्ष्य क्या ? कहाँ से प्रकाश हुआ ? अपने को जानना माने भगवान् को जानना व भगवान् को जानना माने अपने को जानना।

प्र०——अद्वैत के साथ भक्ति कैसे रहे ?

माँ—रस, जप, मंत्र के साथ तुम एक होना चाहते हो। (जप, ध्यान के समय किसी को छुए नहीं। जिसका ज्यादह होता है दूसरे में चला जाता है—आदान प्रदान हो जाता है।) अद्वैत जो है, अद्वैत मत में जब तक यह रहे कि उसने ऐसा क्यों कहा ? ऐसा क्यों किया ? तब तक कहाँ ? अद्वैत अच्छा लगता है विग्रह भक्ति नहीं। अद्वैत मत में श्रद्धा-भक्ति होने से उसमें चले। चलते-चलते विचार आएगा——दुनिया का प्रेम शिथिल हो जायगा। कैसा सुन्दर भगवान् ने रखा अभय होकर उस लाइन में चलते रहो। चलते-चलते किस टाइम में प्रकाश हो जाय। बर्तन तैयार होने की तरह अभाव है। बड़े छोटे का सवाल नहीं। अपना गुरु अपने को जो लाइन दे वही बड़ी है। वे देखकर अधिकार अनुसार देंगे। पहले अभाव जाग्रत होने दो। जो लाइन एक बार ले चुके उसके लिये संयमित जीवन आवश्यक है। जो काम करने से भगवत्-स्मरण, ध्यान रहे वही करना चाहिये।

प्र०——सब महात्मा लोग अलग-अलग बात कहते हैं किसकी मानें ?

माँ—जहाँ जाओ वहाँ तुम्हारे गुरु, इष्ट या मंत्र के विरोध में कोई बात हो तो मत जाओ। छोड़ों पकड़ों, छोड़ो पकड़ो, छोड़ो पकड़ो ऐसा नहीं होना चाहिये। जैसे जगह-जगह कुएँ के लिये खोदने से पानी नहीं निकलता पर एक ही जगह खोदने से पानी निकल भी सकता है। (इसी समय माँ ने एक बालक के भगवान् को चिट्ठी डालने वाली व उसकी मनोकामना पूर्ण होनेवाली बात सुनाई।) फिर कहा विश्वास इतनी बड़ी चीज है। यदि ऐसा विश्वास हो कि भगवान् करेंगे तो उनसे बिना किये रहा नहीं जाता। नाप करके माँ के सिवा कोई नहीं दे सकता। पिता यदि दे सकता है तो उसमें भी मातृत्व है तभी दे सकता है। यदि प्राप्ति-इच्छा रूप ठीक-ठीक प्रकट हो जाय तो तुरन्त प्राप्ति-वहीं प्रकाश। भगवान् कहाँ नहीं ? सर्वत्र !

प्र०—शून्य क्या है ? आत्मा और परमात्मा में क्या भेद है ?

माँ—शून्य उन्हीं का एक रूप है। जल में अगर गन्दगी भी रहे तो उसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जल ही कहोगे और जल यदि फिल्टर करके साफ कर लिया वही परमात्मा। (इकट्ठा जप ध्यान करने से एक प्रकार की शक्ति उत्पन्न होती है।)

प्र०—जप, ध्यान कैसे करना चाहिये ?

माँ—जप ध्यान अलग अलग व एक साथ भी किया जाता है। श्वास हर समय चलती रहती है, किसी-किसी के जप का तरीका यह भी होता है कि उसी के साथ ध्यान जोड़ देते हैं। श्वास लेते समय व निकालते समय मंत्र कहे। श्वास की गति के अनुसार कभी लम्बा कभी कम। खींचतान मत करो आराम से जैसे हो वैसे करो। जप करते-करते कभी-कभी ताल आ जाता है व उस ताल से करने में रस आता है फिर उसमें कोई क्रम अपने आप आ जाता है। स्वाभाविक गति से जैसा अनुकूल हो करे। श्वास की गति भी हर समय एक सी नहीं रहती। और यह भी होता है कि श्वास की गति के साथ न करके ऐसे ही जप करते हैं। करते-करते अपने आप स्वर आ जाता है। किसी-किसी का ऐसा मन करता है कि जप ध्यान साथ करें। किसी-किसी से कहा जाता है जो अक्षर मिल गया वही भगवान् रूप से उसमें ध्यान रखके जप करे। रास्ते में जैसी-जैसी स्थिति आती है वैसा अपने आप हो जाता है। पहले तो देखना होता है यदि एकात्मा का ध्यान करना हो तो वह करे। वही लक्ष्य लेकर, गुरु का उपदेश लेकर उसी ढंग, क्रम से करता जाय। बाद में अपने आप रास्ता खुलता जाता है। विग्रह—जैसे जल-बर्फ। बर्फ—साकार सगुण रूप-आकार जो नित्य रहा—वह जिसके पास प्रकाश होना हो होता है। मान लो गुरु ने अक्षर भी दे दिया व मूर्ति भी। जैसा आम का बीज किसी ने दिया—लगाओ तो आम का प्रकाश होता है, वैसे ही गुरु जो बीज देते हैं वह मैं जो नित्य दास हूँ, या नित्य अंश हूँ या एक ब्रह्म ही, यह प्रकाश हो जायगा। जैसे हनुमान जी ने कहा था वह भगवान् मैं दास हूँ—वे पूर्ण मैं अंश हूँ—एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति। जैसे ॐ है वही अक्षर संन्यासी लेते हैं। विग्रह रूप से लो तो विग्रह है। श्रीकृष्ण या शक्ति, या श्री रामचन्द्र। जो नाम मंत्र पाने से वह तत्त्व प्रकाशित हो जाय—वह सबमें सब जगह रमा है—विग्रह भी। (जल बर्फ जैसा) अपनी क्रिया अपने में। जो नष्ट होनेवाला है उसको त्याग करो। नष्ट कभी इष्ट नहीं हो सकता।

प्र०—आपने कहा खाट या पलंग पर जप नहीं करना चाहिये। तब तो आसन पर ही बैठकर जप ध्यान करने का अभ्यास हो जायगा तो मरने के पहले पलंग में पड़े-पड़े कैसे जप करेंगे ?

माँ—हर समय जप चलता हो तो चाहे बिस्तर में रहें, या जहाँ रहे, उसको रोकेगा कौन ? मंत्र—मन त्राण ! मंत्ररूपी जो भगवान हैं वह तो हमारे पास रह गया, वह तो पवित्र ही करेगा। हर समय हो तो फिर बात ही क्या ? जप करते-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करते यदि ऐसी स्थिति आ जाय कि हिले-डुले नहीं या समाहित अवस्था में हिले-डुले नहीं। पर जब संख्या लेकर जप करते हैं उसके लिये शास्त्रों ने बताया कि बहुत ऊँचा आसन न हो। अच्छी तरह आराम से आसन लगाकर बैठकर, जप करे। नियम का जप नियम से ही करना चाहिये और हर समय का जप चलते-फिरते कर सकते हैं। कोई समय भगवत्-चिन्तन बिना न रहे। मंत्र तो हमें पवित्र करेगा ही वह थोड़े ही अपवित्र हो सकता है।

प्र०—भगवान् राम व श्री कृष्ण अवतार लेकर आए तो जिन्होंने उनके दर्शन किये तो उनकी मुक्ति हुई या नहीं? (माँ ने श्री चक्रपाणिजी द्वारा उत्तर दिलवाया।)

श्री चक्रपाणिजी—जो जो भगवान् के द्वारा मारे गए वे असुर भी धन्य हैं। भगवान् के दर्शनों से मुक्ति सबकी होती है पर ढंग अलग-अलग है। कोई श्रद्धा भक्ति से, कोई वैर से।

माँ—भगवत्-दर्शन होने से मुक्ति जरूर होगी।

प्र०—श्री कृष्ण भगवान् जो धरा पर आये तो क्या परदा डालकर आए कि जो पहचान सके उनकी ही मुक्ति और जिन्होंने नहीं पहचाना उनकी मुक्ति नहीं हुई?

श्री चक्रपाणि जी—भगवान् पर्दा नहीं डालते हैं। भगवान् जब दूत बनकर गए और दुर्योधन को विराट (रौद्र) रूप दिखाया तो वह भयभीत होकर भागा। उसकी निगाह में वह नटविद्या हो गई। अर्जुन ने जब विराट रूप देखा तो उसकी श्रद्धा और बढ़ गई। हमारे व आपके भीतर जो परमात्मा हैं वह अवतार नहीं अन्तर्यामी हैं। हमारे भीतर परमात्मा बैठे हुए हैं फिर भी हम नहीं देख पाते। गाढ़ निद्रा में रोज परमात्मा के साथ मिलते हैं। नहीं मिलने से जीवित नहीं रह सकते। जागने पर केवल इतना ही याद आता है कि सुख से सो गए।

प्र०—यदि भगवान् के दर्शन मात्र से मुक्ति हो जाती है तो माँ के दर्शनों से मुक्ति हो गई या नहीं?

माँ—तुमको अगर भगवत्-दर्शन सचमुच हो तो जरूर मुक्ति होगी। पूछ पाछ के, सोच विचार के प्रश्न किया तो दर्शन कहाँ?

प्र०—पिछले जन्म से हमारा आपसे क्या सम्बन्ध है?

माँ—इस समय जो तुम लोग प्रकाश हुए (वृक्ष आदि सब) इस छोटी बच्ची को दर्शन देने को आए हो। सबसे आत्मिक सम्बन्ध है।

एक माई—बनारस में जो आपने बालक देखा जो "हे पिता हे हिता..." गा रहा था वह बात सुनाइये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—बनारस में एक बार सत्संग हो रहा था, (पहले बच्चे की तरह विस्तर लगा दिया जाता था—बच्चे की तरह लेट जाती थी।) अवधूत जी थे। उन लोगों ने प्रोग्राम बनाया कि हरि कीर्तन करें। देखा एक छोटा बालक है—घुंघराले बाल—एक चादर ओढ़े—वह आँख बंद करके गा रहा था "हे पिता, हे हिता..." मैं भी साथ गा रही। इस बालक को वृन्दावन में भी देखा। मगन होकर यही गा रहा था, ("हे पिता, हे हिता हे ब्रह्म तत्त्वं") फिर किसी के कहने से माँ ने कल्याण वन में श्री हरि बाबा जी की कथा के समय जो एक और बालक को निम्नलिखित भजन मगन हो के गाते सुना था वह गा के सुनाया। भजन इस प्रकार है :—

नर तन पाया आओ प्यारे बोलो राम नाम।
राम नाम लेकर मस्त होकर चलो रामधाम॥
तन मन भरके आओ प्यारे लियो पियो राम।
राम नाम लेकर शान्त होकर चलो साकेत धाम॥
राम राम राम राम राम राम राम राम प्राणाराम।
राम राम राम राम राम राम राम राम आत्माराम॥

एक दिन सबके अनुरोध से माँ ने "कृष्ण गोपाल, प्राण गोपाल" कीर्तन अत्यन्त मधुर स्वर से किया। एक दिन किसी के अनुरोध से वाजितपुर की कुछ घटनाएँ सुनाईं।

श्री विष्णु आश्रमजी महाराज ने ३१ अक्तूबर तक ३ दिन जो प्रवचन किया उसका कुछ अंश सविस्तार यहाँ लिखती हूँ :—

"जैसे जितनी देर दिया जलता रहता है प्रकाश देता है वैसे ही भगवान् का नाम लेते रहने से पापादि दूर रहते हैं। या तो मानव शरीर में आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है या ब्रह्मलोक में। मानव शरीर में ऐसे, जैसे शीशे में अपना स्वरूप दिखाई देता है और ब्रह्मलोक में जैसे धूप छाया। आत्मा अनात्मा प्रत्यक्ष साफ दिखाई देता है।

जो मनुष्य शरीर पाकर आत्म-साक्षात्कार नहीं करता वह आत्म-हत्यारा है। ऐसी सुन्दर नाव भवसागर पार करने के लिये दे दी। सुदुर्लभ वस्तु को भगवान् ने कृपा करके सुलभ कर दिया। गुरु के आश्रय की भी कृपा की। श्रुति कहती है उठो, जागो, अज्ञान रूपी निद्रा को छोड़ दो व उठकर खड़े हो जाओ। आपको जो उपदेश दें शान्ति से ग्रहण करो आत्मा को पहचानो। जिसने अपना कोई गुरु बनाया है उसको ज्ञान की प्राप्ति होती है। उस गुरु के पास जाओ जिसने शास्त्रीय आचार का स्वयं साधन किया है व दूसरों को भी लगावें। ऐसों के हृदय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में ज्ञान वैराग्य उदय होता है। तीन प्रकार के पुरुष होते हैं—बहिर्मुख, अन्तर्मुख, अन्तर्-बहिर्मुख। प्रथम दो प्रकार के आचार्य्य नहीं बन सकते। तीसरे प्रकार के बन सकते हैं। शास्त्र से, गुरु से, एवं स्वयं अनुभव। शास्त्र ज्ञान बताते हैं, गुरु समझा देते हैं, अनुभव स्वयं करते हैं। शास्त्र के मर्म को जाननेवाले गुरु की शरण में जाओ। प्रणय करके प्रश्नों की झड़ी लगा दो व उनकी सेवा भी अच्छी प्रकार करो। जब तक समाहित चित्त नहीं होगा तब तक गुरु का उपदेश प्रवेश नहीं हो सकता। अस्तुरे की धार के समान तेजधार पर चलना जैसे कठिन है वैसे ही ज्ञान मार्ग पर चलना भी कठिन है। चित्त को समाहित, (एकाग्र) करना अत्यन्त कठिन है। इसमें असीम धैर्य एवं दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है। नामरूपात्मक जगत् चित्त से निकल जाता है। श्रुति पूछती है तुम कौन हो, किसके हो, तुम्हारा नाम क्या है? शास्त्र और आचार्य की कृपा से अविद्या को दूर कर देता है इसलिये जीव का 'जय' नाम भी है। आत्मा राजा, मन मंत्री, इन्द्रियां सेवक। तू इन्द्रियों का सम्राट् है—तू सेवकों का दास क्यों बना हुआ है? हे जीव! अपने प्रभुत्व को स्थापित कर। अविद्या का नाम है शरीर आदि में आत्म बुद्धि करना। अविद्या दुःख को सुख दिखाती है व सुख को दुःख। जैसे Sugar coated गोली। मीठी तो बहुत कम कड़वी ज्यादह। यदि संसार का थोड़ा सा सुख लोगे तो उसके साथ में दुःख ज्यादह आ जायगा। इसी प्रकार संसारी सुख थोड़ा सा छोड़ोगे तो बहुत सा दुःख छूट जायगा। महात्मा लोग थोड़ा सा दुःख लेकर बहुतसा सुख पा जाते हैं क्योंकि उनकी गोली ऊपर थोड़ी कड़वी व अन्दर बहुत ही मीठी होती है।

अपने को न समझना बंधन व अपने को पहचानना मोक्ष है। वास्तव में न बंधन है न मोक्ष है, अज्ञान से है। ऋण से दूसरे छुड़ा सकते हैं पर बंधन मोचन दूसरा नहीं कर सकता। स्वयं ही करना पड़ेगा। जैसे भूख प्यास दूर करने के लिये स्वयं खाना पीना पड़ता है। जिसको रोग है उसी को औषधि खानी पड़ेगी। दूसरे के खाने से रोग दूर नहीं हो सकता। श्रुति कहती है संसार के पदार्थों में सुख कहीं नहीं है। माया तुमको केवल मोहित करती है।

रामनामामृतरूपी अमृत वेदरूपी समुद्र से प्रकट हुआ। जब भगवान् ने महाराज दशरथ के यहां जन्म लिया तब से राम नाम नहीं हुआ। राम नाम अनादि है व संसाररूपी रोग की औषधि है। बहुत मीठा है। हमको उतना मिठास का अनुभव क्यों नहीं होता? क्योंकि हम में जो दोष हैं उनके कारण ग्रहण नहीं कर पाते। उसी का बारम्बार अभ्यास करना चाहिये। रोगी को मिश्री भी कड़वी लगती है परन्तु मिश्री खाते रहो तो पित्त दोष निवृत्त होकर मिश्री मीठी लगने लगेगी।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसी प्रकार राम नाम में इतना रस आने लगेगा कि फिर छोड़ने को जी नहीं करेगा। श्रुति माता कहती हैं ब्रह्मवेत्ता परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। आत्मा और ब्रह्म दो वस्तु नहीं। नाम दो हैं तत्त्व एक है। आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, अहम्, शब्द अलग अलग हैं पर वास्तव में एक ही हैं।

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
बिनस्यो कुम्भ जल मांहि समान्यो यह गति बिरले जानी ॥
(कबीरदास जी)

शरीर के साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं—क्योंकि एक जाति के नहीं। आत्मा निर्गुण निराकार। शरीर सगुण साकार। यदि जल खींचना हो तो रस्सी घड़े में बांध के जल खींच सकते हैं क्योंकि दोनों सजातीय हैं, पर डण्डे को आकाश में मारो तो आकाश का क्या बिगड़ेगा—क्योंकि दो जाति के हैं। मन की क्रिया से आत्मा क्रियावान नहीं होता। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि इनमें क्रिया रहती है।

"उठत, बैठत, परे, उताने। कहत कबीर हम वहीं ठिकाने ॥"

(क्रमशः)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Just as there is a veil of ignorance for the individual,
So there is also a door to Knowledge.

Mātri Vāni

Nothing has happened—to be able to understand this is very fortunate. If you can understand that nothing has happened, you have indeed been blessed with inner vision.

* * * *

Having turned to this side, the sense of want awakens. And proceeding further there is the first stage of passing from this condition of want and emptiness to one's true nature: the realization that without Him the world is darkness: nothing of this world seems attractive. It cannot be said that you have reached that state. To yearn for Him also indicates progress.

* * * *

All the time you have the desire to find, the acute feeling of lacking something. Just persist in your *sādhana* and for the rest, He will make it complete. By perfect grace comes perfect illumination. In the measure as you exert yourself you will receive.

* * * *

Action is necessary in order to remove the veil of ignorance. Using to the full the intelligence He has given you, proceed with your work. His grace is without motive or cause. Why He has not shown His mercy to you He knows best. Verily, all is His and He does according to His Will. Where there is a motive, there is the desire for fulfilment and the enjoyment of the fruit. I have acted and therefore I

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

have reaped the fruit. The fruit of what? The action is one's own and thus the consequences are eqally one's own. God is everyone's, there is but one Self (*Ātmā*). To begin with, one does not realize this and therefore questions arise. At the stage at which you are at the moment, from there it looks as you have described.

* * * *

No matter what be anyone's line of approach, at first there is torment and perplexity, one is unable to find. After that comes a state of suspense, of emptiness as it were; one cannot penetrate within neither does one derive satisfaction from worldly enjoyment.

* * * *

Take care not to be contented at any stage. Some aspirants have visions, others realizations. Or someone experiences bliss, great happiness and thinks he has himself become God. On the spiritual path, before true Realization supervenes, one may get caught in supernormal powers (*vibhūtis*). To become entangled in his kind of thing constitutes an obstacle.

* * * *

The Beloved (*Iṣṭa*) has to be realized as the aim of life. The whole creation is a manifestation of God's supernal power (*vibhūti*)—He Himself as creative power. The *Ātmā* is one—yet again, who appears as duality? None but He. It is impossible that no experience should come to one who treads the spiritual path. The fact that one has choosen this line proves that there is already some connection from before. Forgetting that God is the sole Beloved, one has come to love sense objects. When anything besides God is contem-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

plated, there is divided affection—*dū iṣṭa, duṣṭa** When will this pernicious misunderstanding be uprooted ? It is important to discriminate minutely. If you examine yourself you will see : what have I been doing the whole of today ? For how long have I remained without the remembrance of God ? How much you think of the Beloved and how much of that which is harmful (*aniṣṭa*), which takes you towards death—become aware of this.

In Kishenpur, on September 20th, 1968, Mataji gave some rules for the behaviour of the inmates of the Ashram, in response to someone's remarks and questions. The following is the translation of what Mataji said in Bengali.

(1) When elders or superiors talk do not interrupt by commenting on what is spoken about. You may give your opinion only if you are asked. If you have anything to say on the matter, you may afterwards in private tell the elder : "In connection with what was said, such and such thoughts have occurred to me".

(2) When an elder or superior is conversing with some one, one should not disturb by saying something or by chatting. If one has something important to say, one may do so after the elder has stopped talking.

(3) When conversing with one's companions one should neither make fun of anyone, nor pass critical remarks about others.

(4) With antagonism at the back of one's mind, one should not talk about anyone in either praise or blame.

(5) Do not judge your companions or discuss them with others.

(6) If someone insults or abuses you or accuses you unjustly, think : "Lord, Thou hast in this manner given me a blow to teach me a lesson. Be pleased with me again !" Do not hate the person who has dealt the blow.

* *Du iṣṭa* two Beloved ; *duṣṭa* wicked.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(7) Do not feel or speak unkindly about anyone,

(8) Be truthful in speech and action.

(9) Speak little and only when necessary.

(10) Be always cheerful.

(11) Remain calm, firm, serene and serious.

(12) Talk to everyone with calmness, serenity, steadiness and equal consideration.

(13) Cherish only what pertains to the Supreme Quest (*Paramārtha*).

(14) Your conduct must be gentle and exemplary.

(15) Be honest and frank in what you say.

(16) The search after Truth must continue at every moment. When by the accumulated force of the sustained practice of discrimination between the Real and the unreal, of *japa*, meditation, ceremonial worship, the study of scriptures, singing the praises of God—whichever of these be the main line of approach for any particular person—one becomes engrossed in the Supreme Quest, then one cannot remain without the remembrance of God, and consequently foolishness, wrong knowledge and suffering are removed. To be a human being means to aspire to God-realization. Man's calling as a human being is to find God.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Conversations with Sri Sri Anandamayi Ma

RECORDED BY PROFESSOR B. GANGULY

(*Translated from Bengali*)

Ranchi, 20th June 1965.

Question: How will in your absence the devotees derive the greatest benefit from this spiritual gathering?

Mataji: Ma Kali, Gopāl and Lord Siva have their abode in this Ashram. If you wish to benefit by their nearness, you must keep in mind that they are actually present here. Every day remember this at some time or other. They never stop giving *darsāna*, as it were; practise their presence all the time. You may not hear or see them, yet you will receive the blessing of their *satsang* from this. And whenever you feel the urge, sit in meditation near the statue of Kali. The more you meditate the better for you. Ma Kali is here for your good. In dream or during meditation She sometimes speaks to one or the other.

There is another thing to be remembered: Whatever exists, exists in your mind, Therefore try to see Him within your mind as much as possible. To man alone has been given the privilege and the capacity to attain to God-realization. Know your Self! Try to find out who you really are! Not to try for this amounts to suicide. So long as one harbours desires one cannot realize the Self. If desires prevail at the time of leaving the body, one has to take a return ticket and will be born again. To pass away while desires are lingering means death. Living for the gratification of one's desires is like slow poison. By that poison one is gradually delivered to death. Sense objects (*vishai*) are poison (*vish hai*) and they provide man with a return ticket for rebirth. Having obtained the rare boon of

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

a human body, if you wish to stop this round of birth and death, you must engage in *sādhana*. Desires ever generate new desires. Just as a creeper spreads, so also does the creeper of sense enjoyment expand and increase.

Mahātmā means great soul. *Jīvā* (individual) means that which is bound; and 'world' signifies constant change and flux. Like a leech, the *jīvā*, by its very nature, on leaving anything hooks on to something else. This is how the world of the individual is fashioned : birth, death and rebirth. And thus it appears as if God were far, far away. From this idea of God's remoteness arise foolishness, suffering, bereavement, agony, sorrow. Wife, son, daughter do not stay according to one's wish. So long as one is not independant of circumstances there is bound to be sorrow. The world (*duniya*) is based on duality; duality breeds pain, conflict, darkness. And in darkness there is the fear of falling. The learned men, the scholars of the world are all in danger of falling. Someone gets angry about a lie, yet he himself also tells lies. You should at least speak the truth, since Truth is your real nature. Lies come automatically to the individual. All the same you are longing and searching for Truth, because you are in fact pure, true, enlightened, free and tranquil. In order that That may shine forth which you actually Are, you must give up the notion of God's remoteness. Renounce that foolishness, that misery. If a person is fortunate enough to understand that he has to know Himself, then only *sādhana* will begin. Know your Self, that is to say, know God! One has to establish a relation with Him : either that of Master and servant, or of Mother and son, or as a part of Him. The spark is a particle of fire, but both have the power to burn. Similarly, the world, God and the individual are not separate. Wherever a *jīvā* is there is Siva and every woman is Gouri. You are father, son and husband all in one. Likewise, God Himself is the master as well as the servant. Water, ice and steam are of one and the same substance. The Formless and form

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

are both *Brahman, Brahmagopal*. Behold Him everywhere, sing His name. He appears as Sitaram, as Radhakrishna, Siva-Sakti and as Sakti and Her worshipper. It lies in the nature of the *jīvā* to desire woman if he is a man, and to desire man if a woman. But when one becomes aware of one's divinity then the *jīvā* is transformed into Siva. The inner and the outer are in fact one. But to make it intelligible to the mind, one has to talk of them as separate.

There are people who say : "Let God remain where He is, I am enjoying my life fully"—as if this enjoyment could last ! This is called foolishness, the fallacy that God is very distant. In order to get rid of it one has to obey the Guru's instructions and cultivate the company of saints, sages and seekers after Truth. In the midst of the attractions of form, sound, touch, taste and smell sustain the remembrance of Him. In the *mantra*, in the name received from the Guru, God Himself is present; repeat His name ! *Akṣara** (letter or syllable) is that which is beyond decay. In the *akṣara* also God is present. So long as an aspirant has not found a Guru, he should repeat whatever name appeals to him or her most. Or if someone prefers, he may contemplate light. What is light ? A reflection of the inner Light. When that inner Light becomes revealed, then there will be full illumination. All power is located within the head. There His form has to be revealed. Every single one of the innumerable forms existing are reflections of Him; why then should one clamour for a special name and form ! While you move in the sphere of name and form, hold on to Him as name and form. Or if name and form be foreign to your temperament, contemplate the light of the *Atmā*. The outer light is a reflection of His Light. He is present also in every *kriyā*. Make use of the *kriyā* received from your Guru. In all beings is He alone, be they plants, animals, birds or hu-

* *Akṣara* means both 'letter' and 'undecaying'.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

man beings—He resides in them all. Live with the remembrance of him.

This body does not advise you to renounce your home and repair to the forest. Wherever you may go, as long as you are not free from desire, there will be your home with all that it entails. No matter where you may be placed, there itself meditate, engage in *sādhana*. Just as when drops of water keep on falling, even stone is pierced, so by sustained practice the veil of ignorance will finally be rent.

For the aspirant who is a householder, his wife is an embodiment of the divine *Śakti*, his son of Balgopal. While leading a family life do your work as the manager of the Lord. When the call comes for you to leave, none can accompany you. Of course, it has happened many times that husband and wife who dearly love one another get drowned together. But this is the fruit of delusion and not a desirable death. They are suicidals. One should drown for God. The human body is meant to be dedicated to God, to be employed in the service of Him. The householder has to mould his life after the model of the ancient *Rishis* who had wives and children equally worthy, and lived as prescribed in the *Śāstras*. And one who has taken *Sannyāsa* must observe the rules and regulations of the *Sannyāsa Aśrama*. God is my very Self, the breath of my life, He is not distant but exeedingly near. Wherever you are and in whatever condition, there itself begin to practise *sādhana*. Hold on with tenacity to Him, who will liberate you from all worldly ties. You need not abandon anyone, only cling to God with all your strength. The bonds of family life caused by delusion (*moha*) are not to be fostered. With detachment, rising above delusion, live a life of service.

Why are *sādhus* called *mahātmās* ? Because they have grasped the Sublime and hold on to It. *Paramātmā* means Supreme Self; none is above or beyond It, none outside of It. The *Paramātmā* Itself is present within you. Tread the path that will reveal your inner being, that line must

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

you choose. Act precisely according to your Guru's instructions. And until you have secured a Guru, meditate on the name and form that attracts you most, that gives you peace and bliss.

This body (Mataji) is like a musical instrument: what you hear depends on how you play. What is gone never returns. What you have to do, do it today, do it at once.

Question · Mataji has said, what has to be renounced amounts to very little, but that which has to be embraced is the really great thing. Is this correct ?

Mataji: That which can be renounced and that which can be embraced—both are transitory. Where there is no question of renouncing or embracing, there He stands revealed. Embrace what eternally IS. Embrace THAT which, when gripped annuls the duality of renouncing and adopting. Embrace Him who is unembraceable. He cannot be grasped by the mind. You alone ARE, you, poised within yourself. Thus grasp THAT which, when caught hold of, leaves no question of embracing or relinquishing.

Question: Why does the mind change from moment to moment ?

Mataji: This is its very nature. One has to go beyond the mind. But this has already been discussed at length.

This body (Mataji) does not go anywhere does not take anything from anyone, does not look, does not eat or speak. As you play the instrument so you hear the sound.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Matri Satsang

SWAMI BHAGAVATANANDA GIRI

(Translated from Hindi)

6th December 1947.

Question : "Better death in the discharge of one's *dharma*........ (*Svadharme nidhanam shreya...*)" says the Bhagavad Gita. What actually is this *svadharma* ?

Mataji : Whatever one's Guru tells him to do that is everyone's *dharma*. *Brahmins*, *Kshatriyas*, *Vaishyas* and *Shudras* have each their own particular *dharma*. In actual fact, whatever the Guru shows you that is your *dharma*. Regardless of whether by fulfilling one's *dharma* one progresses or declines one should attend to it. This is why the Gita says : "Better death in the discharge of one's *dharma*...."

Question : The Gita also says : "Abandoning all *dharmas* come unto Me alone for shelter (*Sarva dharmān parityajya māmekam sharanam vraja*........) . Are these two statements not contradictory ?

Mataji : There is no contradiction. Take refuge in God. Your natures differ. This is why the Guru will show you the path. With a spirit of renunciation worship God. Seek shelter in the Self (*Ātma*).

The Questioner : There are all sorts of Gurus. Gurus of the people, Gurus who teach, Gurus who give initiation, and so forth.

Mataji : He who helps you to attain to God-realization He is indeed the supreme Guru. To serve his parents is also the *dharma* of the son. If he serves his father and mother as manifestations of Reality or as forms of God, such service will actually reach God. In the householder's Ashram a son's duty is to serve his parents and to be devoted to them.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Question : Suppose a son does not serve his parents but only serves God, what wrong is there in this ?

Mataji : If a *sādhaka* serves God as he should, the service of his parents will never become an obstacle. One who with a sincere heart worships God cannot possibly hate anyone. If he develops real faith in God, he will have faith in all. When genuine faith in God awakens, then there is no more doubt. Such a man's character becomes completely transformed.

Question : I have heard it said that saints and mahātmās are God's dwelling-place and therefore their whole bodies radiate God's power. Why then are passion, anger, greed, delusion, pride, envy and so on not destroyed when a man touches their lotus feet ?

Mataji : If you touch their feet with the sincere belief that they are God's, these enemies of yours will certainly be destroyed. Something important has to be said in this connection. *Praṇāma* must be done in the proper manner. You people do not make obeisance as it ought to be done. To do *praṇāma* means to offer oneself entirely at the feet of the Lord—everything that is in oneself. What will be the result of such total dedication ? The emptiness that is caused by giving everything will be filled completely with God's power. Just as when a pitcher is to be emptied of all the water, it has to be turned over, so you should dedicate at His feet without reserve everything that is in you, whatever it be, and become empty. Having thus created a vacuum within yourself, God's power will occupy you wholly. But *praṇāma* of this kind hardly ever occurs and therefore touching the feet of saints does not give the proper result. The place where a saint sits also becomes divine. If he is really God-possessed, then divinity will shine through him. By divine radiation everything can become divine. If there were genuine yearning for God in your heart, you would most certainly find Him. In the measure as you give, you will receive. Just as butter melts by the proximity of fire,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

so saints have the power to transform the lives of men by their mere touch. But saints do not interfere with the working of *karma*. Except of course in some very special cases—this is a different matter. As a rule karma is left to work itself out.

Question: Why does Realization not come even though one spends all the twenty-four hours at the feet of saints and sages?

Mataji: Out of the twenty-four hours, how much time do you give to God? If someone stays day and night with saints serving them, he will no doubt reap the fruit of it. If full realization does not occur, it does not mean that one has failed. The aspirant must be determined to accomplish his task at all costs, even unto death. This must be his attitude of mind. The spiritual path has to be pursued until complete Realization. So long as Rama has not been found, how can one be at rest? A man who yearns desperately for God, is actually lying prostrate at His lotus feet. He has no other interest at all.

There are two ways that lead to God. One is to do service at the Lord's feet and the other just to break the door that hides Him and to enter in. Perform *sādhana* in such a manner that there is no time at all left for any other undertaking. So long as you have not wholly realized God, do not rest. By behaving in this way, your life will be changed. Ceaselessly think of God and of God alone. While eating keep in mind that you eat solely for God's sake. Why should you sustain your body? This rare boon of a human body has been granted to you for the single purpose of doing *sādhana* in order to realize your Divinity. Those who are householders have to serve also their wives and children. But you, a *sādhu*, are free from worries. Your life belongs exclusively to God. If a *sādhaka* is truly burning to find God, then all his actions, bathing, eating – everything will be done only for God. By clinging to your

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

sādhana with firm faith and adamant determination you are bound to find Him. But if you will not live in this way, well, according to what you associate with, you will reap the fruit. This is why this small child always says: God is everywhere indeed. From whichever point you may start, God is there itself. Holy Kashi and sacred Vrindaban are actually within you. By using force one does not receive. Force is not *satyagraha* (adherance to Truth). By firm adherance to Truth God will be found.

Prayer is undoubtedly effective. Just as when the roots of a tree are watered, the water reaches every leaf and the tree remains fresh and green; so, if you dedicate your all at the Lord's lotus feet, everything will become right. By making obeisance to sages and saints, a subtle link with them is formed. As you can take water from the ocean according to your capacity, exactly similarly can you absorb God's power depending on your capacity. As you give, so you will receive.

Question: Ma! When one is attacked by inner enemies such as passion or greed, will they be put to flight by the invocation of the name "Ma"?

Mataji: If you invoke Her sincerely from the depth of your heart, then your desires will be burnt up as water is dried up by fire.

Question: Ma! Have we to do everything ourselves or will Ma also do something for us?

Mataji: (laughing heartily): In actual fact it is like this: If God did not make you act, would you be able to do anything? It is the nature of the individual to think highly of his own capacity and might. Do not imagine that it is you who are doing everything. Unless God causes you to act, you are completely helpless. Make yourself a blank. Surrender yourself at the Guru's lotus feet. In the measure as you efface yourself, you will be fulfilled.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Question : What is the meaning of 'good omen; and' 'bad omen'? I have been told that, although Brahmins are pure, to come across a Brahmin is an evil omen.

Mataji : To meet a Brahmin is very auspicious indeed. Everything depends on what one believes. You believe in somethings and so it happens. This reminds me of the following: An Englishman was to travel somewhere. Someone said: "Don't go now. The planetary constellations are unfavourable." But the gentleman paid no heed to the warning and went on his journy. When he was on high sea, a terrible storm made the boat sink. With great difficulty the gentleman reached the shore by swimming. When he arrived people said: "This is all due to that hostile constellation." Thus, everything happens according to one's *karma*.

Question : Well then, is a bad planetary constellation an obstacle or not?

Mataji : It is said that an inauspicious planetary constellation may even cause death. This is why good works should be begun on auspicious days. Will you listen to a true story? When this body was a child, it stayed in the house of its uncle. While there, some neighbours were celebrating a wedding and their relatives had come for the occasion. Kali Puja was performed in their home and everyone was engrossed in the *pūjā*. Amongst the guests was a moman with her small daughter. As about 3 a. m. the *pūjā* was over. The child had fallen asleep, but the moman woke her up when *prasāda* was being distributed. The child was crying bitterly and her mother was unable to appease her. None of the people present could calm the child. Finally her mother lost her temper and said: "Very well, *marjao*;* I shall leave you here by yourself and go to take *prasāda*." When the woman returned after a little while the child had

---

* *Morjao* literally means "die!" but is used in the sense "do as you please, I have had enough trouble."

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

disappeared. Everyone started looking for the little girl. After a long and troublesome search the child's dead body was found in the jungle. What lesson can one learn from this incident? Never, never utter anything unpropitious. A mother's scolding is done for the good of her child and is therefore a blessing. Even so no unpropitious word should be pronounced. In the world there is the auspicious as well as the inauspicious. This is God's *lila.* God Himself is beyond both. All the same, one should never say anything that is not benedictory. A *sādhaka* must be specially vigilant about the words he utters. Never, never must he allow anything to escape from his mouth that might amount to cursing. For him all talk must be about God alone, all the rest is painful and vain.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

A Little Anthology

On Renunciation

That man attains peace who abandoning all desires, moves about without attachment and longing, without the sense of "I" and "mine." This is the state of dwelling in God; having attained this, no one is ever deluded. Being established in this knowledge even at the end of life, one attains oneness with the Supreme.

—*Bhagavad-Gita*

After real meditation worldly pleasures become unalluring, dull, entirely savourless. What does *vairāgya* signify? When every single object of the world kindles as it were, the fire of renunciation, so as to make one recoil as from a shock, then there is inward and outward awakening. This, however, does not mean that *vairāgya* implies aversion or contempt for anything of the world—it simply is unacceptable, the body refuses it. Neither dislike nor anger will arise. When *vairāgya* becomes a living inspiration, one begins to discriminate as to the true nature of the world; until finally, with the glowing certainty of direct perception, the knowledge of its illusoriness arises. Each and everything belonging to the world seems to burn; one cannot touch it . . . . At present, what you enjoy does not impress you as being short-lived, rather does it appear to make you happy. But to the extent that the spirit of detachment is roused, the relish of such pleasures will die down, for are they not fleeting? In other words, death will die. Now that you are advancing towards that which is beyond time, the semblance of happiness brought about by mundane things is being consumed. As a result, the question, "What actually is this world?" will arise. So long as the world

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

seems enjoyable to you, such a query does not present itself. Since you are progressing towards that which transcends time, all that belongs to time will begin to appear to you in its true light.

—*Mataji*

The sense of possession is a great obstacle to the realization of God. The idea of "I" and "mine" must disappear entirely before the aspirant can find absolute freedom and peace in union with God. Verily, everything belongs to the Lord who dwells in the hearts of all creatures and things. Attachment to any external object narrows our vision, fosters egoism and gives rise to the false notion that we are separate from God, i.e., from the universal life and spirit. The whole universe is permeated through and through with God. The visible and invisible worlds are all He. There is nothing and none but He. All, all is He. Such is the Truth, where then is room for the ideas of "I" and "you"—"mine" and "yours?" All are He!

—*Swami Ramdas*

Jñāna never comes without renunciation of lust and possessions. With the dawn of renunciation is destroyed all ignorance, all *avidyā*. Many things can be burnt by means of a lens held in such a manner that the rays of the sun fall on it directly, but you cannot use it so in the shade of a room. Even so with the mind. You must take it out of the dark cell of this world and expose it to the full blaze of Self-effulgent Divinity. Then alone true renunciation will come, and with it all ignorance will be destroyed.

—*Sri Ramakrishna*

Whoever leaves this world behind him passes away from mortality, and when he has passed away from mortality, he attains to immortality. If thou desire to reach this abode

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

of immortality, and to attain this exalted station, divest thyself first of self and then summon unto thyself a winged steed out of nothingness, to bear thee aloft. Clothe thyself with the garment of nothingness and drink the cup of annihilation. Cover thy breast with a nothingness, and draw over thy head the robe of non-existence. Set thy foot in the stirrup of complete renunciation and, looking straight before thee, ride the steed of non-being to the place where nothing is. Thou wilt be lost again and again, yet go on thy way in tranquillity, until at last thou shalt reach the world where thou art lost altogether to Self.

—*Attar*

When we realize that we have desired so much in this life and gained so little, then the spirit of renunciation comes. Desires are the cause of all our suffering. So long as we have any selfish desire whatever, we shall have to live in the world of variety ; but the wise man realizes that this is perishable and gives it up. So long as a man is hungry he will ask for food. Only when his hunger is satisfied will he refuse it. So, as long as a man is hungry for the world, as long as he has desire, he clings to the things of the world ; but when his hunger is satisfied, then he is ready to give it up and the life of consecration begins for him.

Worldly men think that the religious man is foolish : but they will grow and change. If the child asks how sugar tastes, you cannot describe it , he will have to taste it for himself. So that state beyond desire is indescribable and you will have to taste it for yourself to know what it is. The Seers of Truth may tell you what is to be seen and felt in that state ; but only as you have experienced it for yourself, can you know what it really is. Each must have his own experience. We cannot learn from the experience of others.

It is true that when we try to lead an ideal life of absolute devotion and renunciation, we have to go through

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

many trials in the form of criticism and condemnation from the world ; but also is it true that the joy one feels in the spiritual life, even in the midst of all external suffering, is infinitely greater than any pleasure that the world can give us. So we should discriminate and stand by the Ideal, whatever may happen to us.

—*Swami Paramananda* (*of Ramakrishna Mission*)

Once the venerable Anuruddha lived at Sāvatthi, in the house near the Salalā Tree. There he addressed the monks as follows :

"This river here, the Ganges, brethren, flows to the East, is bent toward the East, directed toward the East. Now suppose a large group of people approaches, carrying mammoties and baskets, and they say : 'We shall make this river, the Ganges, flow to the West, bend it toward the West, direct it toward the West.' What do you think, brethren : can this large group of people actually make the Ganges flow toward the West, bend it toward the West, direct it toward the West ?"

"Verily not, brother."

"And why not ?"

"The Ganges, to be sure, brother, flows to the East, is bent toward the East, is directed toward the East. Impossible it is to make it flow to the West, to bend and direct it toward the West, whatever fatigue and pain this large group of people might undergo."

"Similarly, brethern: if a monk who has cultivated and frequently practised the four Foundations of Mindfulness, is surrounded by kings and ministers, by his friends, acquaintances and relatives, and offering treasure, they entreat him: 'Come, my dear man! What do you want with these yellow robes? Why do you go about with a shaven head? Come, return to the lay life where you may enjoy your treasure and do good deeds!' But, brethern, that a monk who has

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

cultivated and frequently practised the four Foundations of Mindfulness, should give up the training and return to a lower state, this is not possible. And why not? There is no possibility that a mind turned for a long time toward detachment, bent toward detachment, directed toward detachment, should return to a lower state."

—from the *Samytta-Nakaya* of the Pali Canon

If one is to find the way to spirituality – *Paramārtha* – he must never be tempted by worldly happiness. The path to God is difficult. The only thing to be done is to surrender yourself at the Feet of God. As long as the mind dwells on worldly happiness and comforts one cannot feel even the slightest touch of God. As long as the heart is not weeping for God, how can one hope to get a glimpse of an experience of God? This is the way to *Paramārtha*. He who is really and truly yearning for God, the longer time he can devote to the repetition of mantra – *japa* – to remembrance of God – *dhyāna* – to the praises of God and reading of sacred books, the greater is the possibility of getting the touch of God and of progressing. One must always try and try anew. He should not even give time to wonder whether there are results or not.

—*Mataji*

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Some Recent Significant Trends in Contemporary Western Psychology

DR. B.L. ATREYA
M.A., D.LITT.

PSYCHOSYNTHESIS

Introduction : Western Psychology is a branch of modern western science which is empirical and positive and is based on inductive methods. It is directly connected and based on biology and physiology. All its conclusions are arrived at by the application of experiments of the statistical method. Naturally, therefore, its theories are more objective and materialistic than purely mental and spiritualistic, as those of psychology (science of mind) are generally accepted to be. Most of the branches of western psychology are behaviouristic in their dealing with their particular problems, mind as such playing very little part. Recently, however, there are some trends in the field of western psychology, which indicate a significant drift towards mentality or spirituality, which bring it closer to Indian psychology. They are Psychosynthesis, Psychosomatics, and Parapsychology.

Psychosynthesis :

Psychosynthesis is a very recent trend in western psychology which has been founded by Dr. Roberto Assagioli of Italy. Like Sigmund Freud, he was originally a medical man. He took his medical degree at the University of Florence specialising in neurology and psychiatry. After having practised various methods of psychotherapy, such as suggestion, persuation, and psychoanalysis—he evolved a new and comprehensive method, aiming at a complete reconstruction of the personality, called Psychosynthesis, which he developed under the influence of study of Indian philosophy. It embodies many truths and practices of

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Indian psychology, such as Yoga. Dr. Assagioli has applied the truths of Psychosynthesis not only to cure patients, but also has used them as principles and methods of education and self-education and reform of criminals. In 1926 he founded the Institute of Psychosynthesis in Rome. Dr. Assagioli is a great writer and lecturer. He has extensively travelled in Switzerland, England, France, Holland and America. A lot of his papers and articles have been published and translated in several languages. A book by him on Psychosynthesis has also been published in 1966 by Hobbs, Dorman & Company, Inc. New York and Buenos Aires, giving in clear details the principles and application of his theory. Psychosynthesis takes a wider, and deeper view of human personality than any other school of modern psychology, including psychoanalysis. It includes in the concept of human personality its consciousness, its conscious Self or I, its unconscious discovered by Freud and his followers, which it classifies under three strata, namely, the Lower Unconscious, the Middle Unconscious, the Higher Unconscious or Super Conscious. It admits also the Collective Unconscious, discovered by Freud and Jung and others. Besides the ordinary ego or I, Psychosynthesis admits the existence in human personality of the Higher Self, corresponding to that core of being which is called the *Atman* by Indian psychologists. Thus, according to Psychosynthesis, human personality consists of 1. The Higher Self, 2. The Conscious Self or "I" (corresponding to "*Aham*" of Indian psychology), 3. The Field of Consciousness (corresponding to our waking life–*Jāgrat Awastha* (Vedanta) 4. The Higher Unconscious or Superconscious, 5. The Middle Unconscious, and 6. The Lower Unconscious. All the normal, abnormal, mystic, religious and social phonomena of human life are accounted for by this comprehensive concept of human personality by this school of psychology.

In order to be healthy and whole psychosynthesis advises a process of unifying or synthesising the multiplicity

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

of our personality in one organic unity round a dynamic centre at two different levels :— 1. At the level of the little self, leading to personal psychosynthesis. 2. By discovering the Higher Self, at the level of the Higher Self, thus leading to the possibility of spiritual psychosynthesis. The fact is that ordinarily we know neither our little self nor the Higher Self. We are wrongly identified with other aspects or factors of our personality and are controlled by that with which we are identified. We ought to awaken ourselves to our real self-hood by disidentifying ourselves (both as our little selves and as our Higher Selves) and thus truly awakening our selves into our real Selves. According to psychosynthesis as according to Vedanta, dis-identification with what we are not, is very essential for Self-realization. For awakening into the Self, disidentification from the not-self is very essential. Psychosynthesis has discovered the principle underlying all Indian *sādhana* that we are dominated by everything with which our self is identified. We can dominate and control everything from which we disidentify ourselves.

❀ ❀ ❀

The Higher Self, according to psychosynthesis is very similar to the *Atman* of the Vedanta. It is transcendental, but reflected in the individual conscious self which is changing, unsubstantial and illusory, as in the Advaita Vedanta.

Modern psychology, since the time of the publication of William James' 'Principles of Psychology', has neglected *Will*, as a great factor in human personality. Psychosynthesis has rediscovered the power of will and conscious effort, as an essential power of the conscious self with the help of which healthy psychosynthesis of personality can be effected, and all ills cured.

Indian psychology of Yoga and Vedanta with similar concepts of human personality as those of psychosynthesis,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

now can join hands with modern western psychology, by making itself practical in the interest of mankind, and psycho-synthesis may learn to be more theoretically sound and practically effective by adopting the yogic and vedantic methods of meditation and Self-realization.

PSYCHOSOMATICS

Psychosomatics (or Psychosomatic Medicine) is a recent doctrine of medical psychology which has released psychology from its materialistic behaviouristic and physiological bias that all mental activities are dependent upon bodily activities or changes. Long ago Freud had explained most somatic or physiological changes of hysterical persons as conversion in the form of bodily symptoms of the repressed mental urges or repressed ideas, but now it has been established that all emotions, conscious or unconscious, are direct or indirect causes of several somatic (bodily) illnesses, which are now named "emotionally induced illnesses." In 1928, Dr. George Draper published a paper in the Journal of the American Medical Association under the title, "Disease, a Psychosomatic Reaction". Later on several such papers were published in other journals and the term psychosomatic came into vogue. In course of time a series of monographs, entitled, "Psychosomatic Medicine, Experimental and Clinical" were published by the above mentioned journal. The Editorial Board consisted of representatives from the relevant disciplines of medicine, such as Neurology, Physiology, Psychiatry and Psychoanalysis, etc. The Tenth International Medical Congress for Psychotherapy held in July-August, in 1938, devoted a major section to psycho somatic problems. A group of investigators of Chicago working under the leadership of Alexander in Chicago, studied diseases of the digestive system and came to the conclusion that in most of them important psychogenic

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

factors were etiological factors. Recent investigations have disclosed that every bodily illness has its psychological etiological component, that the bodily disorders are mostly psychosomatic, resultants of emotions. Any emotion, according to this school of thought can set the autonomic systems and the adrenals in motion, which in turn, affect the heart, the lungs, the circulation and other visceral functions.

Usually psychosomatic disorders are temporary, as emotions are, but there are circumstances which tend to make these conditions chronic. Continued emotional stresses and strains may transform the temporary psychosomatic disorder into a chronic somatic disease.

Here are some interesting quotations from a writer who has made use of the theory of psychosomatic medicine in advising people how to keep healthy, as free from emotionally induced illness.

"Fully 85 per cent of all headaches are emotionally induced." "It was learned by careful study during World War II that the thing we have called *muscular rheumatism*, or myofibrositis or fibrositis, is almost invariably produced by emotional tension." "Fully 30 per cent of the skin trouble in the United States is what the dermatologists call the neurodermatitis". "Fully 50 per cent of the patients who complain of an ulcer-like pain are found not to have an ulcer but merely an emotional muscle pain of the stomach". "85 per cent of the patients complaining of pain in the back of the head, radiating down into the neck have their pain as a result of emotional tightness in the muscles".

According to this author, John A. Schindler, M. D., author of "*How to Live* 365 *Days A Year*," 75% of pain in the back of the neck, 90% of the lump in the throat, 50% of ulcer-like pain, 50% of gall-blader like pain; 99.44/100% of gas; 80% of giddiness; 80% of headaches, 70% of constipation and 90% of tiredness are psychosomatic; that is to say

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

all these symptoms are caused by emotinoal tension. No one, according to him, is immune to emotionally induced illness.

Emotionally induced illness is a physical, not a mental disease. It produces thousands of symptoms, varying from such homely ones, 'as pain in the neck' and 'gas' to such complicated ones as 'nephro scellerosis' and 'peptic ulcer'.

An emotion produces chemical and physical changes in the body (either on the face, where they may be seen by others, or internally, where they are felt by us)—changes that are the *feeling* of every thought we think. For example, in the emotion of anger, the chief central manifestation is reddening of the skin of the face, a widening of bloodshot whites of the eyes, contraction and tightening of the lips, clenching of the fists, a tremor in the arms, and very often a tremor in the voice. Internally, when you become angry, your blood immediately clots quicker than normal. When you become angry the number of blood-cells increases by as much as half a million per cubic millimeter. When a person becomes angry, the muscles at the outlet of the stomach squeeze down so tightly that nothing leaves the stomach during anger, and the entire digestive tract is affected so that many people have severe abdominal pains during or after a fit of anger. The heart rate goes up markedly during anger, often to 180 or 220 or higher, and stays there until the anger has passed. The blood pressure rises markedly and speedily from a normal of 130 to 230 or more, blowing some blood-vessels in the brain. Part of the manifestations of the emotion of fear is a squeezing down of some of the vessels of the brain—this produces the faint.

Part of the manifestations of the emotion of disgust is a contraction of the stomach, violent enough to cause vomiting.

The emotional effects produced through the autonomic nervous system are less severe than those produced through

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

the endocrine gland. A common nerve effect is a tight muscle; a tight muscle is painful, whether it is in a leg, in a blood vessel, or in the stomach. Thus emotionally tight muscles produce pain in the back of the neck, in the stomach, in the colon, in the scalp, in blood vessels, in skeletal muscles. Emotionally tight muscles produce ulcer-like pains, gall-blader like pains, common headaches, migraine headaches, and a great host of clinical pictures. Another blood vessel effect is neuro-dermatitis which constitutes 30 p. c. of all skin diseases. The phenomenon we ordinarily term 'gas' is in reality an emotional spasm of muscles in the small intestine. Most belches are emotional muscle effects in the stomach.

Hyperventilation syndrome : Hyperventilation means breathing too deeply, or too fast or both. This is a symptom emotionally induced in which chemical factors play a leading role. Hyperventilation produces cramps at night. A person under emotional stress is likely to hyperventilate, breathes more rapidly than normal without being aware of it.

Emotions produce diseases by stimulating the glands :

The unpleasant emotions can stimulate any or all of the many hormones. What is more, a very acute emotion will produce immediately a profound effect to a much greater degree than will any other type of stresser. Emotions influence the pituitary gland to produce somatropic hormone (STH) which helps the body to mobilize its defences against any kind of infection, which produces the picture we know simply as 'being sick'. STH is stressed by dark, dismal, futile, despairing emotions. Asthma can be generated by emotions, and be made worse by emotional tension. Cases of asthma created by emotional stress are usually the more serious cases and more difficult to control than those acquired on infectious basis.

Psychosomatics brings western psychology closer to Indian psychology, making mind as important a factor in

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

human personality as the body. Both the *Mahabharata* and the *Yogavasistha* say that when the mind is disturbed, the body gets sick, and when the mind attains equilibrium, the body gets well. Yoga is the all-cure of all illness of the human personality, as the control of all the emotions of man becomes justified. The more peaceful the mind, the healthier the body remains. Thus as by psychosynthesis, by psycho-somatics western psychology is brought much nearer to the age-old concepts of Indian psychology.

There is much more possibility of closer co-operation of the two in advancing the cause of growing knowledge of human nature for the greater benefit of mankind.

(To be continued)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Siddhas or Narthas of South India
Their Life and Thought

T. KRISHNAJI

Yoga Darśana or the Science of Yoga has been practised since ancient times in India, Tibet, China and other countries. For western thinkers, mind is still a mystery. They assume that it is geared to the sense organs. The latest achievements in parapsychology, extra sensory perception, etc. compel them to recognize the intuitive capacity and the unrecognized powers of the mind. (New Frontiers of the Mind by J. B. Rhine). Mind control by psycho-physical discipline is known as *Yoga* and its practice aims at the purification of the mind preparatory to *jñāna* and *bhakti sādhanas.* Yoga is the link for all schools of philosophy. Patanjali, the seer-philosopher, author of the *Yoga Sutras*, divides the *yoga sādhana* into four stages: *Sādhana, Sāmadhi, Vibhuti* and *Kaivalya.* Yoga with its eight limbs (*astānga*) aims at a restraint of the senses, at allowing the mind to regain its true nature. Yoga is not union with God but "isolation of the Eternal from the originated and the whole scheme of yoga technique is to realize the eternity of the individual human soul outside of space and time." Man suffers *viyoga* or separation from his true Self or Being; *yoga sādhana* makes possible the recovery of the lost kingdom.

Patanjali, in the '*Vibhuti Pada*', refers to the acquisition of occult powers, thaumaturgy and super-normal powers through *yoga sādhana.* As the aim of *yoga* is *kaivalya* or liberation, Patanjali cautions the *yogi* against the exhibition of such powers. They thwart the true aim of *yoga.* The *yogi* who achieves fulfilment or *Siddhi* is called a *Siddha* or *Natha.* His occult and supernormal powers

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

transcend the limitations of normal capacity, time and space. The *yoga* of Patanjali is theistic and the *yogi* has to adore God, eternal and all-pervasive, to obtain His grace. All the *siddhas* are monotheists, devotees of the Supreme God Siva, the *Adinātha*, who is the greatest yogi, the spiritual preceptor, who revealed the *Agama Śāstra*.

The *Yoga Sutras* speak of *Siddhi* attainable through human birth, using medicine, mantra, austerities and *samādhi*. Patanjali is reputed to have written a treatise on medicine. Health has to be preserved for *sādhana*.

Kapila Rishi was a born *Siddha* and Lord Krishna says in the Gita : "I am Kapila among the *siddhas*." Mandavya Rishi became a *siddha* through medicinal herbs and Narada through *mantra*. Viswamitra got *siddhi* throug *tapas* or austerities. Sage Vidyaranya, in his *Sarva Darśana Sāngraha*, refers to *Raseswara Darśana*, that advocates the preservation of the human body by revitalizing it through *rāsa* (mercury), medicines called *kāya sādhana* to ward off disease and death. The *siddha* school of medicine is in vogue in South India. The *siddhas* lay special emphasis on *kāya sādhana*. Revana Siddha of the 12th century A.D. speaks highly of human birth, "great is birth, great is the human life" and as the body is the vehicle for *sādhana*, its powers of endurance have to re-vitalized. The *Natha Siddhas* expound the theory of preserving the nectar oozing from the moon (*sahasrāra*) and that "an immortal and spiritual life can be obtained by revitalizing the human body and thus making it immaculate."

It is interesting to note that the *siddha marga* is followed in other countries too. Hakuin Zinji (1685-1764), great Zen Master of Japan, practised meditation rigorously and ruined his health. He discovered sage Haku 0, aged about 240 years, who lived on top of a hill far from the madding crowd. Haku 0 told Hakuin that meditation should not be "unmeasured." He said further : "When the spirit is disciplin-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ed, the mind becomes concentrated, when the mind is concentrated the elixir is produced, when the elixir is produced the form becomes fixed and when the form is fixed the spirit is perfected. It should be known that the elixir is certainly not an outward thing....and when the divine elixir is produced, there will be no end to the counting of years." (The Embossed Tea Kettle). The existence of *siddhas* aged 1000 years in the *Siddha Ashrama* at Mount Kailas has been spoken of by tbe great savant saint Dr. Gopinath Kaviraj. (See 'Serpent in Paradise', and "Life of Swami Visudhananda" by Gopinath Kaviraj).

Although we divide the *siddhas* into *Natha Siddhas*, *Siddhas* of Tibet and *Siddhas* of Tamil-Nad, there is an undercurrent of close affinity, mutual influence and inspiration between them all from Pasupathinath to Rameswaram. The *yoga sādhana* is the common culture of All India. The 84 *siddhas* of Tibetan tradition include Matsyendranath and Gorakhnath. There are nine *Natha Siddhas* and eighteen *Siddhas* of Tamil Nad. There have been many *siddhas* revered all over India. but they are outside the enumerated *siddhas*. Sri Ramalingaswami, Sri Visudhanandaji. etc were great *siddhas* and mahatmas. The Siddhas and Nathas of Tamil Nad were great devotees of God *Śiva* and His *Śakti* and they spread devotion to God *Śiva* and His *Śakti* all over India.

There is no authentic information regarding the lives and times of the *Siddhas* and what we know is merely from traditional accounts, mostly legendary. The Nine Nathas are : Gorakh, Jalandhar, Charpati, Adambaksha, Kanipha, Matsyendra, Chauranghi, Revana and Bhartrihari. Matsyendra and Jalandhar (King of Jalandhar) were taught *siddha marga* by God Siva. Adinath, Kanipha, Minavathi and Raja Gopichandra were the disciples of Jalandhar, Gorakh and Chauranginath (a Pala King of Bengal) were disciples of Matsyendra. Of all Natha Siddhas, Matsyendra and

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Gorakh are outstanding. In about the 6th or 7th century A. D. they went to Nepal and gave relief to the country from famine. Since then they have been deified and worshipped as the patron saints of Nepal and the footprints of Gorakh adorn the crown of Nepal's ruler. Gorakh is also revered as an incarnation of God Siva and has some shrines. He left a number of writings on *Natha* cult. He had *darśana* of Lord Dattatreya and one of the works, *Jñāna Deepa Bodha* is a dialogue between Gorakh and Dattatreya, revealing the essence of *Vedanta* and *Siddhanta.* (This has been published recently by Sri Yoganathaswami, Varanasi.) There is affinity between the Natha and Avadhoota sects.

"Gorakh" means one who protects cows. Tirumular, a *Siddha* of Tamil Nada too had protected cows. It is suggested by scholars that Gorakh hailed from Andhra Desa, Punjab, Bengal, Saurastra and Maharastra, etc, and that he lived in about the 10th century A. D. *Siddhas* live long and thus it is not improbable that he lived from the 6th or 7th century to the 10th century A. D. and his field of activity was not confined to any one state. Dr. V. Raghavan says: "Gorakh and his teaching pervaded the whole of Northern India" (Saint Singers of India. Prabhudev Siddha, 1157 A. D). A close associate of Basava, the founder of the Lingayat Sect, had met Gorakh on the Sri Saila Hill. Gorakh told him that through yoga his body had become *vajra kāya.* Prabhudeva silenced him saying" *māya* is *chāya* and *chāya* is *māyā.* What is the use of an adamantine body, it is but an illusion and a show". Charpata and Gaininath were the disciples of Gorakh. Gaininath gave spiritual initiation to Nivrithinatha, who became the preceptor of his brother Jnaneswar, the greatest mystic philosopher of Maharastra. The philosophy of Jnandeva, Sphurtivada or emanation theory is also a doctrine of the Natha Panthis.

Bhartrihari, a Nātha Siddha, was a king of Ujjain, who in a moment of *vairāgya* gave up everything and became

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

an ascetic. He was the author of Niti, Sringara and Vairagya, hundred verses on each like the triad teaching of Valluvar, the great South Indian moralist, and a *siddha.* Revana Siddha was a great Lingayat teacher (Renukacharya) who performed *tapas* in the *kada siddha* hills and identified with one Kada siddha. Probably the reference to Revana Natha may be identified with Renukacharya.

Eighteen Siddhas have been named in the Tamil Nad but there has been no authentic information about their lives and times. There are traditional legends and their poetic preachings. Thirumular, a great *siddha,* travelled from the Himalayan regions to the south to meet Sage Agasthya. At Thiruvaduthurai, he saw the pitiable plight of a herd of cows weeping over the death of their cowherd. Thirumular entered the dead body and drove the cattle home. As he had saved the cows from their sorrow, he may also be named Gorakh. He is said to have lived in the 6th century A.D. and is one of the 63 saints, Nayanmars, devotees of Siva, of Tamil Nad. He wrote an authoritative work on Śiva Siddhanta called Thirumanthiram.

Śiva Vakyar, a siddha, was a great devotee of Śiva. He changed his faith and became a staunch devotee of Visnu. When Śiva came to see him, he refused to see any God but Visnu. Śiva was pleased at his intense devotion to Visnu and graciously named him 'Bhakti Sara'. He was a contemporary of the early Alwars, Vaishnava saints, Poegay, Pey and Bhuta Alwars. As a *siddha,* his poetry reveals him as a critic of ritualism, orthodoxy, and scriptural authority.

Pattinathar was a rich man of Kaveripumpattinam. He lived in luxury in the 10th century A. D.. His spirit of dispasion was roused by a lad leaving with him an eyeless needle and a message that at the time of his death not even an eyeless needle would accompany him. He gave away his riches and left home as an ascetic, extolling devotion

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

to God Śiva and inculcating due observance of the virtues of truth, compassion and charity. He went to the bedside of his mother before her death to fulfill his promise to her and cremated her body. His kinsmen deserted him but he discharged his filial duty like Sri Sankaracharya. Pattinathar attained his *mahāsamādhi* at Thiruvathiyur, a suburb of Madras city, and his *samādhi* is a place of worship. Bhadragiri was the king of Tuluva country. He was associated with Pattinathar and became a *siddha*. The above mentioned lived prior to the 10th century A. D. and the other siddhas of Tamil Nad belonged to the 16th or 17th centuries A. D.

Pambati Siddha sang a song called "Snake Dance Song" extolling the supremacy of God Śiva. He derides idol worship, caste and the Agama Śāstra. In his song he compares the human soul to a snake. Karuvuru siddha is identified with one Thirumalika Devar who founded a monastery and worked several miracles of raising the dead etc. He disappeared mysteriously. Ahappey *siddha* was a *jñāni* and preached realization of God Siva through *jñāna*. Idaikattu Siddha composed a song in which two shepherds hold a spiritual dialogue, inculcating restraint of the senses and realization of God in one's own heart. Kudumbai Siddha says: "The ultimate spiritual life is divine bliss." Kaduvel Siddha denounces the evils of anger, fraud, drink etc and advocates an ethical life and devotion to God. The other *siddhas* were Auvai, a woman yogi, Siralan, Kumara, Devar, Muthu Thandavar, Venkadar, Arunagiri and Thirumai Gaittavar.

There is another traditional list of *siddhas* which includes Agasthya, Chattamuni, Kaka Bhusundar, Suryander, Bogar. Most of the names are legendary. Bogar was a *siddha* of the 6th century A. D. or earlier. He came from China with a companion, Pulipani, whom he had taught medicine and alchemy. Bogar was a Taoist. His *samādhi*

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

is within the precincts of the Palani Temple. It is said that he entered an underground passage by the side of his *samādhi* and disappeared. "A *siddha* is one who passes into the unseen when his hour is struck, not by death but by vanishing from sight into space, because his body is a transmuted body, so immaculately etherial in composition that death cannot touch it." (Palani Devashtanam Bulletin).

The religion of the *siddhas* is devotion to God Śiva and to lead a high ethical life. So they preach devotion to God—God within the heart or outside in the shrines; and censure social evils, moral lapses and formal religious usages. They were *ativarnāsramis*, (beyound the four *āśramas*), and so they boldly denounced social evils. Their language is symbolic and incisive. They wery held in high reverence and their life and conduct was holy. All the *Siddhas*, *Nathas* of South India believed in 36 Tatvas, and the common ground of philosophy is Śaiva Siddhanta. Yoga is the heritage of all. The *siddhas* of the Tamil Nad enriched the Tamil language by their poetic preaching. They exhort us to wake up to spiritual life. They played a notable part in arousing the people to religious and spiritual life. Though many siddhas belong to the past, they exercise profound influence over the people even now. Though they seem to be dead, they ary alive, revered and worshipped by the people of India. They have contributed richly to the religious life of the country.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Vaishnavadevi-A Tirtha of the Himalayas

Saroj

Far from the madding crowd, among the peaks of Trikuta mountain at a height of 5780ft is situated the cave-temple of Vaishnavadevi. The way to this pilgrims' place is from Katra, a small hilly town at a distance of 31 miles from Jammu, from where the journey of 13 miles is covered on foot or on horse-back.

According to mythological sayings, Bhairon, the Rakshas, got enamoured of Bhagwati Durga, the Goddess Vaishnavi and made an attempt to win her over. But the Goddess rendered all his attempts futile by encaving herself for six months at a place known as Adi-kumari at a height of 4783 ft. It is a marvellous spot where pilgrims feel the vibrations of divine love while passing through the narrow-mouthed, oily-surfaced, uneven cave known as '*garbhavāsa*' that was originally the abode of the Goddess. It is hardly 4 yards long, but the way one goes round it is an ordeal for everyone.

Later Bhairon's head was shorn on a hill named after the demon and his body was thrown miles off at the cave sacred to the Goddess Vaishnavi, the Śakti of Vishnu. After slaying the demon, Bhagwati graced him by assuring his salvation through the continual passing of Her devotees' foot-steps.

It is said that the cave was carved out by the stroke of the Goddess' *trident*. The cave is extremely narrow, allowing merely one row of not more than twenty devotees at a time. Therein, the darkness above and the coolness of Charanganga water below, present a highly mystical atmosphere to the pilgrims. The first five yards from the entrance are covered by prostration. Then, wading for about 90 yds. in

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

the icy cold water, devotees find a wide canopy of rocks, where the universal force, the eternal Śakti of Brahma got itself personified in the forms of Mahasaraswati, Mahavaishnavi and Mahakali. The waters oozing incessantly out of Bhagwati's feet, the miraculous access to the *darbar*, the narrow entrance of the temple, all make devotees consecrate themselves at the sacred feet of the Divine Śakti.

The pilgrimage to Vaishnavadevi continues round the year. However, *Navaratri*, the nine days' period in Chaittra and Ashwini each year is considered to be specially sacred to the Goddess Durga.

The pilgrimage commences with a roaring jayakar of '*Jaya Mata Ki*', '*Jaya Mata Ki*', Journeying for about 1-½ miles from Katra, the pilgrims come across Vana-ganga, the sacred stream brought into being by a shot of Bhagwati's arrow. It is essential to take a dip in Vana-ganga, either while going or coming back from the pilgrimage. Later, they reach Charanpaduka, which is one mile away from Vanaganga, situated at an altitude of 3378 ft. Here, as the name of the place indicates, the foot prints of the Goddess are noticeable.

The first halt is made at Adi Kumari which is 4783 ft. above sea level and 5 miles distance from Katra. Adequate arrangements are made here for lodging and boarding. Then begins the assent to the rocky path of Hathimattha, called so on account of its steepness. The route onward is irksome and tedious. However, wondrous is the effect of Mother's name so that the pilgrims' enthusiasm knows no curbing at any pace. Moreover, the harder the path the greater the zeal of the devotees and the breath taking journey is accomplished easily by all. Neither tiny tots nor haggard skeletons of eighty notice the difficulty in reaching the *darbar*. Whenever devotees feel the loss of energy, the sudden *jayaghosh*' of '*Jaya Mata Ki*' exhilarates them and gives them vigour for their march.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Covering the distance of about ten miles, pilgrims reach 'Sanjhi-chhatta' (साँझी छत्त) a peak tucked high up in the Himalayas at a height of 7840 ft. This spot commands a panoramic view of snow-capped Himalayas, the eternal protectors of Bharat where gods reside and sages repose. The cool, balmy, placid air of this spot is very refreshing; from here one covers a distance of one more mile and then reaches Bhairon, a hill, 6583 ft. above sea-level. Here ends the ascent as the route onward goes down right upto 3 miles. The descent is still more laborious since the way is so far unpaved. Whatever be the hardships of the track, a continuous stream of devotees trudges on with zeal and zest, bearing the stress and strain for the one glimpse of the Goddess Vaishnavi whose name floats everywhere in the air.

On reaching the *darbar*, devotees are bound to take a bath in the Charan-ganga, the icy-cold water of which benumbs the whole body for a second; still the bath is indispensable as it takes away all the fatigue of the journey. Afterwards they wait for an entrance into the temple with the essential *pujan-samigri*. It is quite surprising to note that even during off months like May and June, people throng the court yard of the temple waiting for hours and hours for *darśana*.

No suggestions to broaden the mouth of the cave are possible as the mason is liable to be cursed if he raises a chisel at the stones of the holy cave. It appears as if Bhagwati is pleased by the continual rush of Her devotees who go on waiting patiently for Her *darśana*. It is a trial of perseverance for the *bhaktas* and probably the more long-suffering they are, the more blessed they feel.

The return journey can be made the same day if people do not feel exhausted. The lodging and boarding arrangements are laudable near the temple. *Halwa* prepared there is especially tasty. Each devotee can be provided with blankets in time of need. The fact that all the edibles, in this

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

age of *dalda*, are fried and cooked here in pure ghee, needs special mentioning.

It is said that Swami Vivekananda visited this holy place in the course of his pilgrimage trough *Uttarakhanda*. Guru Govind Singh was also blessed by the Goddess Vaishnavi.

This is how Vaishnavadevi, the *tirtha* of the Himalayas, the shrine of the Goddess Durga, has been a source of inspiration to millions of pilgrims and is likely to remain so for ages to come.

—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mātri Līlā

(15th September—15th December 1968.)

As already mentioned in the last issue of 'Ananda Vārtā', Mataji alighted in Kishenpur from Delhi on September 10th. On the 12th she went to stay in Raipur for two nights. On the 1[illegible]th Sri Gurupriya Devi commemorated the anniversary of her father Sri Akhandanandaji's *Mahāsamādhi* by giving a feast to Sadhus at the Kishenpur Ashram. There was kirtan for a few hours round midday. At 12 o'clock Mataji suddenly appeared quite unexpectedly in the hall of the Ashram. When the feast was over she returned to Raipur for another night and the next day. On *Mahālāya* day, September 22nd, special kirtan was performed during the solar eclipse. Mataji was present for two hours and at the end of the eclipse sprinkled *Gangajal* on everyone.

On the 23rd of September, the first day of *Navarātri*, Mataji shifted to her charming new cottage in the compound of Mr. & Mrs. Khaitan, next door to Kalyanvan. Durga Puja, Lakshmi Puja, Kali Puja and the 19th Samyam Mahavrata were all celebrated in a large and beautiful pandal in the same compound and Mataji remained in her new house until November 8th. On the 23rd of September an earthern pitcher (*ghata*) filled with sacred water brought from the Ganga, Jamuna, Gangotri and Jamnotri, etc was installed in the Mandap constructed of bricks that opened out into the pandal. The *ghata* was worshipped daily as a symbol of the deity until the installation of the traditional image of Durga, Lakshmi, Saraswati, etc., on September 28th, *Saptami* day. On the first day of *Navaratri* Professor Tripurari Chakravarti arrived from Calcutta and started that very evening a course of highly interesting talks on the Valmiki Ramayana that continued for full 21 days. He

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

stayed on for the Samyam Saptah, and after the Ramayana talked on the Mahabharata. His lectures attracted many people from Dehradun who attended regularly. Mataji was always present and thus we had *darśana* every evening for two hours and longer even in the intervals between the festivals, during which Mataji was visible most of the time until late at night. One day Professor Chakravarti was invited to talk about Vivekananda at the Kishenpur Ramakrishna Mission. Mataji also paid a visit to the R. K. Mission on that occasion. A large gathering was held there in the open air.

From September 28th to October 1st Durga Puja was celebrated. Many guests had arrived from various places, as far off even as Calcutta and Bombay, and some remained for several weeks. Two ladies, hailing from Germany and France respectively, also participated. A huge crowd flocked from Dehradun on the main days of the Puja. On *Ashtami* and *Naomi*, feasts and presents were given to 108 *Kumaris* each day. As always in Mataji's presence, every detail of the puja was performed to perfection. Mataji was extremely active and saw to everything in person, paying no attention to her unsatisfactory health. There was exquisite music during the ceremonies. Over and above the proceedings in the pandal, one hundred *Durga Sapta Satis* were chanted in the puja room of the yet unfinished house of Mr. & Mrs. Khaitan, and on *Naomi* day this part of the function was duly completed by a *yajña* performed in front of the house.

Mahamandaleshwara Sri Swami Maheshwaranandaji arrived on *Saptami* and stayed for three days in one of the cottages at Kalyanvan. He delivered three brilliant, very witty and entertaining talks on the significance of Devi, of Durga Puja and so on. But actually all his discourses were on *Advaita*, the one theme he discusses in endless variations. "Do not imagine", he said that the devotees of Krishna and those of Durga worship different gods. These are different

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

aspects of the One. Just as different organs have different functions: The eyes cannot hear and the ears cannot see, yet they belong to one body. When you injure your foot, your eyes weep, your tongue shouts for help and your hands attend to the wound. Why should this be so, if they were not one?" He used parables and amusing stories to illustrate and make intelligible profound truths.

Every evening for half an hour Brahmachari Nirmalananda would explain the meaning of Durga Puja. What he said was in fact for many a necessary part of the celebrations. It was interesting, instructive and thought provoking. There are two sides to the puja: the inner and the outer. In actual fact Devi resides within the heart of every human being. She is outside only by projection. The priest has to identify himself with his object of worship to make the puja effective. The worship is different on each day. On *Saptami* the bathing of the deity is the main item, that is to say, purification. On *Ashtami* the actual, most elaborate worship of the goddess is the central idea; and on *Naomi* one is to dedicate oneself with all that one is to the object of worship. What God wants as offering from us all is the ego, that and nothing else. All offerings are but symbolic of the variegated aspects of the I-ness. Mataji often tells a story in which someone asks: "What does God eat?" The reply given is: "God eats the ego." On *Daśami* the living presence of the goddess is withdrawn from the image, so that we may feel Her presence within our own being. The goddess has been projected outside only to remind us, to make us aware of Her constant presence within us. Why is the image immersed in water? It is said that the gods reside in water. Thus the image is not thrown away into water, but returned to the realm to which the goddess belongs.

At the end of the evening programme Mataji daily replied to questions or told stories with great vivacity. Responding to a general request, Km. Chhabi Banerji sang

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

special Bengali kirtan for three and a half hours on October 3rd. On the 5th night, full moon, Lakshmi Puja was performed to a beautiful image of the goddess. On the 6th a lunar eclipse was observed by kirtan. The next morning, during *darśana* time in her room, Mataji talked at lengh about Naimisharanya, urging everyone to attend the forthcoming function there in our new Ashram from November 21st to December 5th. Naimisharanya is a very special place. It is said that Kali Yuga cannot touch Naimisharanya. Mataji, amongst other things, related about the floods there in October 1960, just before our Samyam Vrata was to be held. The whole area was deep under water and the officials who had undertaken to assist with the arrangements suggested the shifting of the function to Lucknow. Wires and trunkcalls were sent to Mataji to obtain her permission. In the meanwhile, Swami Paramananda was in Naimisharanya in order to prepare for the gathering. "Since Mataji has sent me here," he said to the officials, "I shall not give up the attempt to arrange here itself." They felt that he must be either crazy or lacking in intelligence to attempt the impossible. One day, Mataji, who was in Dehradun, asked for a glass of water and drank it up to the last drop, saying ; "Just as it takes no time to empty a glass of water, so God, if He so wills can withdraw the floods in no time." Within three days the water had all flown off. People said that they had never before witnessed floods subsiding at such speed. However, the place where the pandal was to be erected was just a mass of deep, soaking wet mud. Swami Paramananda hired a hundred kulis and had the whole area covered with a thick layer of sand. Only the night before the *Samyam Saptaha* started, could the pandal be completed. Many of the tents were pitched after the *vratis* who were to occupy them had arrived. But the function took place as scheduled and was one of the best and most memorable we had ever known. Mataji remarked jokingly that the Gomati had come in person to cleanse and purify the whole place with her waters in

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

preparation of our gathering, which comprised the reading of 108 Srimad Bhagavatas by 108 pandits for a week, following immediately the *Samyam Vrata.*

Practically during the whole period of about four weeks between *Durga Puja* and the *Samyam Vrata,* Mataji would give *darśana* in her room from 11-12 midday. The lovely, spacious room, which commands a panoramic view of the mountains, was always packed, with people overflowing into the corridor and the adjoining rooms. Varied and interesting conversations often ensued. The above is only one example.

The same evening at dusk, a young devotee who is an electrician, was called to do some repair. He ran down to Mataji's house by a shortcut without path. On his way he put his foot on a thick black piece of wood (as he thought) but found it to be a king cobra ! It stood up, waving its huge hood and slapped his leg but did not bite him. He stood quite still for some time, fearing that the snake might chase him if he moved. Al long last, shouting 'Ma' he bolted away. The cobra remained where it was. Mataji asked him to sleep in her house that night.

One morning an old English gentleman came for Mataji's *darśana* who had been a Government official at Dacca when Mataji lived there over forty years ago. Now having taken up work at the Welham School in Dehradun, he asked permission to bring his students. Thus, on October 18th evening, 41 boys arrived with one of their teachers. Mataji asked them questions about themselves and their school and then talked to them as she usually talks to children. They sang to Mataji. At the end they expressed the wish to put a picture of Mataji up in their school. It was presented to them. Mataji distributed sweets and flowers to them and touched each boy's head.

Another evening a bus full of Europeans hailing from various countries came for Mataji's *darśana,* led by their Guru, an Indian Swami who is running an Ashram in Germany. Yet another day Sri Swami Chinmoyananda,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

who has an Ashram near Bombay came from Uttarkashi with a number of his disciples and delivered a talk.

On October 1ʕth-20th the Delhi Kirtan party performed *Nāma Yajña* of *Mahāmantra*. All present took active part, the men singing all day and the women all night. On October 21st, Divali night, Kali Puja was performed until the small hours of the morning. In the evening of *Annakut*, Mataji distributed trays and trays of sweets to all who approached her in a very orderly queue. It took hours. After the Divali functions, the Mandap was converted into a dais to seat the speakers at the Samyam Mahavrata, which took place from October 29th to November 4th.

Each *Samyam Vrata* seems more wonderful than the preceding ones and each has its own distinctive note. Most participants look forward to it from one year to the other. The fasting on *Gangajal* on one or two days, the restricted diet on the other days, the very strenuous programme, forgoing many comforts, sitting still for hours together, are not felt as hardships anymore. A great abiding joy and a rare sense of unity were the keynote of the whole gathering, which was remarkably well organized and disciplined. There was no crowding round Mataji in the pandal at any time. However, after the morning session, Mataji would sit in the open and those who wished could approach her individually to do *praṇāma* and offer garlands or flowers to their heart's content. Of foreigners five American gentlemen and two French ladies took part in the function. There were fewer talks and more music this time, since a few of the *Mahātmās* who usually grace the *Samyam Saptah* with their presence were unfortunately unable to come. The discourses by Mahamandaleshwara Sri Chaitanya Giri, Sri Swami Vishnuashram, Sri Swami Sharananandaji, Sri Avadhutaji, Swami Govind Prakashji of Ramatirtha Ashram, and others were all of a high order and much relished by the Vratis. Mataji was truly indefatigable. Not only did she sit through most of the satsang, but she was guiding and

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

supervising all arrangements. Every day during meal time she would, for instance, go to Kalyanvan, where food was cooked and served, and make sure whether everything was as it should be. She would in person welcome and see off every visiting *Māhātmā*. Needles to say, she made time for private interviews and attended to visitors who came for part of the week or just for a few hours from distant places. There were a thousand and one things that she did. Notwith standing unsatisfactory health, her energy seems unlimited and neither do the limits of time and space exist for her, now as before.

On the day the *Samyam Vrata* started, Dr. Mukerji, an ardent and much loved and respected devotee of many years' standing, to our deep regret passed away in Dehradun. How great was our astonishment when we heard that Mataji had been to see him a few hours before he left his body during that busiest of busy times!

Mataji was very generous in her replies to questions during "Matri Satsang", the last item of the daily programme. Everything she said has been preserved by tape recorder and we hope to publish some of it in subsequent issues of Ananda Varta and also some of the talks given by the *Mahātmās*.

Mataji was expected to leave Dehradun on the 5th of November, but at the last moment decided to remain for three more days. Sri Goswamiji, Chakarpaniji and Swami Ananda stayed on and talked to us every evening in the Ashram Hall. On the 8th evening Mataji boarded the train to Lucknow from where she motored to Naimisharanya the next morning.

On several occasions we have written about Naimisharanya in the pages of this magazine,* since our eleventh *Samyam Vrata* was held there in the grounds of Sri Naradananda Ashram in 1960. In 1961 a plot of land measuring

* See 'Ananda Varta' Vol. VIII, No. 4, February 1961, "Samyam and Bhagavaṭa Sapṭahas in Naimisharanya" by K. G. Ambegaokar.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

about 15 bighas was acquired by the Sangha on the Hanuman Tila, the highest spot of Naimisharanya. A beautiful little Puran Mandir was built there and inaugurated in Mataji's presence in December 1967.† Since then a regular small Ashram has grown up round the Mandir, which opens out into a fair sized circular hall. The hall has so far a canvas roof. To the right and left of the hall, there are two sets of living rooms that were occupied by Sri Haribabaji Maharaj and by Sri Swami Akhandanandaji during the recent function. A small house has been constructed for Mataji, Didima, Didi and the attending girls, and at some distance another house for the general kitchen with a few small living rooms. A generous *bhakta* has donated a motor for the well and pipes have been laid on for water supply. The beautiful pandal from Dehradun, originally brought from Calcutta, was shifted to Naimisharanya with all the workmen, loudspeakers and other equipment. There also it proved a great succes, although the enormous crowd of local visitors had partly to sit outside. A large number of tents were pitched in the Ashram grounds and nearby to accommodate guests who arrived from all over North India. Two dharmasalas and other rooms in the neighbourhood were also at our disposal besides the Prayag Narain Kshetra on the banks of the Gomati just below the Ashram, which houses sadhus in tatched huts among idyllic surroundings.

In 1960, 108 pandits led by Sri Agnishwatta Shastri (Batuda) had recited the Bhagavata in Sanskrit, while Sri Swami Vishnuashram had expounded in Hindi. This time Batuda alone was responsible for the Sanskrit reading while Sri Swami Akhandananda Saraswati explained in Hindi for full 15 days, from 9–11 a. m. and from 3–4.45 p. m. Profoundly learned, a brilliant speaker as well as an expert on the Bhagavata, he made clear the symbolism of many

† A picture of the Mandir will be, found in 'Ananda Varta', Vol. XV, No. 4, April 1968.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

passages that seem obscure or even devoid of meaning to the ordinary person. His exposition was really masterful. The whole audience listened spell bounnd day after day. Mataji was present throughout and also for Sri Haribabaji's satsang from 7.30–9 p.m. Some Mahatmas, such as Swami Sharananandaji, Sri Govind Prakashji and others came from distant places, listening to the Bhagavata and also gave short talks in the evening. It was altogether the most beautiful and concen trated gathering, fully worthy of the sacred spot where thousands of Rishis are said to have lived. It will not easily be forgotten by those who had the good fortune to be present. Among the visitors there were high Government officials and several Rajas and Ranis.

On December 6th everyone dispersed. Mataji, together with Sri Haribabaji and Swami Akhandanandaji, motored to Lucknow where satsang was held in the compound of the residence of Sri Rameshwar Sahai, retd Conservator of Forests. At night Mataji boarded the train to Delhi and remaind there till 16th.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SHREE SHREE ANANDAMAYEE SANGHA

LIST OF PUBLICATIONS

Hindi

Mātri Darshan—"Bhaiji"	2.50
Sad Vāni "	1.00
Sri Sri Ma Anandamayee—Gurupriya Devi :— Vol. I to XV	40.50
Ma Anandamayee—Dr. Pannalal	3.00
Akhanda Mahāyajña—Gurupriya Devi	2.50
Kirtan Rasa Swarūpa	6.00
Sankirtan, Stav, Aratī	0.50
Amar Vani	6.00

Bengali

Matri Darshan—"Bhaiji"	3.00
Sad Vāni—"Bhaiji"	1.50
Mātri Vāni	0.75
Sri Sri Ma Anandamayee—Gurupriya Devi :— Vol. I–XII	30.50
Ma Anandamayee Upadeshamrita Sangraha	1.50
Akhanda Mahāyajña " "	2.50
Kirtan Rasa Swarūpa	6.00
Suno Bali Maer Kotha—Sailesh Brahmachari	1.25
Mātri Lila Sankirtan	0.31
Anandamayee Ma—Ganga Samiran	2.50
Namavali— "	0.50

Gujarati

Mātri Darshan—"Bhaiji"	1.50
Ma Anandamayee Ke Sannidhyame, Part I —Br. Kantibhai	1.00
Amrit Vani—Br. Dattatreyanand	2.00

English

Mother As Revealed to Me—"Bhaiji"		4.00
Mātri Vāni (Sayings)	1.50, Special edition	2.50
Words of Sri Anandamayee Ma	3·00, " "	5.00
Mother as seen by her devotees	5·50, " "	6.50

Photos etc.

Photos—various sizes	0.50 to 15.00
Lockets	1.50
Album	2.50

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीश्री आनन्दमयी संघ

ॐ मा

मातृ शरणं

Registered with the Registrar of Newspapers for India under No. N. 4726/57

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ānanda VĀRTĀ

HINDI & ENGLISH

श्री श्री आनन्दमयी संघ

ॐ मा

मातृ शरणं

Vol. XVI. April, 1969 No. 2

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रथम बार प्रकाशित

अध्यात्म-साहित्य की अनुपम कृति

श्री श्री माँ आनन्दमयी के अमूल्य उपदेशों का अपूर्व संग्रह

★ अमर-वाणी ★

व्याख्याकार—म० म० डॉ० श्री गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्०

• विभिन्न जिज्ञासु भक्तों के विभिन्न प्रकार के संशयों के समाधान के लिए, विभिन्न स्थान और समय पर जो उपदेश श्री श्री माँ के श्रीमुख से प्रकट हुए थे, उन सबका यथासंभव परिवर्त्तनहीन अवस्था में इस संग्रह में लिपिबद्ध किया गया है।

• श्री श्री माँ के श्रीमुख की वाणी स्वभावतः अत्यन्त सरल और सहज भाषा में होती है, किन्तु कुछ स्थलों पर साधारण पाठकों के लिए भाव समझना कठिन हो जाता है। ऐसे सभी कठिन स्थलों को श्रद्धेय महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज जी ने अपनी व्याख्या के द्वारा सरलीकृत किया है।

• श्री श्री माँ की यह वाणी वास्तव में मातृभक्तों के निकट महावाक्य के सदृश गुरुत्वसम्पन्न है। उनके श्रीमुख से निकले सभी उपदेश महावाक्यों के समान परम आप्तवचन हैं जिसमें शास्त्रों के ही निगूढ़ सिद्धान्त हैं।

★ ४० पौण्ड का उत्तम कागज ★ माँ के दो नयनाभिराम चित्र ★

★ आकर्षक गेट अप और साजसज्जा से युक्त ★

पृष्ठ-संख्या : ३६६ मूल्य : ६) रुपये

श्री श्री आनन्दमयी संघ

भदैनी, वाराणसी—१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Ananda Varta

A quarterly journal dealing mainly with the divine life and teaching of Mata Anandamayee and with other religio-philosophical topics

श्री श्री माँ का ७४ वाँ जयन्ती उत्सव

परम हर्ष की बात है कि श्री श्री माँ का ७४ वाँ शुभ जन्मोत्सव आगामी २ मई से ५ मई १९६९ तक बम्बई के भक्तवृन्द के आग्रह से विलेपार्ले, बम्बई में होना निश्चित हुआ है। इस उत्सव में श्री श्री माँ की पवित्र उपस्थिति की आशा की जाती है।

मातृभक्त सन्तानगण से यह अनुरोध है कि उक्त पुण्यपर्व में सम्मिलित होकर आनन्द लाभ करें।

पत्रादि लिखने का पता :—
स्वामी परमानन्द
c/o श्री बी० के० शाह
९ स्वामी विवेकानन्द रोड,
विलेपार्ले, बम्बई-५६

भवदीय
श्री दुर्गा सिंह
सभापति
श्री श्री आनन्दमयी संघ

* ANNUAL SUBSCRIPTION *

India—(Postage free) Rs. 6/- only
Foreign—(By Sea Mail) Rs. 10/50 or 15 shillings or $ 2·00
" (By Airmail)—Rs. 25/- or £ 1-10-0 (Europe etc.)
" " —Rs. 35/- or $ 5.50 (North & South America.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रथम बार प्रकाशित

अध्यात्म-साहित्य की अनुपम कृति

श्री श्री माँ आनन्दमयी के अमूल्य उपदेशों का अपूर्व संग्रह

श्री श्री आनन्दमयी संघ

भदैनी, वाराणसी–१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Ānanda Vārtā

A quarterly journal dealing mainly with the divine life and teaching of Mata Anandamayee and with other religio-philosophical topics

❋

BOARD OF EDITORS

Mahamahopadhyaya Sri Gopinath Kaviraj, M. A., D. Litt.
Padma Vibhushan

Brahmachari Nirmalananda, M.A. Shastri.

Kumari Lalita Pathak, M. A.

Brahmacharini Atmananda.

Sri K. Bose,—*Managing Editor.*

❋

∗ ANNUAL SUBSCRIPTION ∗

India—(Postage free) Rs. 6/- only
Foreign—(By Sea Mail) Rs. 10/50 or 15 shillings or $ 2·00
" (By Airmail)—Rs. 25/- or £ 1-10-0 (Europe etc.)
" " —Rs. 35/- or $ 5.50 (North & South America.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ĀNANDA VĀRTĀ

GENERAL RULE

1. The magazine is published in three separate edtions—(1) Hindi-English (2) Bengali-English (3) English. The magazine is published four times a year, in the months of January, April, July & October. The year begins from January.

2. Subscriptions are always payable in advance. Foreign subscriptions may be sent either by international Money orders or Postal orders.

3. Subscriptions to be sent to :—

The General Secretary, Shree Shree Anandamayee Sangha Bhadaini, Varanasi, (U. P.)

4. All correspondence regarding 'Ananda Varta' should mention without fail the subscription number and be addressed to :—

The Managing Editor, "Ananda Varta", Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhadaini, Varanasi, (U. P.)

5. Complaints about non-receipt of the magazine should be sent *within the month of publication.*

6. Any change of address should be intimated to the Managing Editor at the earliest possible opportunity.

7. Subscribers are requested not to dishonour any issue of the magazine sent by V. P. P., as this entails a loss to the Ashram fund. They may kindly inform us *beforehand* if they desire to discontinue subscribing to the magazine.

Published by Shri K. Bose, for
Shree Shree Anandamayee Sangha, Varanasi.
Printed at the Indian Press (Pte.) Ltd., Varanasi-Branch VARANASI.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CONTENTS

Hindi Section

1--मातृ-वाणी 51

2--श्री श्री मां की अमर वाणी 53

3--श्री श्री मां आनन्दमयी प्रसंग--श्री अमूल्यकुमार दत्त गुप्त एम.ए., बी. एल्. 59

4--मातृस्तुति :--मनुदेव भट्टाचार्य विरचिता ... 68

5--अनुकम्पाधारा--श्री चरणकमलाश्रिता 70

6--देहसिद्धि--महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज ... 81

7--कैलास-मानसरोवर-प्रदक्षिणा--श्री "दत्त" ... 88

8--मातृ सत्संग--स्वामी भागवतानन्द गिरि ... 90

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CONTENTS

English Section

1. Mātri Vāni 49
2. Ma—D. S. Nakra 51
3. Mataji's Darsana
—Eillen Wood Jasnowski 56
4. Erom the Diary of a European
—Melita Maschmann 58
5. Can Everybody Practise Yoga?
—Dr. I. K. Taimni 66
6. Some Recent Significant Trends in
Contemporary Western Psychology
—Dr. B. L. Atreya, M.A., D. Litt. ... 72
7. Sacred Places of Kasmir, Jammu
and Ladhak—A Devotee 82
8. Matri Lila 92

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

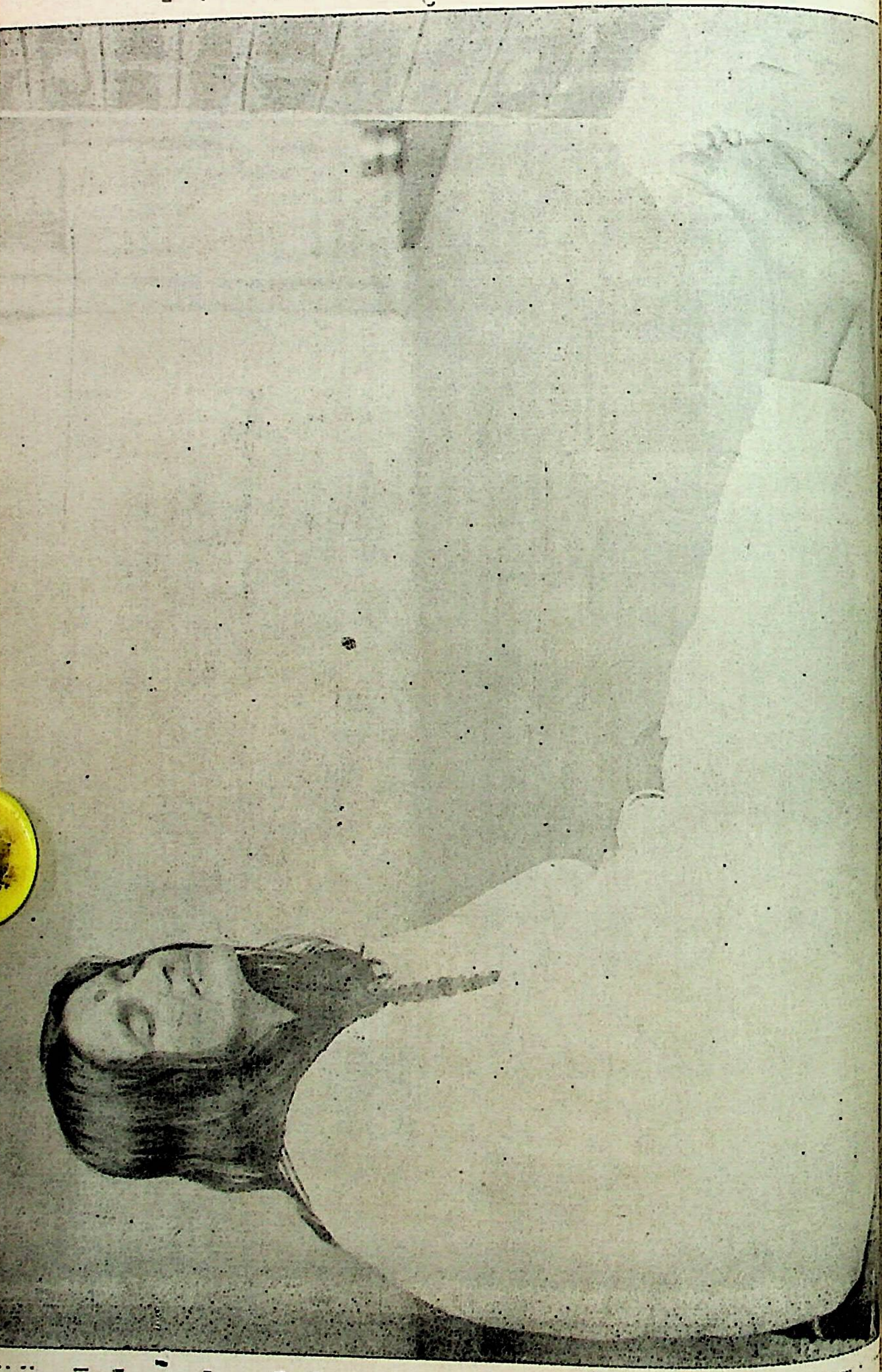

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Ānanda Vārtā

"अमर आत्मा—अमर पन्थी स्वयम्—अपनेमें आप।"

VOL. XVI] APRIL, 1969 [NO. 2

—मातृवाणी—

मनुष्य जन्म दुर्लभ है। यह दुर्लभ जन्म पाकर भी यदि इष्टचिन्ता में समय न दें तो सोचना ही पड़ेगा—मैं क्या कर रहा हूँ। मेरा सारा जीवन क्या इसी तरह चलेगा ? जो कोई ऐसा विचार करेगा, उसका मंगल। न करने से मृत्युगति।

× × × × ×

बन्धु किसे कहते हैं ? जो इष्ट के प्रति मन कर दे। वही तो परम बन्धु है। जो इस ओर से हटाकर मृत्यु की ओर गति कर देता है वह शत्रु–मित्र नहीं। अपना संशोधन करने की चेष्टा करो। जो अपने को सुधारने की चेष्टा नहीं करता वह तो आत्मघाता है।

× × × × ×

विषय भोग Slow poison है। और Slow poison की मृत्यु की ओर गति होती है। इसलिए मनुष्यमात्र का ही कर्तव्य है अमृतगति लेना।

× × × × ×

संसार माने संशय का स्थान। जो संग को सार मानता है वह तो संग को सजा कर आया है, इसीलिए संसार।

× × × × ×

भगवान् तुम्हीं इस रूप में हो–इस क्रियारूप में–यह भावना रखे। समस्त क्रिया में तद्भावना रखना। सब क्रिया से ही स्वरूप प्रकाश होगा। समस्त क्रिया को अलग नहीं सोचना–वही तो। क्रियाशक्ति कौन–तुम्हीं तो। शक्ति कौन ?–स्वयम्।

× × × × ×

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आत्मदर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन माने क्या ? द्रष्टा, दृश्य और दर्शन—यह तीनों जहाँ एक, वहाँ ब्राह्मी स्थिति होती है। जहाँ क्रिया, अक्रिया की बात नहीं, वही आत्मस्थिति ।

× × × × ×

माँ को जानना माने माँ को पाना और माँ हो जाना। माँ माने आत्मा-माँ माने मय। स्व-मय-आत्मसत्ता—वही तो। ज्ञान स्वरूप आत्मस्वरूप-शिवस्वरूप। हो जाना माने—है ही तो।

× × × × ×

दुनिया में कुछ न कुछ के लिए सभी पागल। कोई कम, कोई ज्यादा। भगवान् की लीला कैसे मजे की है। कैसा पागलखाना बना रखा है। अपने को लेकर अपनी मौज।

× × × × ×

——

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्री माँ की अमरवाणी*

(ब्रह्मचारी विरजानन्द जी से प्राप्त)

(महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज कृत व्याख्या के साथ)

प्रश्न के उत्तर में माँ—"तुम जिस दृष्टिकोण को लेकर बोले—अवश्य जीव जगत् में साधारण मनुष्यों के मन में प्रश्न आना स्वाभाविक-अद्वैत भाव में स्थित होने से साकार की दिशा का प्रकाश नहीं हुआ, तो नहीं हुआ, अपूर्ण रह गया। नेति नेति विचार करके एक दिशा को (तरफ को) छोड़ दिया—एक अद्वैत। नेति नेति अनित्य रूप का प्रकाश पाकर नित्य का ग्रहण-यह दिशा-यही क्या तुम्हारे प्रश्न की अन्दरूनी बात ?

पर असल बात यह है कि जहाँ अखंड अद्वैत, वहाँ इस प्रश्न के उत्पन्न होने का स्थान कहाँ हैं ? जहाँ कहते हो एक आत्मा-एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति-जहाँ अद्वैत में स्थित। अद्वैत की धारा में नेति नेति इति, इति तो रास्ता। यहाँ माया कहने से भी आपेक्षिक-इसका भी जहाँ प्रश्न नहीं-एक अखंड, जहाँ जात, अजात, वाद, अवाद जो कहो। इसीलिए इस शरीर की बात-तुम्हारा अटकता कहाँ है ? एक ब्रह्म, द्वितीय कहाँ-कौन, क्या, किसको ? अद्वैत कहोगे, फिर दो, यह कैसे ?

इधर द्वैत, सगुण साकार की बात जो कहो-नित्य भगवान् का नाम, रूप, मंत्र, बीजादिक की ओर से जो बात, वह भी छूटती नहीं। जिस दिशा से जो ग्रहण करता है, वह वे ही हैं-वही ब्रह्म स्वरूप ही-वे जो प्राणों के प्राण, वे जो एक आत्मा ही हैं। वे क्षर रूप में, वे ही अक्षर रूप में-वे ही। तुम जहाँ क्षर देखते हो, अक्षर तुम्हारे बीच में जागा नहीं।

पथ में इस दिशा को समझने के लिए कहा जाता है कि एकमात्र भगवान् मान कर चलो-साकार सगुण, और जहाँ वे प्रभु, मैं दास; वे पूर्ण, मैं अंश-जिसका जो भी इष्ट क्यों न हो, जिसकी जो लाइन-रास्ता लेकर चलना तो-यही चाहिए। और जो तुमने कहा काम नहीं होता, बीज नष्ट होता है-सो मनोराज्य में ही तो

---

* आनन्दवार्ता में श्री गोपीनाथ कविराज महाशय की व्याख्या के साथ श्री श्री माँ की अमरवाणी का प्रथम प्रकाश हुआ १९५३ सन् की जन्मोत्सव संख्या में। दीर्घ छ साल पर्यन्त धारावाहिक रूप से अमरवाणी का प्रकाशन हुआ। फिर अनिवार्य कारणों से दीर्घ विच्छेद घटित हुआ। इस संख्या से उस विच्छेद का अन्त होकर फिर अमरवाणी पाठक पाठिकाओं का आनन्दवर्धन करे, यही कामना है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुम्हारा नष्ट इष्ट। किन्तु तुमने जो यह लिया–आग्रह बढ़ाता है, खोज बढ़ाता है भीतर भीतर किन्तु काम होता है। कभी कभी नया अनुभव भी तो होता है। बीज कभी नष्ट नहीं होता। प्रकाश क्रम से अपने में स्वयं ही सम-अग्र प्रकाश होते हैं न–जहाँ क्रम की दिशा है।

देखो बाबा, जो इष्ट है, वहाँ नष्ट का प्रश्न कहाँ? जहाँ नष्ट, वहाँ नष्ट रूप प्रकाश होना स्वाभाविक जानो। जो नष्ट होता है–किन्तु मृत्यु की मृत्यु होनी चाहिए–जैसे विषयवासना बीज नष्ट, यह तो होना चाहिए ही। कारण, नष्ट रूप में भी तो स्वयं ही प्रकाश होना–ऐसा न हो तो इष्ट नष्ट, भिन्न, अभिन्न और नित्य अनित्य–सब तरफ का स्वरूप अरूप निजस्वरूप में कैसे प्रकाश हो? जहाँ रास्ते की बात है, नित्यग्रहण, अनित्य त्याग। और नेति नेति इति इति। सब कुछ–देखो कैसा सुन्दर उस राज्य में। जहाँ जो है, स्थिति अनुसार मानना ही होगा। जहाँ मानामानी है, वहीं यह बात।

और इधर देखो—ब्रह्ममयी, गुणमयी, परमपिता, परममाता, परमपति, परमबन्धु सखा स्वामी, गुणमय ब्रह्ममय—ये ही। वहाँ, तुम पिता, तुम ही माता–उस रूप में भी सन्तान का स्थान आ सकता है। वह रास्ता लेकर भी साधना में परमशिव परब्रह्म जहाँ, जिस तरफ निजस्वरूप प्रकाश के लिए केवल साधना की दिशा; स्वयं जहाँ सगुण गुणमयी—वही जो परम चरम पराशक्ति सत्ता, उसी एक आत्मा की प्राप्ति की दिशा–निज-शक्ति लाभ की साधना भी तो स्वाभाविक। जहाँ सत्ता–वही जो एक आत्मा ही तो।

फिर जहाँ बोधस्वरूप—और जिस जिस धारा से बोध—प्राकृत जगत् का विषयबोध–शोक, दुःख, प्राकृतिक शून्य–यह जो जागतिक बोध, विषय और निर्विषय का बोध–कौन करता है, कौन होता है? बोध करनेवाला भी तो रहा है। इसलिए बोध करनेवाला और बोध–यह भी महाशून्य में स्थित न होने पर्यन्त बोधस्वरूप बुद्धत्व कहा? देखने, सुनने और समझने वाला बोद्धा यदि रहा, तो तुम्हारे स्वरूप की क्या दिशा हुई? क्रम अक्रम, सब ओर ही तो तुम्हें पाना चाहिए न। जो रास्ता लेकर जो जायगा, वही तुमको पाएगा या मुझको पाएगा। इसीलिए कहा जाता है कि "तुम" को पाकर "मुझ" को पाया जाता है, मुझको पा कर तुमको पाया जाता है—वही जो पूर्ण—द्वत कहो, अद्वैत कहो। वही जो पूर्ण अखंड अद्वैत—द्वैत अद्वैत कहने से भी जो कहा नहीं जा सकता वही जो चरम परम–वही जो निर्द्वन्द्व।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या

जहाँ अखंड अद्वैत, वहाँ प्रश्न का स्थान कहाँ ?

साधारणतः दार्शनिकगण द्वैत से भिन्न अद्वैतसत्ता को स्वीकार: करते हैं। द्वैत से भेद करने के साथ ही साथ द्वैत एवं अद्वैत भाव का संस्पर्श विशिष्ट यावतीय मत अद्वैत से विच्छिन्न होकर पृथक् हो जाता है। अद्वैत सिद्धान्त नानाप्रकार का है : विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, भेदाभेद, अचिन्त्यभेदाभेद आदि अद्वैत प्रस्थान के ही विभिन्न अंगप्रत्यंग हैं। विशिष्टाद्वैत मत वैष्णव और शैवसम्प्रदाय दोनों जगह है। भगवान् शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित अद्वैतवाद निर्विशेष अद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इस निर्विशेष अद्वैतदृष्टि से विचार करने से केवल द्वैत सिद्धान्त नहीं अद्वैत सिद्धान्त नाम से परिचित अनेक दार्शनिक सिद्धान्त ही अद्वैत की गंडी से बाहर हो जायेंगे। द्वैतदृष्टि से स्पष्टतः द्वैत भाव का ही प्रकाश है, किन्तु साधारणतः जो अद्वैत दृष्टि नाम से परिचित है, उसमें भी द्वैत की गंध किसी न किसी रूप में अनुभव-गोचर होती है। मायावाद की दृष्टि के अनुसार अद्वैत ब्रह्म माया के अतीत है। माया ब्रह्माश्रित होने पर भी ब्रह्म के साथ सर्वतोभावेन अभिन्न रूप से गृहीत होने योग्य नहीं है। ब्रह्म सत्य किन्तु माया मिथ्या और माया का परिणाम स्वरूप यह जगत् भी मिथ्या। माया ब्रह्म में अधिष्ठित है। अधिष्ठान चैतन्य स्वरूप ब्रह्म को आश्रय करके ही माया के अनन्त कार्य संपन्न होते हैं किन्तु तब भी ब्रह्म सत्य है, माया मिथ्या-ब्रह्म को काल स्पर्श नहीं कर सकता। ब्रह्म त्रिकाल में अव्यभिचारी सत्य है किन्तु माया प्रतिनियत परिणामशील। समग्र विश्व, सप्त लोकात्मक ब्रह्मांड, केवल एक ब्रह्मांड नहीं, अनन्त कोटि ब्रह्मांड सभी माया का कार्य। यह सृष्टि प्रपंच परिणामशील एवं काल के अधीन है। इसको पारमार्थिक दृष्टि से सत्य कहकर अंगीकार नहीं किया जा सकता। सत्य का प्राकृत लक्षण है अव्यभिचारीभाव, जहाँ परिणाम अथवा अवस्थान्तर होता है, वहाँ अव्यभिचारी भाव कहाँ ? यह अवश्य सत्य है कि अव्यभिचारी सत्ता को आश्रय करके परिणाम की क्रिया सम्पन्न होती है। किन्तु परिणाम मिथ्या है। अवश्य मिथ्या कहने से यह नहीं समझा जा सकता कि इसका अस्तित्व नहीं है और यह अलीक है। मिथ्या शब्द का यह अर्थ नहीं कि वह अस्तित्वहीन वा असत्य है। वस्तुतः यह अपरिणामी सत् स्वरूप नहीं एवं अस्तित्वहीन अलीक भी नहीं—इसी का नाम मिथ्या। इसीलिए वेदान्तीगण सत्ता के विचारप्रसंग में साधारणतः सत्ता को तीन भाग में विभक्त करते हैं। प्रकृत सत्ता पारमार्थिक नाम से वर्णित होती है किन्तु व्यवहार में जो सत्ता स्वीकार की जाती है, उसे व्यावहारिक सत्ता कहते हैं। इसी व्यावहारिक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाव में "मैं" रूप में भी भासमान होती है। फिर यह सब होने पर भी वे परम अव्यक्त। "मैं", "तुम" और "तत्" तीनों के ही अतीत। वे स्वयं प्रकाश हैं, यह ही गंभीर सत्य है। उनके प्रकाश से ही जगत् प्रकाशमान है और जीव चैतन्य उसी विशाल चैतन्य का कणमात्र हैं। प्रभु भी वे ही, दास भी वे ही—निरन्तर स्वयं स्वयं की सेवा कर रहे हैं जिस शक्ति के द्वारा सेवा हो रही है, वह भी वे ही, सेवा का फल भी वे ही। उस फल के भोक्ता भी वे ही। वे माने ही "मैं"—वे स्वयंप्रकाश, अथच 'मैं' 'तुम' भाव के भी अतीत।

———

"बुद्धिमान्"

नमक के पहाड़ पर हजारों चींटियाँ निवास करती थीं। एक दिन किसी एक चींटी ने खबर दी कि पास ही शक्कर का एक पहाड़ पड़ा हुआ है। यह समाचार सुनकर कुछ चींटियाँ अति प्रसन्न होकर शक्कर का पहाड़ ढूंढने चलीं। आगे और आगे चलती ही रहीं; किन्तु कुछ भी प्राप्त न हुआ, क्योंकि उनका मुँह नमक से जो भरा था और उसे त्यागने के लिए भी वे तैयार नहीं थीं। किन्तु कुछ चीटियाँ बुद्धिमान् थीं, उन्होंने नमक को छोड़कर मुँह को शक्कर से भर दिया और समझने लगीं, मानो पूरे का पूरा पहाड़ उठाकर ले जा रही हों।

इसी तरह संसार के प्राणी शान्ति की खोज में समस्त विश्व भर में परिभ्रमण करते रहते हैं—गुरु और महात्माओं के पास सत्संग के लिए जाते हैं परन्तु हाय! संसार के क्षणभंगुर नमकीन मोह के सुख को छोड़ते नहीं। कुछ ही बुद्धिमान् लोग उसे त्याग कर अन्तर-निहित अतुल आनन्द-राशि का थोड़ा-सा आस्वादन कर असीम सुख का अनुभव करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग

(प्रथम खंड)

(श्री अमूल्य कुमार दत्त गुप्त, एम्० ए०, बी० एल०)

२५-१२-४८। आज शाम को गोपालदादा ने वक्तृता दी। यह वक्तृता गीता के किसी विषय का अवलम्बन करके नहीं थी। आगामी दिन जो गीतापूजा का आयोजन हो रहा है, उसके सम्बन्ध में यह वक्तृता थी।

रात को ८ बजे फिर सदालोचना आरम्भ हुई। गोपालदादा माँ से बोले "गतकाल जहाँ तक गीता की आलोचना हुई थी, उसके आगे आज आरंभ करो।"

माँ—कल जो हुआ वह हुआ ही। इस शरीर का आरम्भ वा शेष नहीं। कल भी तुम लोगों से कहा था कि इस शरीर का कुछ नहीं, एक दम साफ, इस शरीर का बोलना, कहना एकदम निर्मूल हो गया है। (सब हँसते हैं)

जीव एवं आत्मा का क्या अर्थ है

एक सज्जन—माँ गीता में कहा है, "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः" इत्यादि। यह जो एनम् एनम् कहा गया है यह क्या है ?

माँ—यह "मैं" है। किन्तु "मैं" कहने से जो हम समझते हैं, वह "मैं" यह नहीं है। यह "मैं" ही है।

सज्जन—आपकी बात ठीक से समझा नहीं।

माँ—गीता में बार बार "मैं" की बात आती है न ? मेरे शरणापन्न होओ, मेरा भजन करो इत्यादि-यह "मैं है वही मैं"। उसी को लक्ष्य करके कहा गया है कि उसको शस्त्र आघात नहीं कर सकता, अग्नि जला नहीं सकता इत्यादि।

सज्जन—मैं उसे जिस माने में समझा वह कहता हूँ। मुझे लगता है कि एनं एनं जो कहा गया है, वही आत्मा है। यह आत्मा सर्वत्र है।

माँ—सर्वत्र हैं वही—जिनका सर्वत्र प्रकाश है।

सज्जन—अब प्रश्न है कि जीव क्या है ?

माँ—बद्धभाव को जीव कहते हैं।

सज्जन—यह इलेक्ट्रिक बत्ती का आवरण दिखाई पड़ रहा है, वह क्या, जीव है ?

माँ—यह बात कौन कह रहा है ? तुम्हीं तो कह रहे हो, इसलिए तुम्हारी दृष्टिभंगी के ऊपर निर्भर करेगा। मैंने एक कहानी सुनी थी, वह सुनाती हूँ। एक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घर में प्रतिमा के स्थान पर घट की पूजा हो रही थी। ज्योंही घट में प्राणप्रतिष्ठा हुई, उसने अपने जीवन का इतिहास बोलना आरम्भ किया। वह बोला, "मैं मिट्टी था। मेरे ऊपर छोटे छोटे वृक्ष और लता थे। एक दिन मैंने देखा कि कुदाल लेकर मेरा वक्ष खोदा जा रहा है, उसके बाद खुरपी से मार मार के मुझे खंड खंड कर दिया गया। उसके बाद मुद्गर मार के मुझे चूर्ण कर दिया गया। इतने पर भी मेरा निस्तार नहीं। फिर देखा कि मुझे पानी से भिगोकर पैरों से रौंद रहे हैं, उनके ऐसे अत्याचार से मेरा कठोरत्व लोप होकर मैं नरम हो गया। सोचा, अब शायद यह लोग मुझे शान्ति से रहने देंगे, पर कहाँ शान्ति ? मुझे ले जाकर उन्होंने कुम्हार के चाक पर बिठा कर घुमाना आरम्भ किया। उसके फलस्वरूप मेरा मिट्टीपन लोप होकर घटत्व हो गया। सोचा इस बार मुझे निष्कृति मिलेगी इतना जो सहन किया उससे भी मेरी अव्याहति नहीं। वे मुझे धूप में जलाने लगे, और अन्त में एक दिन आग में डाल दिया। अग्नि के तेज से मेरा समस्त शरीर जल गया। उसके फलस्वरूप मेरा कोमलत्व दूर होकर फिर कठिनत्व आ गया। उसके बाद उन्होंने मुझे लेकर एक दुकान में बिठा दिया, मैंने सोचा सब तरह के दुर्भोग तो भोग कर लिए, इस बार मालूम होता है मेरे शान्ति के दिन आ गए, किन्तु शीघ्र ही समझ गया कि अभी भी मुझे शान्ति नहीं क्योंकि उस दुकान में जितने भी खरीददार (ग्राहक) आते वे मुझे हाथ में लेकर, अंगुली से चोट करके टुं टुं करके बजाने लगते। इस तरह कुछ दिन निकले। अन्त में एक आदमी ने मुझे खरीदकर गंगाजल से भर कर यहाँ बैठा दिया।" इस कहानी से यह समझ में आया कि यद्यपि मिट्टी की अवस्था नाना प्रकार से परिवर्तित होती है, वह किन्तु मिट्टी ही है। जगत् है गतागति। यहाँ प्रति मुहूर्त सभी कुछ का परिवर्तन होता रहता है। और आत्मा है वह जिसका परिवर्तन नहीं। देखो न, जल रुक जाने से उसमें दुर्गंध होती है, कीड़े पड़ते हैं। कीड़े का स्वभाव ही यह है कि वह दिन-दिन नये कीड़े उत्पन्न करता है। इस जल को पीने से रोग होता है जिससे कि मृत्यु भी हो सकती है। किन्तु वही जल फिल्टर कर लेने से फिर उसमें कोई दोष नहीं रहता। तब वह पिया जा सकता है। और देखो, कीड़े पड़ा जल भी जल और साफ जल भी जल—जल हिसाब से दोनों ही एक हैं। उसी तरह आत्मा बद्ध होकर जीव हो जाता है वह बद्धभाव कट जाने पर आत्मा वही आत्मा ही रहता है। जल जैसे निराकार किन्तु जम कर बरफ़ होने से आकार को प्राप्त होता है, उसी प्रकार आत्मा साकार और निराकार।

फिर देखो, जिसे हम जीव समझते हैं, उससे काठ, पत्थर को अलग समझते हैं। इसीलिए हम जीव को जड़ से पृथक् करते हैं। किन्तु आत्मा की

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तरफ से देखो तो कहा जा सकता है कि एक आत्मा ही अपने को बद्ध करके जीव, जड़ इत्यादि अनन्त रूप से प्रकाशमान हो रही है। वहाँ किन्तु अलग-अलग भाव नहीं है, पीछे तुम सोचो कि माँ ने पत्थर को जीव कहा—इसी से यह बात कही।

भगवान् को पुकारने से उत्तर मिलता है।

डा० पन्नालाल एक उच्चपदस्थ राजकर्मचारी को संग लेकर आए थे। उन्होंने माँ से पूछा, "माताजी, आपने भगवान् वा आत्मा जो कहा, उसमें मैं विश्वास करता हूँ और उसके ऊपर मेरी श्रद्धा भी है। अब प्रश्न यह है कि उस आत्मा को हम लोग कैसे देख सकते हैं ?"

माँ—इस चश्मे से उसे नहीं देखा जा सकता। उसके लिए अन्य चश्मे को जरूरत है।

सज्जन—चश्मा कहाँ पाऊँगा ?

माँ—गुरु के पास।

सज्जन—गुरु कौन ?

माँ—जो चश्मा देते हैं। (सब हँसते हैं)

और एक सज्जन—अनेक लोग कहते हैं कि भगवान् को पाने के लिए बार-बार जप करना पड़ेगा अथवा गायत्री का जप करना होगा। इसका क्या अर्थ है ? ऐसा करने से लाभ ही क्या है ?

यह प्रश्न सुन कर माँ "बाबा" "बाबा" कहकर पुकारने लगीं। इस तरह तीन बार पुकारने पर डा० पन्नालाल ने सोचा कि माँ शायद उन्हीं को पुकार रही हैं इसलिए वे उत्तर देकर खड़े हो गए। माँ हँसते हुए बोलीं, "तीन ही बार पुकार कर उत्तर पा गई।" यह कहकर माँ जोर से हँसने लगीं। माँ ने उन सज्जन को लक्ष्य करके कहा, "राम राम कहकर बार-बार पुकारने से वे इसी तरह उत्तर देते हैं।"

माँ के बात करने और उपदेश देने का अभिनवत्व देखकर सभी सन्तुष्ट हुए। आगामी दिन पूजा के लिए हॉल घर सजाना होगा इसलिए आज यहीं आलोचना बन्द हो गई।

२६-१२-४८ रविवार। आज गीता जयन्ती का शेष दिन है। आज गोविन्द की पूजा होगी। सबेरे-सबेरे ही बाजार का काम करके आश्रम गया। तब तक पूजा आरम्भ हो गई थी। हाल कमरा गेंद के फूलों की माला से अत्यन्त सुन्दर सजाया गया था। एक सिंहासन के ऊपर गोविन्द की एक छोटी मूर्त्ति-वह भी विविध रंग के फूलों से सुसज्जित। श्री श्री माँ एक कोने में बैठी हैं। गोपालदादा अपने शिष्यों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के साथ पूजा में बैठे हैं। श्री श्री माँ के भक्तों में से भी कई लोगों ने इस पूजा में योग दिया। यह पूजा भाव की पूजा है; साधारण पूजा से इसका सम्बन्ध अति सामान्य। बीच-बीच में मंत्रपाठ हो रहा है। भावोच्छ्वास में बात हो रही है। फिर गान और नृत्य भी हो रहा है। गोपालदादा की दो लड़कियाँ अति मधुर कंठ से बीच-बीच में गान कर रही थीं। वह गान सभी को मुग्ध कर रहा था—इस तरह १० से १॥ बजे तक पूजा चली। इसके बाद हवन शुरू हुआ। वह भी ५ बजे तक चलेगा। आरती और भोग होगा, ऐसा सुना।

सन्ध्या समय पर लौट आया। खुकुनीदीदी ने बहुत से भोग के फल हमारे यहाँ भिजवा दिये थे।

२७-१२-४८। आज आश्रम में हमारा निमंत्रण है। साढ़े दस बज़े आश्रम जाकर देखा, कीर्त्तन हो रहा है। श्री श्री माँ, गोपालदादा सभी उपस्थित हैं। कीर्त्तन के अन्त में गोपालदादा ने माँ से गान करने का अनुरोध किया। वे बोले, "तुम्हारा गान इस गीता जयन्ती का एक अंग है, इसलिए तुम्हें आज गाना ही पड़ेगा।" माँ ने एक-एक कर तीन गाने गाए। श्रीयुक्त कुलदा ब्रह्मचारी के शिष्य योगेश ब्रह्मचारी भी आज उपस्थित थे। गान शेष होने पर कुछ समय नीरवता में कटा। वैद्यनाथ शास्त्री महाशय ने माँ से प्रश्न किया, "जितने पथ, उतने मत, यह बात क्या सत्य है?

माँ—मत रहने से पथ भी है।

योगेश ब्रह्मचारी—मत रहने से ही पथ भी रहेगा, यह कोई बात नहीं। प्रत्येक मनुष्य का ही अलग-अलग मत है इसलिए वह प्रत्येक ही भगवान् को पाने का पथ है, यह नहीं कहा जा सकता।

माँ :—यहाँ वह बात नहीं हो रही। बात हुई यह कि सम्प्रदाय हिसाब से भगवान् को जानने के लिए विभिन्न धारा है। यह सब हुए भिन्न-भिन्न मत एवं यह पथ भी हैं अवश्य, इस हिसाब से कहा जाता है जितने मत, उतने पथ।

भगवत्-सुख और जागतिक सुख

देवशंकर बाबू—भगवत्-सुख और जागतिक सुख में पार्थक्य कहाँ करूँ?

माँ—वाह, तुम्हीं कहते हो, ब्रह्मानन्द परमसुख। जागतिक सुख सुख कहाँ है वह असुख है।

देवशंकर बाबू—तो क्या संसार में सुख नहीं है?

माँ—सुख नहीं, यह मैं नहीं कहती। यहाँ जो सुख है, उसके साथ दुःख जड़ित है। यहाँ चाहे जो भी सुख क्यों न पाओ, उसे लेकर तृप्त नहीं रह सकोगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तभी और भी सुख का सन्धान करते हो। यदि मनुष्य जागतिक सुख से सुखी रहता, तो इस तरह की बात उठती ही नहीं कि उसे लेकर तृप्त रह सकते थे। संसार में सुख नहीं है, यह बात नहीं कही जा सकती, यह सत्य है, किन्तु उस परम सुख की तुलना में यह कितना क्षुद्र है। यह उस परम सुख का आभासमात्र है। भगवान् की ऐसी कृपा है कि वे जागतिक सुख के साथ दुःख रख कर लोगों को परमसुख की ओर खींचते हैं। सोचो कि तुम्हारे एक पुत्र हुआ, तुम सुखी हुए, फिर जब यह लड़का मर गया, तब तुम दुःखी हुए। जो स्थायी नहीं, वह कभी सुख का कारण नहीं हो सकता, इसीलिए लोग स्थायी सुख का सन्धान करते हैं। स्थायी सुख हुआ, भगवत्-सुख, परम सुख।

यह सब बात होते-होते भोजन का समय हुआ। हमलोग आहार करने उठे। आहार के बाद मैं मनोमोहन के घर विश्राम करने गया। कुछ देर बाद ही अतुल (ब्रह्मचारी) दादा ने आकर मुझे खबर दी कि गोपीबाबा आए हैं। यह सुनकर मैं फिर आश्रम की ओर रवाना हुआ। आश्रम पहुँच कर देखा कि श्री श्री माँ हाल के कमरे में बैठी हैं। गोपी बाबू, योगेश ब्रह्मचारी एवं गोपालदादा भी वहाँ हैं। वहाँ का हावभाव देखकर ऐसा मालूम हुआ कि शायद किसी ने माँ से कोई प्रश्न किया है। वहाँ के एक सज्जन से पूछने से मालूम हुआ कि योगेश ब्रह्मचारी महाशय ने माँ से प्रश्न किया है कि कर्मफल यदि हमें स्वयं ही भोग करना हो तो तुम्हारे पास आने से लाभ क्या? इस प्रश्न का उत्तर माँ देंगी, ऐसा तो लगा नहीं, क्योंकि माँ अन्यान्य से बातें करने लगीं। यह सब देखकर मैं ही माँ से बोला,

"माँ, कुछ समय पहले बात उठी थी कि जितने मत, उतने पथ। तुम ने भी उसका समर्थन किया—

माँ—मैं ने समर्थन नहीं किया। मैंने सिर्फ यह कहा था कि वह किस अर्थ में कहा जाता है।

मैं—यदि कोई कहता है कि भगवान् को पाने का मार्ग केवल एक ही है—जैसे कहते हैं कि कुण्डलिनी जाग्रत हुए बिना साधन आरम्भ ही नहीं होता। जाग्रत कुण्डलिनी के साथ साधन ही एकमात्र पथ है।

माँ—उस समय कुण्डलिनी की बात नहीं उठी। यदि उस समय यह बात उठती तो मैं कहती कि तुम जो कहते हो, वह भी सत्य है।

मैं—तो किस बात को सत्य समझूँ?

गोपीबाबू—जिस पथ में कुण्डलिनी चैतन्य नहीं होती, वह तो पथ ही नहीं।

माँ—जब तक कहने-सुनने के मध्य में रहोगे तब तक तो अलग-अलग मत

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहेंगे ही। इस अर्थ में मत और पथ कहा जाता है। ऐसा न होने पर कहा जाता है कि भगवान् लाभ का मार्ग एक ही है।

भगवान् की उपलब्धि न होने तक दुर्बलता अनिवार्य

योगेश ब्रह्मचारी—मेरे प्रश्न का उत्तर तो आपने दिया नहीं। मेरा प्रश्न था कि यदि अपना प्रारब्ध मुझे स्वयं ही भोग करना है तो फिर भगवान् की कृपा कहाँ है? और मैं भगवान् की कृपा मांगू भी क्यों। जो मिलना है वह कर्म द्वारा ही लाभ करूंगा। दुर्बलता का आश्रय क्यों लूंगा।

माँ—तुम दुर्बल हो, यह तुम्हारे प्रश्न से ही समझा जा सकता है। जितनी दुर्बलता रहती है, उतने ही जोर से बात उठती है। यदि दुर्बल नहीं हो तो यह सब बात कहाँ से उठती है (सब हँसते हैं)। मनुष्य भगवान् के ऊपर निर्भर हुए बिना रह नहीं सकता और वास्तव में ही जहाँ एकमात्र सत्ता है, वहाँ कौन किस पर कृपा करेगा। किन्तु यह उपलब्धि न होने तक दुर्बलता आवेगी ही।

गोपालदादा (ब्रह्मचारी जी से)—आपने अवश्य ही जयपुर में कुछ पाया है। जिससे आप इतना जोर देकर बात कह रहे हैं (सब हँसते हैं)।

माँ—हाँ, वहाँ के संगगुण से ऐसा हो रहा है।

२८-१२-४८। आज माँ देहरादून के लिये रवाना हो गईं। सुना पौष संक्रान्ति के दिन माँ फिर काशी में उपस्थित रहेंगी। माँ के रवाना होने के पहले आश्रम जाकर माँ को प्रणाम कर आया।

पौष संक्रान्ति के उपलक्ष्य में माँ का काशी आगमन

१०-१-४९। आगामी पौष संक्रान्ति के दिन काशी आश्रम में सावित्री यज्ञ का द्वितीय वर्ष पूरा होगा। इस उपलक्ष्य में श्री श्री माँ देहरादून, लखनऊ इत्यादि घूम कर आज काशी आई हैं। आश्रम में पहुँच कर माँ गंगा के किनारे चबूतरे के ऊपर टहलने लगीं। मुझको देखकर माँ ने गोपीबाबू के विषय में पूछा, मैंने कहा, "गत शनिवार गोपीबाबू देवघर चले गए हैं। छोटी माँ ने शायद आदमी भेज कर उन्हें बुला लिया है। और भी सुना कि वे पांच दिन वहाँ रहेंगे।"

माँ—बाबा क्या अज्ञातवास में जायँगे?

मैं—ऐसी तो कोई खबर सुनी नहीं।

माँ ने क्यों यह पूछा, समझ नहीं सका। माँ टहलते-टहलते कहने लगीं "यहाँ तो विशेष ठंडा नहीं है। इससे ज्यादा देहरादून ठंडा है। पर वहाँ के लोग

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहते थे कि और साल की तुलना से वहाँ भी इस बार विशेष ठंडा नहीं।" यह सब बात करते-करते खुकुनी दीदी वहाँ आ गईं। उनसे सुना कि उनका बैग खो गया है। बूनी को दिया था, उसने उसे कहाँ रख दिया, वह बता नहीं सकती—बैग में प्रयोजनीय अनेक कागज और चिट्ठी पत्र थे। माँ यह सुनकर हँसने लगीं और बोलीं, "सामान बहुत बढ़ गया है। उसमें से कुछ खो जाना अच्छा है।" बूनी ने वह बैग कहाँ रक्खा, वह बता नहीं पा रही, सुनकर माँ ने कहा, "ऐसा क्यों होता है, जानते हो ? इन लोगों का एकमात्र लक्ष्य रहता है कि कैसे माँ की गाड़ी में जाकर बैठें। इसलिए दूसरी तरफ इनका ख्याल नहीं रहता।" दीदी को बैग के लिए दुःख प्रगट करते देखकर माँ ने हँसकर आकर दीदी को ठंडा किया, फिर ऊपर अपने कमरे में चली गईं।

११-१-४९। १० बजे के समय आश्रम गया। श्री श्री माँ दोतला के कमरे में थीं। खुकुनी दीदी ने मुझे ऊपर जाने को कहा। मैंने ऊपर जाकर माँ को प्रणाम किया। श्री श्री माँ के कमरे में अनेक लोग थे। मो० पेतित को भी वहाँ देखा। वे श्री श्री माँ के दोनों पादुका बार-बार अपने मस्तक से स्पर्श कर रहे थे। सज्जन सर्वदा ही माँ की चिन्ता में तन्मय रहते हैं।

कुछ देर बाद माँ कमरे से बाहर आ गईं। श्रीयुक्त नेपाल दादा (श्री नारायणानन्द स्वामी) ने कमरे में जाकर पता लगाया कि नारायण का भोग किस का दिया जायगा। माँ हँसते हुए बोलीं, "लखनऊ में किसी ने कहा कि दो साल यज्ञ करके नेपाल का चेहरा खूब सुन्दर हो गया है। देखने से ऋषि मालूम पड़ता है और मुख पर ज्योति दिखाई देती है। मैंने तो पहले यह लक्ष्य किया नहीं। इस समय लक्ष्य करके देखती हूँ सद्भाव लेकर रहने से चेहरे का परिवर्तन होना स्वाभाविक है। हाथ से सत्काज (अर्थात् यज्ञ में आहुतिदान का काम) होने के साथ-साथ यदि भाव भी उसी तरह का हो तो स्वाभाविक तरीके से ही चेहरे का परिवर्तन हो सकता है।

इसी समय शंकरानन्द स्वामी जी आए। वे नेपालदादा को देखकर बोले "देखता हूँ तुम अपराधी की तरह खड़े हो।"

माँ—(हँसकर) मुद्रा हो रही है। (सब हँसते हैं) पूजा के समय तुम लोग नाना रूप मुद्रा करते हो न ? भाव के साथ किन्तु स्वाभाविक भाव से मुद्रा होती रहती है वह समझ में नहीं आती—किन्तु होती है यह सत्य है।

श्रीमान् विभु ब्रह्मचारी ने आकर खबर दी कि अब पाठ आरम्भ होगा। यह सुनकर माँ तत्क्षण नीचे हाल की तरफ रवाना हुईं। हम लोग भी साथ साथ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आकर नीचे बैठे। तुलसीदास की रामायण का पाठ आरम्भ हुआ। एक ब्रह्मचारी ने पाठ किया।

सीता माँ

पाठ के बाद थोड़ा कीर्तन हुआ। पीछे अन्य बातों के बीच माँ बोलीं, "इस बार लखनऊ में एक माँ से मिलना हुआ। एक किसी कर्नल को जो जंगल में शिकार के लिए गया था यह मिली थीं और वहाँ से लाकर वे पति-पत्नी उनकी खूब सेवा करने लगे। कर्नल से सुना, और इसके पहले भी एक बार मैंने सुना था कि इन माता जी ने उनके अर्थात् कर्नल के पुत्र और कन्या के सम्बन्ध में जो कुछ कहा वह सत्य हुआ। यह माता जी कभी बात करती हैं और कभी मौन रहती हैं। इस बार सुना कि वे छः महीने से कुछ भी नहीं बोलती हैं। मैंने देखा कि उनकी नाक से कफ निकल रहा है, पर उसे साफ करने की वे कोई चेष्टा नहीं करतीं। पाखाना पेशाब के बारे में भी ऐसा ही। कर्नल एवं उनकी स्त्री उनको साफ सुथरा रखते हैं। इनका नाम सीता माता है।

वैद्यनाथ शास्त्री—यह क्या जीवन्मुक्त अवस्था है ?

माँ—उसकी यह अवस्था है कि नहीं, यह शरीर नहीं कहेगा। फिर भी परमानन्द ने कहा कि कुछ बीमारी होने से सिर में कुछ गोलमाल होने से भी ऐसी अवस्था होती है। उसने और भी कहा कि कोई संकल्प ग्रहण करने से भी ऐसा हो सकता है। वास्तव में ऐसा होता भी है—किसी ने जैसे संकल्प किया कि इतने समय तक वह बोलेगा नहीं अथवा अपने शरीर की रक्षा के लिए जो जरूरी है, वह स्वयं नहीं करेगा। इससे भी अन्ततः धैर्य की शिक्षा होती है। और मजे की बात यह कि कुछ दिन इस तरह मौन रहने और मिथ्या व्यवहार से विरत रहने से पीछे जो बोला जाता है, वह अनेक समय सत्य होता है। इन माता जी को जिस समय मेरे पास लाकर बिठा दिया, वह उसी जगह लेट गईं। मैंने जब उन्हें "माँ, माँ" कह कर पुकारा, तो उसने प्रथम जिस तरह से मेरी ओर देखा, उससे उनकी आँखों से त्राटक साधन का भाव प्रकाशित हुआ। मैं अवश्य यह नहीं कह रही कि माता जी इस प्रकार की कोई क्रिया करती हैं। फिर भी आँखों में पहले भाव ऐसा ही था—पीछे से अवश्य वह सहज भाव से देखने लगीं।

खुकुनी दीदी माँ को बुलाने आईं। माँ के आहार का समय हो गया था, माँ को जो सब फल दिए गए थे, माँ ने उन्हें बाँटने को कहा जिन्होंने तुलसीदास की रामायण का पाठ किया था, उन्हें माँ ने एक फल दिया, फिर आसन से उठकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उनके गले में एक माला देकर बोलीं, "पाठ के समय तुम्हें माला नहीं दी गई इसी से अब दी। तुम रोज पाठ करके यह स्थान पवित्र रखो। हम लोग आकर इस पवित्र स्थान में बैठें।

खुकुनी दीदी—हां, इस तरह मां को थोड़ा थोड़ा पुण्य देना हो जायगा।

(सब हँसते हैं)

मां—(खुकुनी दीदी से) और तुम यह सब मकान बना कर यहाँ पाठ की सुविधा करके इस पुण्य का अंश लेती हो। (सब हंसते हैं)

क्रमशः

"सावधान ! मैं आ गयी"

कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले,
समागत्य वक्तीति लोकाः ! शृणुध्वम्।
परस्त्री-परद्रव्य-वाञ्छां त्यजध्वं,
भजध्वं रमानाथपादारविन्दम्॥

जरा, मृत्युदेवता की दूती, कान के समीप आकर लोगों से कहती है—हे मानव ! सावधान होकर सुनो। तुम्हें पकड़ने के लिए मैं आ गयी हूँ, अब कुछ ही समय बाकी है—इतने में तुम बचाव के लिए कुछ प्रयत्न करो। परायी स्त्री और परद्रव्य की पापमयी इच्छा का त्याग करो और रमानाथ भगवान् श्री विष्णु के चरण कमल का पुनीत भजन करो। इससे ही तुम्हारा परित्राण हो सकता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मातृस्तुतिः

(मनुदेवभट्टाचार्यविरचिता)

श्रीमत्प्राच्यमहामहीधरतटीधातुद्रवाऽऽलोहित-
प्रोद्यद्भास्करचण्डरश्मिविसरप्रोद्भिन्नपाथोभुवाम् ।
राजत्कुड्मलसम्भवारुणिमलक्ष्मीसिन्धुसत्सोदरं
मातुः पादसरोजयुग्ममलं वन्दे सदाऽभीष्टदम् ॥१॥

यद्वक्त्राम्बुजजाततत्त्वनिकरः पीयूषयूषोपमो
गोपीनाथसमैर्बुधैः श्रुतिमधुव्रातैस्तु पेपीप्यते ।
वाणी यद्रसनाङ्गणाग्रविहिताऽऽवासा नरीनृत्यते-
माताऽऽनन्दमयी ममोपरि कृपादृष्टिं क्रियाच्छाश्वती ॥२॥

प्राणित्राणपरायणैकनिपुणा कारुण्यपाथोनिधी-
गैर्वाणार्णवकर्णधारतरणी संसारसन्तारिणी ।
भक्तस्वान्तसरोजषण्डनिलया श्रीराजहंसीव या
माताऽऽनन्दमयी सदाशुभमयी पोपूज्यते साधकैः ॥३॥

गाढीभूतमहान्धकारचिकुरश्रेणीषु यस्या मुहु-
र्वर्षद्दिव्यसुधेन्दुसोदरमुखं राराष्टि भूमण्डले ।
आलक्ताक्तमहाजपारुचिनिभं यस्याः पदाब्जद्वयं
सैषाऽऽनन्दमयी विभाति सततं याऽन्वर्थनाम्नी क्षितौ ॥४॥

भक्तत्राणकरी महाशुभकरी कारुण्यरत्नाकरी
शश्वत्प्रेमकरी सदाऽभयकरी पुण्यालिमुक्ताकरी ।
शास्त्रोक्तायनकर्मपालनकरी श्रुत्यब्जिनीभास्करी
माताऽऽनन्दमयी सदा विजयते पृथ्वी च यत्किङ्करी ॥५॥

पूर्णस्नेहमयी दयाम्बुधिमयी श्रेयोमयी भामयी
दिव्यानन्दमयी सुमङ्गलमयी ज्योतिर्मयी चिन्मयी ।
शान्तस्वान्तमयी सदाभवमहामोहाशने तन्मयी
माताऽऽनन्दमयी मयीह सुमनस्तेजोमयी राजताम् ॥६॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्वाहं मन्दमतिः सदाऽघनिरतः पापैककृत् पामरः
क्वैषा सा भवती सदाशुभवती पुण्याब्धिपूर्णा परा ।
खद्योतः कथमत्र चन्द्रकिरणान् द्योतैः स्वकैर्दीपयेन्-
मातः स्तोत्रविधौ शिशोश्चपलता क्षम्या दयाक्षीरधे ॥७॥

जीवत्वेन मलेन नष्टधिषणोऽयं क्षुद्रजन्तुस्तु कः
का च त्वं त्रिदशादिलोकनिवहाञ्जितवा च रारज्यसे ।
मातस्त्वच्चरणाम्बुजद्वयभरे पद्यप्रसूनाञ्जलिः
कल्पान्तावधि तिष्ठतु प्रमुदितो भृङ्गायमाणो मम ॥८॥

किं दानेन, सुरार्चया, सुरधुनीस्नानेन वा तेन किं ?
किं वा क्लिष्टतपस्यया, प्रतिदिनाभ्यस्तेन शास्त्रेण किम् ?
हे भक्ताः, श्रृणुतास्मदीयवचनं संसारसारालयं
संसेव्यं भुवि कर्मचित्तवचनैर्मातुः पदाब्जद्वयम् ॥९॥

एतच्चारुविशुद्धकोकनदराजीवद्वयारुण्यहृत्
किं वा पल्लवतल्लजालिदललालित्यैकलीलागृहम् ।
आहो, नन्दनरक्तचन्दनगलद्धाराप्रभोद्भासितं
मातुः पादसरोरुहं मम ददत्वानन्दमय्याः शुभम् ॥१०॥

आनन्दमय्याः सुकृतैकगेहे पदद्वयाम्भोजपरागपुञ्जे ।
भृङ्गायमाणं मनुदेवभट्टाचार्यस्य चित्तं किल मोमुदीति ॥११॥

—:०:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुकम्पाधारा (पूर्वानुवृत्ति)

[श्री चरणकमलाश्रिता]

उन्नीसवाँ संयम-सप्ताह महाव्रत

२६ अक्टूबर से ४ दिसम्बर—

श्री अवधूत जी महाराज के प्रवचनों के कुछ अंश देती हूँ :—

ब्रह्मा जी ने मोहवश जब ग्वाल-बाल, गउओं, आदि को कन्दरा में छिपा दिया तो भगवान् ही गो, गोवत्स, लाठी, रस्सी आदि सब (जैसे के तैसे) स्वयं बन गए। गोपियों व गउओं को इन बच्चों से बहुत अधिक प्रेम हो गया। अपनी आत्मा का संसार की समस्त वस्तुओं से अधिक प्रेम होता है। जिस किसी से प्रेम होता है वह अपनी आत्मा के लिये होता है—और किसी के लिये नहीं। भगवान् कृष्ण विश्वात्मा हैं तो उनसे अधिक प्रेम होना स्वाभाविक ही है। जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है-जिसके आश्रय स्थित होती है-और जिसमें लीन होती है वह वास्तव में अलग-अलग नहीं—एक ही होती है। प्रकाश्य वस्तु प्रकाशक से भिन्न नहीं होती। समस्त कारणों के कारण भगवान् कृष्ण ही हैं। जब अनेक जन्मों के संयम, पुरुषार्थ आदि से चित्त शुद्ध हो जाता है तब यह स्पष्ट दिखाई देता है। आनन्दमय कोष में अच्छे बुरे संस्कार सब पड़े रहते हैं। जब मनोमय कोष में आते हैं तब दिखते हैं। भगवान् जन्म-जन्मान्तर के यह संचित संस्कार चुरा लेते हैं। दासोऽहम् भाव से उनकी पूजा करने से सोऽहम् रह जाता है। उनकी चरणरूपी नौका का सहारा लेने से परम पद की प्राप्ति हो जाती है व भव सागर गऊ के खुर के गड्ढे के समान तर जाता है। पाप ताप नष्ट हो जाते हैं।

श्री कृष्ण भगवान् में काम, क्रोध, भय, ईर्ष्या, मित्रता, आदि भावों से भी भगवान् की प्राप्ति होती है। जैसे कुब्जा आदि, शिशुपाल, कंस, प्रहलाद, काशी नरेश के मित्र पौण्ड्रीक, ग्वालबाल आदि। अमृत को विष समझकर पीने से भी अमृत का ही फल होता है। भगवान् निरावरण ब्रह्म हैं—(माँ की ओर इशारा करके) माँ भी निरावरण ब्रह्म हैं।

सतोगुण बढ़ने से रजोगुण व तमोगुण दबे रहते हैं पर भगवान् विशुद्ध सतोगुण हैं। भगवान् की शरण में आनेवाले की पाप-ताप की सब वृत्ति समाप्त हो जाती है। भगवान् के ही स्वरूपों में अपने इष्ट में अधिक प्रेम होता है। एक स्वरूप में भी कई भेद हो जाते हैं— जैसे कृष्णजी—मथुरा के, वृन्दावन के एवं द्वारका के,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महाभारत के आदि । अपना इष्ट ही सर्वस्व होता है । चाहे जैसा हो । (इस पर पार्वती जी की शिवजी को पतिरूप में पाने की तपस्या का उदाहरण दिया । उन्होंने कहा था "जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि ताही सन काम") स्वसम्बन्ध से ही प्रेम की तारतम्यता देखी जाती है । उपासना का अर्थ है अपने उपास्य को, बुद्धि का विषय बना कर, शास्त्र के अनुसार पास रहना उपासना कहा जाता है । तैल-धारावत् उसमें अधिक से अधिक लीन होने की चेष्टा । जो केवल एक मूर्ति में ही प्रेम होता है वह तीसरे दर्जे की भक्ति है— मध्यम भक्ति वह जिसमें भगवान् में प्रेम हो, भक्तों में मैत्री हो—अभक्तों पर करुणा, (अर्थात् उनको भगवान् की ओर लगाने की कोशिश ।) प्रथम श्रेणी की भक्ति वह है जो हर जगह अपने इष्ट को देखे ।

धन से अधिक प्रेम सन्तान में, सन्तान से अधिक स्त्री में, स्त्री से अधिक अपने शरीर में, शरीर से अधिक प्राण में प्रेम होता है, और प्राण से अधिक मन, मन से अधिक बुद्धि, बुद्धि से अधिक अहम् । देखना है इनमें से किस stage तक भक्त का प्रेम भगवान् में है । कौन कहाँ तक अर्पण कर सकता है ।

आत्म समर्पण करने का फल क्या है ? सब कुछ भगवान् को क्यों दे ? इसका उत्तर बलि महाराज ने दिया । भगवान् ने विराट् रूप से जब तीनों लोक नाप लिये, (फिर भी बलि महाराज के प्रेम में कमी नहीं आई ।) उनकी पत्नी विन्ध्यावली भी वहाँ आईं । उस समय उन्होंने कहा है कि आत्म समर्पण क्यों करना चाहिये । यह सारा विश्व भगवान् ने अपने खेल के लिये बनाया पर जीव निर्लज्ज होकर उन चीजों को अपना कहने लगा । विन्ध्यावली ने कहा स्वामी की ही वस्तु स्वामी को दी तो इसमें अभिमान क्या ? मैनेजर यदि मालिक बनकर बैठ जाय तो वह भगवान् का भक्त कैसे हो सकता है ? परमात्मा को न मानने से ही सारे झगड़े शुरू होते हैं । जो परमात्मा की वस्तु को अपना मानता है वह भक्त नहीं, शत्रु है । देह, मन, बुद्धि, अहङ्कार को भी, वास्तव में, भगवान् का जानना चाहिये । "मैं यह हूँ," "मैं वह हूँ" कहता जा रहा है । "मैं" भगवान् को नहीं देता । भगवान् से कहना पड़ेगा मैं तेरा हूँ । केवल कहना ही नहीं ठीक-ठीक "मैं" को अर्पण करना चाहिये । मैं जैसा हूँ, आपका हूँ । संसारी वस्तुएँ छोड़ना तो आसान है पर मैं को देना जीते ही मरना है । फिर जैसे वह रखे वैसे ही रहना है । फिर कुछ सोचने का भी अधिकार नहीं । "मैं" अर्पण होने से बुद्धि भी अर्पण हो गई । इन्द्रियाँ व शरीर भी अर्पण हो गया । भगवान् गीता में कहते हैं जो मेरा अनन्य चिन्तन करता है उसका योग क्षेम मैं वहन करता हूँ । वैसे तो सभी का भगवान् करते हैं परन्तु योग क्षेम सम्बंधी चेष्टा ऐसा भक्त कर ही नहीं सकता । वह केवल भगवान् का ही एक सहारा लेकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही है, तो यह निश्चित बात है कि भगवान् करते हैं। आत्म समर्पण करनेवाला उसी समय मुक्त हो जाता है। इष्ट गुरु की कृपा तब ही है जब वह प्रत्यक्ष देखे कि मैं इनका हूँ। विन्ध्यावली ने ब्रह्म-पाश में बँधे हुए पति के सामने यही कहा कि जो परमात्मा की चीज को अपना समझता है वह चोर है। भगवान् ने बाद में उनका पाश खोलकर सुतर लोक, (स्वर्ग से भी ऊपर) भेज दिया व कहा मैं हमेशा तुम्हारे समीप रहूँगा। उस समय वहाँ प्रह्लादजी भी उपस्थित थे। वे अपने पौत्र पर भगवान् की इतनी कृपा देखकर गद्गद हो गए व कहा इतनी कृपा तो ब्रह्मा, लक्ष्मीजी, आदि पर भी नहीं की। भगवान् ने प्रह्लादजी से भी कहा कि तुम भी सुतरलोक में निवास करो। हर वक्त गदा हाथ में लिये हुए मुझे देखोगे। मेरे दर्शनों का महा-आह्लाद भी प्राप्त होगा। आत्म समर्पण का इतना बड़ा फल है। श्रीदामा ने एक बार श्याम सुन्दर से कहा कि आपका विरह मुझसे सहन नहीं होता इस लिये अपना एक चित्र बनवा के दे दो। भगवान् ने मइय्या से कहा मेरा चित्र बनवा दो। पता लगाया गया कि कौन अच्छा चित्र बना सकता है। सुना कि चित्रा अच्छा चित्र बनाती है। बुलाई गईं। उन्होंने यशोदाजी से कहा मैंने आपके लाला को देखा नहीं है पहले दिखा दो। भगवान् त्रिभंग ललित होकर खड़े हो गए। उसके हृदय में प्रेम की बाढ़ आ गई। वह जब चित्र बनाने बैठी तो जब जो अङ्ग बनावे आँसुओं से धुल जाय फिर उसने सरस्वती देवी से प्रार्थना की कि मुझे यह चित्र बनाकर देना है आप बनवा दें। उन्होंने कहा यह चित्र बनवाने की शक्ति मुझमें नहीं है तुम श्री राधाजी की आराधना करो। उनकी कृपा से असीम सुन्दर चित्र बन गया। उसे देखकर लाला अत्यन्त प्रसन्न हुए व मइय्या भी बहुत प्रसन्न हो गईं। उन्होंने चित्रा से पूछा इस चित्र के लिए क्या दूँ ? उसने कहा मुझे लाला को दे दो तो यह सुनकर यशोदा जी मूर्छित हो गईं कि लाला बिना कैसे रहूँगी। तब श्रीकृष्णजी ने सखी से कहा, "सखी मैं इसी रूप से तेरे पास रहूँगा, मुझे मत ले जा, मइय्या को कष्ट होगा। (इस कथा को सुनाकर श्री अवधूतजी ने कहा तुम लोग माँ के भक्त हो तो माँ को आत्मसमर्पण करो।)

जिस समय साधक सम-दृष्टि हो जाता है उस समय उसको कण-कण सत्य रूप प्रतीत होता है। जिसका राग द्वेष मिट जाता है उसको सुख ही सुख रहता है—सम दृष्टि हो जाता है। जितने भी इन्द्रियों के विषय हैं प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग द्वेष रहता है। जैसे नाक—अच्छी खुशबू से खुश हो गए, दुर्गन्ध हुई तो नाक बंद कर ली। कान से अच्छा स्वर सुना तो प्रसन्नता हुई व विपरीत बात सुनी तो कष्ट हुआ। ऐसे ही सब इन्द्रियों के बारे में है। जो भी काम हम करते हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसमें या तो राग होगा या द्वेष। यह स्वाभाविक बात हो जाती है। इसलिये भगवान् ने कहा राग द्वेष के वश में नहीं होना चाहिये। कल्याण के मार्ग में यह ठगों की तरह राह में लूट लेते हैं। लक्ष्य तक पहुँचने नहीं देते। भगवान् ने कहा कर्म योगी को सदा संन्यासी समझना चाहिये। जो न किसी से द्वेष करता है न राग। यह हमारे जीवन में आना चाहिये। सुख दुःख के साधनों में जिसका राग द्वेष नहीं रहा वह ऐसा मनुष्य कर्म करता हुआ भी नित्य संन्यासी है। यह बात जीवन में लानी चाहिये। जिसे संसार कहते हैं वह है क्या ? इस जीवात्मा में सुख दुःख का भोक्तापन ही संसार है। सुख दुःख में सम वही हो सकता है जिसके हृदय में राग द्वेष पैदा न हों। राग द्वेष छोड़ना आसान नहीं। '(दृष्टान्त के लिये यहाँ हनुमानजी की चुटकी बजानेवाली कथा सुनाई।) जिस व्यक्ति में राग द्वेष है उसको संसारी चीजों का भी ठीक ठीक ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि जिसमें उस व्यक्ति का राग होगा उसमें गुण ही गुण दिखेंगे व जिसमें द्वेष होगा उसमें दोष ही दोष दिखेंगे तो उसको यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता।

महापुरुषों के संग से यह धीरे-धीरे निवृत्त हो सकता है। अविद्या के कारण जीव अहङ्कार में आत्मबुद्धि कर बैठता है। आत्म-वस्तु जो है वह अत्यन्त निर्मल, स्वच्छ एवं अत्यन्त सूक्ष्म है। बुद्धि भी अत्यन्त सूक्ष्म व आत्मा की तरह स्वच्छ व निर्मल हो सकती है। आत्मा का आभास बुद्धि पर—बुद्धि का मन पर—मन का इन्द्रियों पर आभास पड़ा तो मनुष्य शरीर को ही आत्मा समझने लगा। आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु है इसलिये इसके आभास से देह तक में आत्म बुद्धि हो जाती है। जब देह में आत्म बुद्धि होती है तो राग-द्वेष होता है व उस व्यक्ति से रागद्वेष फिर पाप-पुण्य कराते हैं व जन्म मरण का चक्कर चलता है। जिसको आत्मा का ज्ञान हो जाता है उसमें राग, द्वेष, मोह आदि नहीं रहते, वह मुक्त हो जाता है। धर्म अधर्म वहाँ रहेंगे जहाँ राग द्वेष है। यह भेद ज्ञान अविद्या से है। अविद्या दूर हुए बिना ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के अभाव का ज्ञान न किसी को हुआ न होगा, (यदि हो जाय तो ज्ञान ही तो होगा !) जिसके हृदय से राग द्वेष निकल गए वह हमेशा के लिये सुखी हो गया। (दुःख का जाननेवाला दुःख से अलग है जब हम उससे तदात्म कर लेते हैं तो दुःख प्रतीत होता है।

योग क्षेम को प्रधान माननेवाला कल्याण मार्ग का यात्री नहीं। "मन से सकल वासना भागी, केवल राम चरण लव लागी।" परमात्मा के श्री चरणों का आसरा छोड़कर नश्वर पदार्थों के पीछे जाना मूर्खता है। इसलिये तुम योगक्षेम को न चाहने वाले बनो। लोगों का परमात्मा पर तो विश्वास नहीं धन पर विश्वास है। बिना भगवान् के विश्वास के भव सागर में ही पड़े हैं। भगवान् का विश्वास

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तब माना जाता है जब उसको केवल एक भगवान् का ही सहारा हो। जिस समय भगवान् पर विश्वास होता है तो धर्म अधर्म अपने आप छूट जाते हैं। जब तक कि अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता तब तक भगवान् की शरणागति नहीं आती। अन्तः-करण भगवान् के स्वरूप का ध्यान करने से शुद्ध होता है। मृत्यु के समय भी हृदय में भगवान् का ध्यान होना चाहिये। प्रश्न उठता है भगवान् का ध्यान कैसे किया जाय। ऊधव से भगवान् ने स्वयं कहा, देखो ऊधव, मेरा जो विग्रह है, इसके सारे अङ्ग सुन्दरता की खान हैं इसलिये सबको खींच लेता है। अत्यन्त सुन्दर मुखार-विन्द प्रेमभरी चितवन यह दोनों सारी सृष्टि में कृपा की वर्षा करते रहते हैं। मेरे सारे अङ्गों में मन को लगा देना चाहिये। इन्द्रियों के जो विषय हैं मन के द्वारा इनसे राग छूट जाता है। (अल्प में सुख नहीं, भूमा में सुख है।) विचार करके कि विषयों में कुछ सुख नहीं है केवल अपने भगवान् में है, मन को विषयों से खींच ले व बुद्धि की सहायता से राग-द्वेष से मन को हटा ले। चरणों से ध्यान शुरू करना चाहिये फिर धीरे-धीरे सारे शरीर का ध्यान करना। फिर एक ही अङ्ग में ध्यान लगाना चाहिये। मन्द-मन्द मुस्कान की छटा से युक्त जो मेरा मुखारविन्द है केवल इसी का ध्यान करो। जिसकी आसक्ति सगुण रूप में हो जाती है वह आगे निराकार में नहीं जाना चाहता। एकाग्रता हो जाती है इसके बाद मन शून्य में जाता है। शून्य, (आकाश) का ध्यान भी छोड़कर मेरे स्वरूप में स्थित हो जाओ। पहले मन स्थूल, फिर सूक्ष्म, फिर कारण में जाता है। भगवान् की कृपा से वसुदेव जी को सूतिकागृह में ही स्वरूप का बोध हुआ आप शुद्ध ज्ञान-स्वरूप, आनन्दस्वरूप व संसार की सकल वस्तुओं के साक्षी हैं। पुरुष से परे कुछ नहीं, सबका आदि वही है। जो उसकी आसरा ले लेता है तो भगवान् की कृपा से माया का परदा हट जाता है, फिर माया का बस नहीं चलता। जिस बुद्धिमान ने मन-वाणी अपने आधीन नहीं किया उसका दान धर्म ऐसा कच्चा है, जैसे कच्चे घड़े में भरा हुआ जल। भगवान् के चरणों में हमारा मन लग जाना चाहिये।

मेरी भक्ति से, मेरा सहारा लेकर, मनवाणी को बस में करना चाहिये तो फिर आगे कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहेगा।

श्री स्वामी शरणानन्द जी महाराज के ३ दिन किये हुए प्रवचनों का कुछ अंश कुछ विस्तार में ही, दे रही हूँ—

जिसकी महत्ता स्वीकार की उससे अपनत्व हुआ या नहीं? जिसकी हम आस्था स्वीकार कर लेते हैं उसका प्रभाव कारण, सूक्ष्म, स्थूल, सब शरीर पर पड़ता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—उदारता, स्नेहमयी, समर्थ, अद्वितीया करुणामयी ! जब सम्बन्ध सजीव होता है तो उसकी स्मृति जागती है तो सभी इन्द्रियाँ अपनी अपनी वृत्ति छोड़कर उसमें विलीन हो जाती हैं। किसी प्रकार से भी हम आस्था स्वीकार कर लें। जो सदैव है, जो सभी का है; वही सर्वत्र है एक ही है। समर्थ वह है जो सभी को अपना ले। अपने में है—अपना है—अभी है। उसके लिए कोई श्रम-साध्य उपाय नहीं चाहिये। संयम का अर्थ जो अपने में अपना है उसको अभी प्राप्त किया जाय। करने के पीछे एक भाव होना चाहिये व उसके पीछे लक्ष्य होना चाहिये। चाहे माता, पिता, पति कुछ भी कहो, भक्तों का भगवान् अपने में है। योगियों का परम तत्त्व अपने में है। करने से जो मिलता है वह सदैव नहीं रहता पर ज्ञान के द्वारा जिसकी उपलब्धि होती है वह सदैव रहता है। अपने में जो है उसकी प्राप्ति के लिये शरीर, योग्यता, सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं। आप किसी के साथ भलाई करें या न करें पर किसी दूसरे को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाएँ, किसी की बुराई न करें, किसी का बुरा न चाहें, किसी भी प्रकार से कोई ऐसा काम न करें जिससे दूसरे को कष्ट हो। प्राकृतिक नियम यह है कि जिसके द्वारा दूसरे की हानि होती है उससे उसकी स्वयं हानि होती है। अमर बेल वृक्ष का रस चूस कर बढ़ती है—वृक्ष सूख जाता है फिर वह स्वयं भी सूख कर उसकी जड़ में गिर जाती है व खाद बन जाती है। वृक्ष फिर हरा हो जाता है।

आप साधक हैं आपको अधिकार नहीं किसी को बुरा समझने का। इससे संकल्प शुद्ध हो जाता है। आप अपने आप भले हो जायँगे—जब भले हो जायँगे तो भलाई अपने आप होने लगेगी। जब भले हो जाओ उसका अभिमान न करो, न फल मांगो। शरीर के रहते—संसार प्रतीत होते हुए—आपका उससे योग हो जाता है—उससे आपकी दूरी नहीं रहती, जो कि आप चाहते हैं। मां आप में मौजूद हैं व आप मां में मौजूद हैं। सर्वाधार, जगदाधार मां हैं। इसका बोध तब होगा जब आप ईमानदार, उदार, परिश्रमी, योग्य हों। अनुपयोगी काम छोड़ दें उपयोगी कार्य करें। जब तक हर एक काम साधन-रूप न हो तब तक साधन सिद्ध नहीं होता। कर्म का प्रत्येक फल विनाशी होता है। बिना फल के सेवा करे। लोभ-रहित होना चाहिये—मोह-रहित होना चाहिये क्योंकि हमारी माँ ऐसी है, (या भगवान् ऐसे हैं) माँ से अभिन्न होना चाहते हो तो हमेशा प्रत्येक कर्म माँ का है ऐसा सोचो। हर काम को माँ या ब्रह्म के लिये करो। प्रत्येक कर्म पूजा बन जाना चाहिये। यह तब होगा जब आप यह जान जायं मेरा नित्य सम्बन्ध, जातीय सम्बन्ध, आत्मीय सम्बन्ध है—प्रत्येक कार्य उसी की पूजा है। शान्ति, मुक्ति, प्रेम पा जाओगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संयम बहुत ही महत्त्व की वस्तु है पर देखना यह है कि मूल क्या है।

१. चिन्तन से भयभीत नहीं होना।

२. उसका विरोध न करे।

३. उससे तादात्म्य रक्खे।

जब चिन्तन निर्जीव हो जाता है तो जो अपना है उसकी स्मृति उदय होती है। जिससे हमारी प्रियता है माँ सदैव है—सर्वत्र है—अद्वितीय है। हमारी और माँ की जात एक है क्योंकि उससे उत्पन्न हुए। शरीर तो प्रकृति का है। हम सब स्वाधीन, रस रूप, अविनाशी जीवन चाहते हैं, उसके लिये सत्य का आश्रय। जिसने हमारा निर्माण किया है वह हमको सदैव देख रहा है, कैसा है? कहाँ है? इस सम्बन्ध में जितना कहा गया है कम है। भक्त होने में या मुक्त होने में कोई दिक्कत नहीं—वह तो मिला हुआ ही है। शरीर से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा वही अपना है जो हमारा प्रकाशक है—आधार है। हमें बुराई-रहित हो जाना चाहिये तो भलाई अपने आप होने लगेगी। सेवा तो करो पर कुछ आशा मत करो। जो अपना है उससे माँगना क्या? और जो अपना नहीं है उससे भी माँगना क्या?

१. जिसको प्रसन्न करना हो उससे कुछ माँगो मत,

२. मैं तेरा हूँ—तू मेरा है,

३. वह जो चाहे करे—जैसे रखे।

सब ममताएँ तोड़कर एक आत्मीयता स्वीकार करो, जब मन दे दिया तो मन जिसका है—जैसे चाहे करे। मेरा कुछ नहीं है मुझे कुछ नहीं चाहिये। सुबह कुल्ला करे तो सोचो प्रभु के कुल्ला करा रहे हैं। मुँह धोए तो उनका मुँह धुला रहे हैं। सुबह से शाम तक जितने काम करो सभी सोचो पूजा है। जब प्रत्येक काम पूजा हो जायगा तो स्मृति जाग्रत होगी व संसार की विस्मृति हो जायगी। हमसे भूल यह हुई कि सब कुछ तेरा है यह भूल गए। जिसने समझ लिया मेरा कुछ नहीं तो उससे ज्ञान का प्रकाश होता है। विश्वास करो प्रभु मेरा है, माँ मेरी है। सब उसका है तो प्रत्येक वस्तु उनकी स्मृति जाग्रत करेगी। सब कुछ उनका है, वह मेरे हैं। इन्द्रियाँ मन में विलीन हो जायँ—मन बुद्धि में—बुद्धि सम हो जाना ही संयम है। शान्ति, शक्ति, भक्ति, मुक्ति हर किसी को मिल सकती है—योग, बोध, प्रेम मिल सकता है। सुख भोग और दुःख भोग और योनियों में भी हो सकता है। शान्ति मनुष्य को ही मिल सकती है। माँ से शान्ति के लिये प्रार्थना—आवश्यकता अनुभव आप करे—माँ का काम पूरा करना है। भोग, मोह, आसक्ति कम हो जाय। योग, बोध, प्रेम हो जाय। जो चाहने से मिल जाय वह भगवान् हैं और जो चाहने पर भी न मिले वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संसार है। जप, तप, साधन का अभिमान न करे। मनुष्य को केवल यह पसन्द करना है कि मुक्ति, शान्ति, भक्ति चाहिये। उनका आश्रय ले लो उनसे प्रार्थना करो।

जो कभी अलग नहीं हुआ वह ऐसा लगता है कि मिला नहीं। जो नहीं मिला वह मिला हुआ सा लगता है, (शरीर) इस सृष्टि में personal कुछ नहीं है। जीवन में जो अशान्ति, पराधीनता, विकार प्रतीत होते हैं वह भूल से हैं। जो सदैव अपना है उसको मानते नहीं और जो अपना नहीं उसको अपना मानते हैं। जो अपने में है उसे अपना माने और जो प्रतीत हो रहा है उसे अपना न मानें। शरीर अपने लिए नहीं है, जिसकी सत्ता से प्रकाशित है—जिसने निर्माण किया है—उसका है। शरीर को अपना मत मानो। माँ ने एक बार कहा था "यह शरीर तब तक रहेगा जब तक लोग पसन्द करेंगे।" दूसरे की वस्तु को अपना मान लेना बेईमानी है। जब तक स्वयं अपने सुख के लिये खाना, बोलना आदि चाहते हैं तब तक जन्मेंगे व मरेंगे। जब हम अपने लिये कुछ चाहते हैं तभी बंधन (कारण, स्थूल, सूक्ष्म शरीर से) होता है। जैसे शरीर में अनेक स्नायु हैं पर एक दूसरे से सम्बन्ध नहीं। हमारा सम्बन्ध शरीर से कभी हुआ ही नहीं। स्वरूप से शरीर से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। जब कुछ चाहते हैं तो functional सम्बन्ध हो जाता है। जो अपने को भूलता है वही परमात्मा को—कर्तव्य को—भूलता है। महापुरुषों की वाणी तथा जीवन को मानना चाहिये। हमारी कोई ऐसी चाह नहीं है जिसको पूरा करने की सामर्थ्य जगत-जननी में न हो। यह तो मां के विधान से शरीर मिला—उसका है। ममता से किया दान बंधन का कारण बन जाता है। अगर मानव ठीक मानव बन जाय तो वह इतना स्वाधीन हो जाता है कि कहा नहीं जा सकता। उसको पा करके कुछ पाना नहीं रहता।

मुक्ति अपने लिये, सेवा संसार के लिये, भक्ति भगवान् के लिये। प्रेम प्रेमास्पद का नित्य विहार है वही तो माँ का राज्य है। जितना काम है मां का काम है—मां है अपनी—यदि मां का प्रेम चाहिये तो माँ के मन के काम करके उनकी प्रसन्नता एवं प्रेम प्राप्त करना होगा। हम जिसमें हैं जो हम में है उसका प्रेम चाहिये। प्रेम तो माँ देगी पर आप जरूरत या कमी तो अनुभव करें। ऐसा कोई नाता नहीं जो उससे नहीं हो सकता। जो काम अपने लिये करते हो सब माँ के काम समझ कर करो।

जब जीवन में संयम आ जाता है तो बुद्धि विवेकवती हो जाती है। हृदय प्रेम से भर जाय—शरीर मन संयमी हो जाय—इसी माँग की पूर्ति के लिये मानव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवन मिला, यह जगज्जननी की अहैतुकी कृपा है। आस्था, श्रद्धा, विश्वास इस लिये मिला है कि हम उसके अस्तित्व को स्वीकार करें। जो सदैव होगा वह सभी का होगा, सर्वत्र होगा, अभी भी होगा, अपना भी होगा। उसकी महत्ता को स्वीकार करें। माँ सुहृद्, करुणामयी, स्नेहमयी, कृपामयी है। उनकी दयालुता एवं अपार करुणा की सीमा नहीं। उनको अपना मान लो। उनसे जातीय सम्बन्ध, नित्य सम्बन्ध, आत्मिक सम्बन्ध अविनाशी है। अपने होने से प्यारे हैं। प्रिय को नित-नव-रस देने की बात प्रेमियों की है। शरीर के द्वारा माँ की सेवा समझ कर संसार की सेवा है। हमारी सद्गति, जीवन मुक्ति, भक्ति का संकल्प माँ का संकल्प है।

—o—

४ नवम्बर को ब्रह्मनिष्ठ परमहंस महामण्डलेश्वर श्री पूर्णानन्द जी के प्रवचन का अधिकांश भाग यहाँ दे रही हूँ।

कई वर्षों के बाद माँ के द्वारा आयोजित जो यह महोत्सव उसमें टूटे फूटे शब्दों से अध्यात्मवाद के विवेचन का शुभ अवसर पाया। शरीर ठीक नहीं, पर माँ का संदेश पाकर रह नहीं सका, इसलिये थोड़े ही मिनट कुछ कहूँगा।

मन ही बन्धन का हेतु और मन हो मुक्ति का हेतु है। जीव अनेक प्रकार का अनुभव कर रहा है उसका मूल कारण मन है। जैसे मिट्टी पानी के पड़ने से कीच बन गई—कार 'पास' हुई—कीच उछली व शरीर और वस्त्र पर पड़ गई। पानी ने सूखी मिट्टी को कीच बना दिया अब वह कीच उछलकर पड़ गई तो वह साफ कसे होगी? तो कहना पड़ेगा कि पानी से ही होगी। इसी प्रकार मन ही बंधन का कारण और मन ही मुक्ति का।

बहिनें जब ताला बंद करके सत्संग में आती हैं—चाभी के द्वारा ताला बन्द होता है। घर लौटने पर फिर उसी चाभी से ताला खुलेगा। उल्टी चाभी से ताला बंद होता है और सीधी चाभी से खुलता है। इसी तरह मन... ...।

मन के द्वारा ही उसका, (यानी आत्मा का) साक्षात्कार होगा। वही मन मुक्ति का हेतु वही बंधन का हेतु। मन ही अपना मित्र और मन ही अपना शत्रु है। छिपा हुआ शत्रु अधिक हानिकारक होता है—मन ही शत्रु है; मन के अतिरिक्त कोई शत्रु नहीं। इन्द्रियाँ भी शत्रु और इन्द्रियाँ ही मित्र हैं। निरोध शब्द का अर्थ क्या है? क्या आँखें बन्द कर लीं या कानों में रूई लगा ली तो निरोध हो गया? या नाक बंद कर ली तो दुर्गंधि का निरोध हो गया? नहीं, नहीं! जिसको इन्द्रियाँ विषयों की तरफ न जावें वही स्थित-प्रज्ञ है। कोई सोचे जुलाब लेकर ४०, ५०, दस्त आ जावें तो शरीर शक्तिहीन हो जायगा और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन्द्रियाँ भी शक्ति-हीन हो जायँगी और वह सोचे कि वह स्थित-प्रज्ञ हो गया ! यह ठीक है कि रोगी की इन्द्रियां विषयों की तरफ नहीं जातीं, पर वह सोचता है जब अच्छा हो जाऊँगा यह खाऊँगा, वहाँ जाऊँगा, फलानी चीज सम्हाल कर रखना अच्छा होकर इस्तेमाल करूँगा ! इससे कुछ नहीं बनता। इन्द्रियों का निरोध यदि जंगल में जाकर भी न कर सके तो वह घर से बदतर है और यदि घर में रह कर इन्द्रियों का निरोध कर लेता है वह घर, घर नहीं तपोवन है। (सप्त भूमिकाओं में तीन भूमिका जिज्ञासु की, चौथी भूमिका ज्ञानी निरभिमानी की)।

जिसकी दृष्टि में "मैं, तू" नहीं, गुरु चेला नहीं, वही वेदान्ती है—ब्रह्मवेता है। तो फिर वह उपदेश किसे देगा।

कांच के गिलास में आप लाल शर्बत या रंग भर के रख दें। कोई बाहर से आकर दूर से देख कर कहे कैसा गिलास है। किसी ने बता दिया गिलास तो सफेद है इसमें रंगीन पानी रखा है। बतलाने के बाद भी लाली तो प्रतीत होती रहती है पर अब लाली को सत्य नहीं समझ रहा है। ज्ञानी संसार प्रतीत होने पर भी मिथ्या समझ कर व्यवहार कर रहा है और अज्ञानी संसार को सत्य समझ कर व्यवहार कर रहा है। यही अन्तर है।

(दृष्टान्त के लिए उन्होंने सेठ व सटोरिये की कहानी सुनाई) एक सेठ के मकान में एक सटोरिया रहता था। उस सटोरिये को सट्टे में एक बार काफी धन मिल गया उससे उसने अपनी पत्नी के लिए बहुमूल्य आभूषण बनवा दिये। कपड़े भी अच्छे पहनती, सेठानी के पास वैसे गहने कपड़े नहीं थे। एक दिन उसने सेठ से कहा हमारे किरायेदार सटोरिये की पत्नी सुन्दर वस्त्राभूषण पहनती है मेरे पास वैसे न होने से मुझे लज्जा प्रतीत होती है। सेठ ने कहा कि वह उसके लिये भी बहुत सुन्दर आभूषण बनवा देगा। एक सुनार से बहुत सुन्दर डिजाइन का हार बनवा कर लाया व सेठानी को देकर कहा यह नौलखा हार है बहुत यत्न से रखना। उसका Design व चमक देखकर सेठानी बहुत प्रसन्न हुई तथा उसको कभी-कभी ही पहनती फिर सम्हाल के डिब्बे में रख देती। एक दिन वह स्नान करने गई डिब्बा बाहर भूल गई किसी ने उसको उठा लिया। सेठानी को जब डिब्बा नहीं मिला तो बहुत दुःख किया। उसके शोक की सीमा न रही। जब सेठ आए तो सब हाल उनको बताकर रोने लगी। सेठ ने सान्त्वना दी तथा कहा उससे अच्छा बनवा देंगे। सेठ मन मन में कह कर प्रसन्न हो रहे थे कि यह तो ८) ९) रु० का ही था अबकी १० रु० का बनवा देंगे। नकली चीज की चमक असली से भी अधिक होती है। (सेठ का रुपया व्यापार में लगा हुआ था इतना हाथ में नहीं था कि वह बहुमूल्य गहना बनवा सकता इसलिये बनावटी अच्छे सुनार से बनवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लाया था) सेठानी मिथ्या को सत्य समझ रही थी इसलिये रो रही थी और सेठ को यथार्थ ज्ञान था इसलिए हंस रहा था। (क्रमशः)

"मौत हार गई !"

ब्राह्मण का नाम आकाशज था, उसकी उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाश से हुई। उत्पन्न होकर भी वह सदा ही अपने चिदाकाश-स्वरूप में स्थित रहता था, किसी विषय के लिए उसके हृदय में वासना नहीं थी और न वह किसी कामना से प्रेरित होकर कोई कर्म करता था। इस प्रकार का जीवन बिताते हुए उसको बहुत समय बीत गया तो मौत को खयाल आया कि यह ब्राह्मण बहुत समय से जीवित है—अब इसको मारना चाहिये। मौत ने उनको मारने का बारम्बार प्रयत्न किया किन्तु वह असफल रही। मौत को आश्चर्य, खेद और क्रोध सभी कुछ हुआ परन्तु अपनी हार का कारण समझ में नहीं आया। फिर यमराज के पास पहुँचा। यमराज बोले— "हे मौत, तू तो निमित्तमात्र है। तू किसी को मार नहीं सकती, केवल प्राणियों के कर्म ही उनको मारते हैं। जिसने वासनात्मक कर्म किये वही तुम्हारा शिकार होता है। जाओ, आकाशज ब्राह्मण के कर्मों की तलाश करो।" खुफिया पुलिस की भाँति ब्राह्मण के साथ गुप्तरूप से रहकर मौत ने उनके जीवन का निरीक्षण किया किन्तु उसको आकाशज ब्राह्मण के जीवन में एक भी वासनात्मक कर्म नहीं मिला। उनकी स्थिति सदा ही आत्म भाव में रहती थी। उनके सारे काम स्वभाव-प्रेरित थे। उनमें वासना-कामना का नामगन्ध भी नहीं थी। संसार की किसी वस्तु और प्राणी को भी अपने से भिन्न और बाहर नहीं समझता था। उसको क्षणभंगुर देह और मन के साथ आत्मतत्त्व का अभिमान नहीं होता था। अब मौत की समझ में आ गया कि आकाशज का जीवन क्यों उसके काबू से बाहर है। यमराज के पास पहुँची और बोली—"आप ठीक कहते हैं। मैं किसी को नहीं मारती। प्राणियों के कर्म ही उनको मारते हैं।"

(योगवाशिष्ठ से)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देहसिद्धि

गताङ्क से आगे

महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज

कायसिद्धि के विषय में यह बात जानना आवश्यक है कि बिन्दु का अधःपतन किसी प्रकार भी न हो, बिन्दु का अधःपतन होने पर मृत्यु अवश्यम्भावी है। योगी लोग कहते हैं—"मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।" बिन्दु की ऊर्ध्वगति सम्पादन से कायसाधन सम्पन्न होता है। बिन्दु स्वभावतः मलयुक्त है अतएव वह अधोगति सम्पन्न है। उस अशुद्ध बिन्दु को बौद्ध तान्त्रिक जन "संवृतिबोधिचित्त" कहते हैं। अशुद्ध बिन्दु की भूमि प्रवेश में सामर्थ्य नहीं है, इसलिए उसके द्वारा भूमिभेद होना भी संभव नहीं है एवं उसके फलस्वरूप प्रज्ञा को भी शुद्धि नहीं हो सकती। इसलिए बुद्धत्व की प्राप्ति सुदूर पराहत है। इसीलिए सबसे पहले शोधनशक्ति और निरोधशक्ति के द्वारा बिन्दु की अधोगति को रोकना आवश्यक है। तदनन्तर कर्ममुद्रा के द्वारा ऊर्ध्वस्रोत के खुलने पर अमरता का मार्ग प्रशस्त होता है। यही बुद्धत्व का उदय होता है। निर्माण चक्र में बिन्दु को गति और स्थिति के कारण जिस काय का उदय होना है उसका नाम निर्माणकाय है। बिन्दु के ऊर्ध्वगमन के साथ-साथ आनन्द का भी तारतम्य होता है। अवधूति मार्ग का अवलम्बन कर बोधिचित्त जब धर्मचक्र तक उत्थित होता है तब पूर्वोक्त आनन्द परमानन्द के रूप में परिणत होता है। निर्माणचक्र में जो कर्ममुद्रा है, धर्मचक्र में वह धर्ममुद्रा है। इस अवस्था में बोधिचित्त योगी के शिर पर रहता है। इसके बाद उत्कर्ष की प्राप्ति होने पर संभोगचक्र में विरमानन्द की अनुभूति होती है—इस समय की मुद्रा का नाम महामुद्रा है। परमानन्द और विरमानन्द क्रमशः भव और निर्वाणरूप हैं। इस समय में समयमुद्रा कार्य करती है, किन्तु वह भी पूर्णत की प्राप्ति नहीं है। यहाँ पर क्लेशावरण और ज्ञेयावरण की निवृत्ति होती है एवं भव और निर्वाण एकाकार हो जाते हैं। इसके ऊपर महासुखचक्र में सहजानन्द की उपलब्धि होती है। तब अहंबोध का सर्वथा विलोप हो जाता है।

जिस प्रकार निर्माणचक्र में बुद्ध का निर्माणकाय आविर्भूत होता है उसी प्रकार धर्मचक्र में धर्मकाय, संभोगचक्र में संभोगकाय तथा महासुखचक्र में महासुखकाय प्रकटित होते हैं यह दिव्यदेह का प्रकटन है। इस स्थिति में दिव्यचक्षु,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिव्यश्रोत्र, सर्वज्ञत्व, विभुत्व आदि महागुणों का आविर्भाव होता है। सर्वान्त में सम्यक् संबुद्धरूप से बोधिचित्त की स्फूर्ति होती है।

आनन्द ही अमृत है, चन्द्रकला से उसका आविर्भाव होता है। अवधूति मार्ग से जब बोधिचित्त ऊर्ध्वगमन करता है तब भिन्न-भिन्न प्रकार के आनन्दों का उन्मेष होता है। षोडश कलात्मक चन्द्र की प्रथम पाँच कलाओं से धर्मचक्र में परमानन्द का आविर्भाव होता है, मध्य की पाँच कलाओं और अन्तिम पाँच कलाओं से अन्य दो प्रकार के आनन्दों का उद्भव होता है। अमृता नाम की षोडशीकला महासुखचक्र में सहजानन्दरूप से अनुभूत होती है। यह अमृत कला ही मानवदेह की अमरता का सम्पादन करती है।

सहज साधक वैष्णव जन भी काय साधन को साधना का उद्देश्य मानते हैं। वे कहते हैं कि देह में चार सरोवर हैं। काय साधना सिद्ध होनेपर ये सरोवर अभिव्यक्त होते हैं। सरोवरों में से दो सरोवर वामाङ्ग में और दो दक्षिणाङ्ग में हैं। ये प्रकृतिपुरुषरूप हैं। काम सरोवर और मान सरोवर वाम अङ्ग में हैं, प्रेम सरोवर तथा अक्षय सरोवर दक्षिण अङ्ग में वर्तमान हैं। सन्तवाणी से ज्ञात होता है कि मानसरोवर में स्नान करने के उपरान्त व्यापक मनोमय राज्यलाभ होता है, उसके बाद उसका अतिक्रमण कर महाशून्य का भेद करना चाहिए। अन्यथा चिदानन्दमय भगवद्धाम प्राप्त नहीं होता। अक्षय सरोवर ही भगवद्धाम है। महाप्रलय में समस्त जगत् का नाश होने पर भी एकमात्र अक्षय सरोवर ही विद्यमान रहता है।

मानव-देह में यह स्थान मस्तक में स्थित सहस्रदलकमल में रहता है। यह सहजपुर है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का भेद होने पर यह प्राप्त होता है। यहाँ काल नहीं है, जरा नहीं है और मृत्यु भी नहीं है।

सहज साधकजन कायसिद्धि के विषय में तीन भूमियाँ मानते हैं, प्रथम भूमि, द्वितीय साधक भूमि एवं तृतीय सिद्धभूमि। प्रथम भूमि में नाम साधना होती है। जब तक मन्त्रसिद्धि न हो तब तक प्रवर्तक अवस्था का अतिक्रमण नहीं हो सकता है। द्वितीय भूमि में भावसाधना और प्रेमसाधना होती है। भावदेह की प्राप्ति होने के बाद उसी देह में साधना चलती है। सिद्धावस्था में तृतीय भूमि में रसमय शरीर लाभ होता एवं भगवान् के नित्यलीलामण्डल में प्रवेश होता है।

मृत्यु-काल में जीव नवीन देह धारण कर जीर्ण शरीर का त्याग करता है, यही वस्तुस्थिति है। इसी तरह नूतन नूतन शरीर धारण करने पर देह की अवश्य ही शुद्धि हो जाती है, किन्तु चरम शुद्धि उससे भी नहीं होती। जैसे प्राकृतसत्त्व शुद्धि के प्रकर्ष से अप्राकृत सत्त्वरूप नहीं होता, क्योंकि पूर्वोक्त प्राकृत

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्त्व में रज और तम का सम्पर्क अवश्य ही रह जाता है, वैसे ही देह से देहान्तर लाभ होने पर भी उसमें अशुद्ध माया का लेश रह ही जाता है। शुद्ध माया का योग उसमें नहीं आता।

सिद्धसम्प्रदाय-मत में माया तीन प्रकार की है—अशुद्ध माया, शुद्ध माया तथा महामाया। शुद्ध माया यहाँ शैवागम प्रसिद्ध बिंदुतत्त्व और महामाया प्रायः चिच्छक्तिरूप है। अशुद्ध सत्त्व विकारस्वभाववाला है, किन्तु शुद्ध अविकारी है। इसलिए देह शुद्धि यदि भलीभाँति (सम्यक्) करनी हो तो अशुद्ध माया से उत्पन्न देह को शुद्धमाया कोटि में लाना आवश्यक है। जब इस प्रकार की शुद्धि होती है तब माया से उत्पन्न विकार समूह तिरोहित हो जाता है। किन्तु शुद्धमार्ग में अवस्थित मुक्त पुरुष के अनुग्रह के बिना शुद्ध देह की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। जब तक अशुद्ध प्राकृत देह शुद्ध माया-देह के रूप में परिणत नहीं होता तब तक मृत्यु और संसार की निवृत्ति नहीं होती है। कर्मों का अभाव हो जाने पर भी अशुद्ध देह के बीज तब भी रहते हैं इसलिए संसरण होगा ही। किन्तु वह संसरण स्वेच्छाधीन है। वह किसी भी कर्म के अधीन नहीं है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर, सूक्ष्म कर्म वहाँ भी वर्तमान रहते हैं। शुद्ध मार्ग में स्थित पुरुष की कृपा प्राप्त होने पर शुद्ध बीज की प्राप्ति होती है एवं अशुद्ध देह की शुद्धि भी हो जाती है। तब मृत्यु होती है। मुक्त पुरूष के अनुग्रह से अशुद्ध माया शुद्ध माया में परिणत होती है एवं तब देह की भी अमरता प्राप्ति हो जाती है।

यह शुद्ध देह अमृतकलामय 'प्रणवतनु' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रवणतनु-लाभ जीवन्मुक्ति है। इस प्रकार के जीवन्मुक्त पुरुष जीव होकर भी ईश्वरकल्प हैं। वे शुद्ध और अशुद्ध जगत् के सन्धिस्थल में रहते हैं। अशुद्ध जगत् के साथ उनका सम्बन्ध कुछ समय तक रहता है। परा मुक्ति उनके संनिकट है। जब उनकी परामुक्ति होती है तब वे चिन्मय ज्योति स्वरूप में स्थिति-लाभ करते हैं एवं देह रहती है ज्योति स्वरूप में। तब माया सम्बन्ध नहीं है, शुद्ध माया भी तब नहीं रहती है। जीवन्मुक्त की देह शुद्ध मायामय है; पर मुक्त की देह महामायामय है। परमुक्त पुरुष की देह ज्ञानमय है। वहाँ देह और आत्मा का सम्बन्ध विलुप्त हो जाता है। प्रणवदेहधारी जीवन्मुक्त पुरुष मुमुक्षु मायाग्रस्त जीवों का मायागर्भ से उद्धार करते हैं। शुद्ध वासना की निवृत्ति होने पर वे शुद्ध मायाराज्य का भी त्याग करते हैं। उन लोगों की देह अकस्मात् दिन के प्रकाश में ही तिरोहित हो जाती है। सिद्ध जन कहते हैं। देह में रहते ही जीवन्मुक्ति-लाभ करना चाहिये, मृत्यु के बाद नहीं। सिद्धमत में मनुष्य का एकमात्र कर्त्तव्य है—देहशुद्धि और चित्त शुद्धि।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दोनों के मिलने पर परमसत्त्व की अभिव्यक्ति होती है। रससिद्धि और नाथयोगियों का भी यही सिद्धान्त है।

पश्चिम देशों में भी कायसिद्धि के सम्बन्ध में अनुशीलन हुआ है। उन सब देशों की गुप्त संस्कृति और प्राचीन इतिहास की आलोचना करने पर इस विषय में बहुत कुछ ज्ञात हो जाता है। ईसाई सम्प्रदाय के प्रामाणिक तथ्य यहाँ पर उल्लेख-योग्य प्रतीत होते हैं।

बाइबिल के नव विधान (New Testament) के चतुर्थ खण्ड में अप्राकृत जन्म शब्द का उल्लेख दिखाई देता है। उससे प्रतीत होता है कि उस शब्द से दिव्य देह प्राप्ति की बात का ही उल्लेख हुआ है।

ज्ञान से ज्ञेय के भेद को हटाकर ज्ञान को ज्ञेय के आकार में परिणत करने की शक्ति ही महाज्ञान का लक्षण है। मनुष्य शरीर में अनादि काल से असंख्य शक्तियाँ प्रस्तुत रूप में वर्तमान हैं। उन शक्तियों को जागरित न कर सकने पर ज्ञान महाज्ञान में परिणत नहीं हो सकता। फलतः आत्मविकास भी नहीं होता एवं उसके अभाव में स्वरूप स्थिति भी नहीं हो सकती। शक्ति-जागरण का उपाय अन्तर्दृष्टि का उन्मीलन है। उन्मीलित शक्तियों के द्वारा ही मनुष्य जीवन की सार्थकता प्राप्त होती है एवं जरा, मरणादि विकारों से रहित एवं मल तथा पाप के लेश से विहीन दिव्य देह का उदय होता है।

यही द्विजत्व का सम्पादन करनेवाला द्वितीय जन्म (Regeneration अथवा Birth From Above) है।

हमारे देश में जैसे उपनयन संस्कार के प्रभाव से अथवा दीक्षा से शुद्ध देह का उदय होता है वैसे ही ईसाई सम्प्रदाय में भी दीक्षा के प्रभाव (Baptism) से शुद्ध देह की प्राप्ति होती है ऐसा (उनके) शास्त्रों में वर्णित है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि अन्तर्दृष्टि का उन्मीलन कैसे होता है? उसके उत्तर में कहा जाता है कि इस सम्प्रदाय के मत में पूर्ण सत्य अखण्ड एकरसस्वभाव है। वह महासाम्य रूप है। वह सब प्रकार के करणों का अगोचर है अतः वह निर्विकल्प स्वरूप वस्तु द्वैत भी नहीं है, अद्वैत भी नहीं है। इस मत में एक अचिन्त्य बाह्य सत्ता स्वीकृत है, उसका हम लोग विश्वसृष्टि के मूल एक आदि द्रव्य के रूप में वर्णन कर सकते हैं। सृष्टि के समय इस सत्ता में क्षोभ उत्पन्न होता है, जिसके कारण वह विभक्त होकर सूक्ष्म और स्थूल नाना असंख्य जड़ अंशों के रूप में परिणत होती है। पूर्ण सत्ता के बाहर क्रमशः नित्य और अनित्य मण्डलों का उदय होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उनमें नित्यमण्डल सत्य है किन्तु अनित्य मण्डल मिथ्या है। पूर्णत्व इन दोनों के अतीत की अवस्था है। नित्य मण्डल निर्विकार है, अनित्य मण्डल विकार-मय है। नित्यमण्डल में एकता का भान रहने पर भी बहुतों की समष्टि होने के कारण उसमें वास्तविक एकता नहीं है। समष्टिगत वैकल्पिक एकता उसमें अवश्य है। सांख्य सम्मत प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। किन्तु साम्यावस्था में उसमें जिस प्रकार की एकता रहती है उस प्रकार की एकता इस नित्यमण्डल में है। पूर्ण स्वरूप में जो एकता है वह साम्य रूप नहीं है अतः वह विलक्षण स्वभाव वाला है।

यह नित्यमण्डल श्री भगवान् का भावरूप अथवा आदि कल्पना रूप है। वह सृष्टि के समय भौतिक रूप से प्रकट होता है। किन्तु सृष्टि के उन्मेष के समय में वे दोनों मण्डल अव्यक्त अवस्था में रहते हैं।

चिद्रूप (Logos) में नित्यमण्डल का अधिष्ठान है। इसके साथ सृष्टि प्रकृति (Archeus) का क्या सम्बन्ध है? ईसाई योगियों के मत में यह चित् और अचित् सत्तासमकालीन और समभावापन्न कहा गया है। यह चित् मूल द्रव्य में आच्छन्न अवस्था में निहित है, एवं मूल द्रव्यरूप प्रकृति भी चित्स्वरूप की प्राणशक्ति है। सांख्य-मत में जैसे सत्त्व और पुरुष में कल्पित सम्बन्ध माना गया है वैसे ही यहाँ भी समझना चाहिये। चित् ज्योतिरूप में प्रतिभासित होती है। द्वैत शैव मत में जैसे बिन्दु के क्षोभ के कारण चिच्छक्ति की अभिव्यक्तिरूप ज्योति का प्रकाश माना गया है यहाँ भी अधिक अंशों में वैसा ही है। सम्पूर्ण सृष्टि, सब प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म देह इस ज्योति से ही आविर्भूत होते हैं। ईसाई योगियों की परिभाषा में यह ज्योति (Pneuma) कही जाती है।

यह ज्योतिरूपा मूल शक्ति समस्त जड़ वस्तुओं में निहित है एवं इसी के प्रभाव से भिन्न-भिन्न उपादान भिन्न-भिन्न कार्यरूप को प्राप्त होते हैं। नव विधान में Paraclete के नाम से जीवात्मशक्ति का उल्लेख किया गया है। वह इस मूल शक्ति का ही नामान्तर है।

यदि महाज्ञान का सम्पादन करना हो तो यही शक्ति कार्य करती है। इसका त्याग कर किसी निर्माण कार्य का संभव नहीं है। भारतीय योगियों के समाज के तुल्य ईसाई योगियों के समाज में भी पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता मानी गई है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ लक्षित होता है वह सब पिण्ड में भी दृष्टिगोचर होता है एवं जो पिण्ड में है वह ब्रह्माण्ड में है। बाह्य प्रपञ्च में कारण, सूक्ष्म और स्थूल इस प्रकार तीन भूमियाँ वर्तमान हैं। पूर्वोक्त अन्तमंडल (Logos) ही कारण भूमि है। वह ज्योतिर्मय है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मध्यभूमि मनोमय (Psychic) है; वह सूक्ष्म है। अन्तिम भूमि भौतिक-स्थूल है। वह सब प्रकार की इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य है। स्थूल और सूक्ष्म के मध्य में एक भूमि है वह किन्हीं के मत में स्थूल के अन्तर्गत और किन्हीं के मत में सूक्ष्म के अन्तर्गत है। वह भूमि कल्पनामय है। इसी प्रकार मानव की अन्तःसत्ता में भी तीन भूमियाँ वर्तमान हैं। वह कारणरूप सूक्ष्म रूप स्थूल रूप हैं एवं कारण आदि तीन देहों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कारण देह (Pneumatic Body) ज्योतिर्मय है, कहीं-कहीं वह आत्म-रूप देह (Spiritual Body) के नाम से भी कही जाती है। अन्तर्दृष्टि के द्वारा देखे जाने पर वह अण्डाकार प्रभामण्डल के रूप में प्रतिभासित होती है एवं उसमें पूर्व वर्णित ज्योति (Paraclete Logos) सुप्तवत् निहित रहती है। उसका उद्दीपन होने पर वह मनुष्य के अध्यात्म जीवन को निर्मल कर सकती है। जागरण के समय वह तीव्र प्राणशक्ति के रूप में बिजली की प्रभा के सदृश सर्प के तुल्य गति से सरकती है। यह शक्ति अपरिमित है। भारतीय योगशास्त्र में इसे कुण्डलिनी कहते हैं। प्राचीन काल के मुसलिम शास्त्र में भी यह शक्ति कुण्डलाकार सर्प के तुल्य होने के कारण यह Speirema के नाम से अभिहित की जाती थी। जब इस शक्ति का कुण्डल टूटता है तब यह वैद्युती शक्ति कारण देह के अन्दर स्थित सत्त्व का ग्रहण कर ज्योतिर्मय देह की रचना करती है। इस देह का निर्माण कौशल ही दीक्षा के नाम से प्रसिद्ध है। चिदुज्ज्वल इस देह को रहस्यवेत्ता लोग Augoeides शब्द से अभिहित करते हैं। अजर और अमर इस देह का सौर देह के नाम से भी वर्णन किया जाता है। इस देह में अचिन्त्य वैशिष्ट्य विद्यमान है। इसका आकार पूर्वोक्त विद्युत ज्योति में निमग्न रहता है। योग साधना के बल से एवं भगवान् के अनुग्रह से यह दिव्य मृत्युहीन देह मूल आकार का अनुसरण कर क्रमशः अभिव्यक्त होती है। यह स्वयंप्रकाश देह सुवर्ण ज्योति से मण्डित है ऐसा प्रतीत होता है। उपनिषदों में वर्णित हिरण्मय ज्योति का यह घनीभूत रूप है। इसमें अवयवों का संघात नहीं है, इसलिए यह अखण्ड है। अवयव न होने के कारण इसे विभक्त नहीं किया जा सकता, इसीलिए यह अविनाशी, अपरिणामी, अजर और अमर है। स्वयंप्रकाश होने से इसके प्रकाश के लिए बाह्य प्रकाश की अपेक्षा नहीं होती है, अन्तःकरण की किंवा करण शक्ति की भी अपेक्षा नहीं होती।

सूक्ष्म मनोमय देह चान्द्रदेह के नाम से परिचित है। मन की चन्द्रात्मकता हमारे देश में सर्वप्रसिद्ध है। सौर देह और चान्द्र देह दोनों ही ज्योतिर्मय हैं। इस दृष्टि से दोनों समान होते हुए भी दोनों में भेद विद्यमान है। सौर देह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निरवयव, अखण्ड है। चान्द्रदेह सावयव है। सावयव होने से वह विनाशधर्मी है। सौर देह अविनश्वर है।

स्थूल देह भौतिक है यह बात सभी जानते हैं, इसलिए इस विषय में विचार करना निरर्थक है। सूक्ष्म देह की छाया रूप एक और देह है, मरने के बाद कोई-कोई जीव उसे ग्रहण करते हैं, मरने के पूर्व भी उसका ग्रहण हो सकता है। वह प्रायः ही मनुष्य के लिए हानिकर है, इसलिए उसके विषय में विचार करना निरर्थक है। उस छायामय देह से अपनी रक्षा करना आवश्यक है। अन्यथा धार्मिक जीवन में उन्नति होना कठिन है।

योगशास्त्र में ज्ञानचक्षु को तृतीय नेत्र कहा गया है। पूर्वोक्त संजीवनी शक्ति के प्रभाव से नेत्र की सूक्ष्म क्रिया उन्मिषित होती है। आत्मा की इच्छा शक्ति द्वारा ही कुण्डलिनी का जागरण संभव है। वह कुण्डलिनी जाग्रत होकर नाड़ियों के असंख्य आवरणों को हटाती है एवं देह को भी विमल करती है। यही आत्म-शुद्धि का उपाय है। शुद्धि के क्रमिक उत्कर्ष से शक्ति के केन्द्र में स्थित चक्र अपने आयत्त हो जाते हैं। आत्मा की शक्ति के विकास का यही क्रम है।

दिव्य देह लाभ कर दिव्य जीवन लाभ के लिए ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान आवश्यक है एवं साथ ही साथ विचार शुद्धि और बोध शक्ति का परिशीलन करना चाहिये। पवित्र जीवन, चिन्ता रहित होना एवं एकाग्रता दिव्य भाव के सहायक हैं। एकाग्रता-लाभ से चित्त अन्तर्मुख होता है एवं सूक्ष्म ध्यान में प्रवणता आती है। इससे चिच्छक्ति का विकास होता है एवं इच्छा होते ही समाधि प्राप्त होती है। यह समाधि प्रचलित जड़ समाधि से विलक्षण होती है। उसमें चेतना लुप्त नहीं होती है, स्वनियन्त्रण शक्ति रहती है। प्राचीन ईसाई योगियों के मत में इसका नाम Mantea है। यह आन्तर योगमार्ग विशुद्ध मन की भावना के बल से उन्नतिशील होता है। किन्तु कुण्डलिनी का जागरण एवं प्राणकेन्द्र का जय हुए बिना उक्त भावना कार्यकारिणी नहीं होती है। विशुद्ध तत्त्वज्ञान के लिए गुप्त शक्तियाँ प्राप्त करने का यही उपाय है, दूसरा मार्ग नहीं है।

(आगामी अङ्क में समाप्य)

कबीर सोया क्या करे जागके जपो मुरार।
एक दिना है सोवना, लम्बे पाँव पसार॥
कबीर सोया क्या करे जागन की करु चौंप।
ये दम हीरा लाल है गिनगिन गुरु को सौंप॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कैलास-मानसरोवर-प्रदक्षिणा

(श्री "दत्त")

"Next day when for the first time the mighty KAILAS is displayed to us in its full magnificance Paldin, my companion, knees and touches the ground with his forhead......"

(By Dr. Anrold Heim & August Gansser.)

आज १६ जून और शुक्रवार था। यात्री लोग आज अपेक्षाकृत शीघ्र उठ गये थे। यद्यपि आज का पड़ाव केवल दस मील का ही था तथापि यात्रा कठिन थी क्योंकि नौ मील की तो कठिन चढ़ाई ही थी जो यात्रियों को लोहे के चने चबवा कर कचूमर ही निकालने वाली थी। सब भगवान् की कृपा पर अत्यधिक निर्भर थे। संत तुलसीदास ने रामायण में ठीक ही कहा है, "मूक होहिं वाचाल पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन"।

प्रस्थान से पूर्व सभी ने भरपेट चायपान, नास्ता इत्यादि कर लिया और कुछ कुछ अपने थर्मस एवं थैलों में भी भर लिया ताकि दुर्गम पथ पर आवश्यकता पड़ने पर उपयोग में लिया जा सके। ऐसी कठिन चढ़ाई के समय सूखामेवा, चाकलेट, पिपरमिन्ट, नींबू इत्यादि बहुत ही सहायक सिद्ध होते हैं। मजदूर लोगों के आ उपस्थित होने पर सबने जल्दी-जल्दी सब सामान बाँधकर तैयार कर लिया। मजदूर लोगों ने अपना-अपना सामान पहचान कर उसे अपनी-अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। उनके प्रस्थान के पूर्व सरदार गरत सिंह ने उन्हें आवश्यक सूचना देते हुए कहा कि आज की कठिन चढ़ाई के दरम्यान मजदूर लोग सेठ लोगों के साथ-साथ रहें और आवश्यकता होने पर उन्हें सहाय भी करते रहें जिससे यात्रियों का मनोबल ऊंचा रह सके। मजदूरों ने उनकी बात से सहर्ष सम्मति प्रदर्शित करते हुए वहाँ से आगे के लिए कूच किया। अब तो यात्रियों ने भी भगवान् श्री कैलासपति के शुभनाम का गगनभेदी जयघोष करते हुए मजदूरों का अनुसरण किया। करीब एक सौ गज की दूरी तय करने पर मार्ग में एक काष्ठ निर्मित पुल आया जिसके नीचे के पहाड़ों के संकीर्ण मार्ग से भयंकर गर्जन-तर्जन करती हुई और चारों ओर ऐसे तो पानी के सफेद फेन उछालती हुई क्रुद्ध धौलीगंगा बह रही थी मानो कि वह आज ही पहाड़ों को चकनाचूर कर उन्मुक्त रूप से बहना चाहती हो। संकीर्णता में आबद्ध-परतंत्रता की जंजीरों से जकड़ा हुआ कोई भी स्वतंत्र होने के लिए विद्रोह करता रहता है क्योंकि स्वतंत्रता सबको प्यारी है। हम लोगों ने पुल के द्वारा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नदी को पार कर और वहाँ के एक सुरक्षित स्थान पर खड़े होकर धौली गंगा के इस अद्भुत खेल के रूप में विश्वस्रष्टा की अपरिमित शक्ति का कुछ अंशों में दर्शन किया।[1] यहाँ से हमारा मार्ग धौली गंगा के वाम भाग से गुजरता हुआ चढ़ाई का आता है। धौली गंगा से चौंदासपट्टी आरम्भ होती है जो विंदाकोट[2] तक की है।

यहाँ से थानीधार की ३ मील की अत्यन्त कठिन चढ़ाई शुरू होती है। कई लोग इसे "पंगु की चढ़ाई" कहते हैं क्योंकि इसे तय करने के बाद और एक डेढ़ मील की कुछ कम कठिन चढ़ाई पार करने से "पंगु" नामक एक छोटा-सा पहाड़ी गाँव आता है। तवाघाट समुद्र सतह से ३६०० फुट ऊपर में है जबकि थानीधार (पंगु) प्रायः ८५०० फुट की ऊँचाई का है। अतः आज हमें ५००० फुट की ऊँचाई तय करनी है। अब तो हमें कैलास धाम में पहुँचने के लिए सीढ़ी के बड़े-बड़े सोपान चढ़ने पड़ेंगे। इस सीढ़ी के केवल तीन सोपान हैं। प्रथम सोपान को हम "उपगिरि" कहेंगे जिसमें दो हजार से लेकर तीन हजार फुट तक की ऊँचाई वाले पर्वत हैं। द्वितीय सोपान को "बहिर्गिरि" कहेंगे जिसमें छः हजार से लेकर दस हजार फुट तक की ऊँचाई के पर्वत हैं जब कि तृतीय सोपान को अन्तर्गिरि कहेंगे जिसमें दस हजार के अधिक की ऊँचाई के पहाड़ आये हुए हैं। अतः कैलास धाम जाने की सीढ़ी के द्वितीय सोपान पर पदार्पण करने से पूर्व हमने भगवान् की कृपा के लिए प्रार्थना की।

"मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा त्वमहं वंदे परमानन्दमाधवम्॥

प्रार्थना के पश्चात् माता पृथिवी को भावभक्ति से स्पर्श करते हुए यात्रा की सफलता की कामना की और वहाँ से चल पड़े।

यात्रा काल में मैं अधिकांश मौन धारण करता आया था। अतः यहाँ से भी पूर्ववत् मौनव्रत शुरू कर दिया और श्वास-श्वास को पैर-पैर के साथ तालबद्ध करते

१. ऐसे स्थानों से गुजरती हुई नदियों की शक्ति को यदि आधुनिक यंत्रादि उपकरणों द्वारा विद्युत्शक्ति में परिणत किया जाय तो चारों ओर का पार्वत प्रदेश नवयुग में पदार्पण कर सके।

२. जिस प्रकार से धौलीगंगा से विंदाकोट तक की चौदांस (चतुर्दष्ट) पट्टी है वैसे ही विंदाकोट से भारत की सीमा तक की ब्यास (व्यासाश्रम) पट्टी (१) अल्मोड़ा जिले में सोवला (खेला से १२ मील आगे) से भारत की सीमा तक की दरमापट्टी (२) नेपाल सीमा के छंगुरू, टिंकर गाँव से तेजम के ऊपर भारत की सीमा तक का जोहार परगना (३), गढ़वाल जिले में भविष्य बदरी से भारत की सीमा तक का प्रदेश नीती (४) टीहरी जिले के सीमांत का नीलमगांव (५) ये सब मिलकर भोट या भोटप्रदेश नाम से प्रसिद्ध है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हुए एवं मानसिक मन्त्र जप करते हुए चढ़ाई चढ़ने लगा। हिमालय के पहाड़-पर्वतों की यात्रा के अनुभव से मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस प्रकार से चलने पर न केवल द्रुतगति आती है अपितु क्लांति भी कम प्रतीत होती है एवं मन प्रफुल्लित रहता है। करीब एक आध मील चलने के उपरान्त मार्ग के वाम पार्श्व में एक छोटी चाय की दुकान आई। चाय-पान के अभ्यस्त लोगों के लिए तो ऐसी कठिन चढ़ाई में चाय की दुकान आना मानो रेगिस्तान में जलाशय मिलना है। उस समय इन लोगों के पैर विद्रोह करने लगते हैं जिसकी सूचना जम्हाइयों से मिलती है। ऐसे अवसर पर ही उन लोगों की आदतों की परीक्षा होती है। कोई विरल व्यक्ति ही इस कसौटी में से खरे उतरते हैं।

यहाँ से आगे की चढ़ाई का मार्ग बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा एवं सर्पाकार-सा ऊपर की ओर ऐसे तो जा रहा था मानो वह हमें आकाश में चढ़ा देना चाहता हो। पहाड़ों में ऐसे सर्पाकार मार्गों के निर्माण का हेतु यही है कि यात्रियों की यात्रा में यद्यपि चलना तो अधिक पड़ता है किन्तु थकान अधिक नहीं मालूम पड़ती। एक कवि ने ठीक ही कहा है—"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" अर्थात् गाड़ी के पहिये के आरे की भाँति "उतरो-चढ़ो, चढ़ो और उतरो" इस प्रकार की पहाड़ी यात्रा होती है।[१] जब मैं उक्त सर्पाकार मार्ग पर जा रहा था तब मार्ग के समीप से एक छोटी-सी पगडंडी सीधी ऊपर जाती हुई दिखाई पड़ी। इस पगडंडी पर भेड़-बकरियों के पैरों के खुर की छाप भी थी जिनको देखकर मुझे समझने में देर न लगी कि यह मार्ग पहाड़ी चरवाहों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। ऐसा चढ़ाई का

१. अब योरोप के स्वीडेन देश में पंगु आदमी को भी गहन गिरिवर चढ़ जाना आसान कर देनेवाली एक ऐसी पहियेवाली कुर्सी बनाई गई है जो चार विद्युत बैटरियों द्वारा चलती है। इस "पैरमोबिल" नामक विद्युत कुर्सी में बैठनेवाला लँगड़ा-लूला आदमी ऊबड़-खावड़ पहाड़ियों और टीलों को आसानी से पार कर सकता है। इस नयी कुर्सी का आविष्कार उत्तर स्वीडेन के तिमरा स्थित डा० पेरउद्देन ने किया है। डा० पेरउद्देन का कहना है कि यह पहियेदार कुर्सी ढलान पर या चढ़ाई पर आसानी से दौड़ सकती है और उसके उलटने का कोई खतरा नहीं होता। इसके पहिये आधे चक्कर में घूम सकते हैं अतः कुर्सी को किसी भी दिशा में बहुत आसानी से मोड़ा जा सकता है, मार्ग में आनेवाली छः इञ्ची किसी वस्तु पर चढ़कर वह कुर्सी उसके पार निकल जाती है। डा० पेरउद्देन अब यह प्रयास कर रहे हैं कि इस कुर्सी में बैठकर सीढ़ियाँ चढ़ जाना भी सम्भव हो सके। इस पहियेदार कुर्सी की एक और विशेषता यह है कि काफी ढलान पर भी चाहे तो उसे एकदम रोका जा सकता है, इतने उसके ब्रेक मजबूत हैं। उसका आकार भी ऐसा सटा हुआ है कि आम चौड़ाई की किसी भी किवाड़ से यह आसानी से गुजर सकती है। ऐसी कुर्सी का दाम स्वीडेन में २० हजार क्रोनर होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मार्ग यात्री लोग पसन्द नहीं करते हैं। क्योंकि वे खतरा मोल कर चढ़ाई को कम समय में तय करने की अपेक्षा स्वस्थ-सानन्द से धीमे-धीमे चढ़ाई पार करना अधिक लाभप्रद समझते हैं। एक सन्त की वाणी इस विषय में उपयुक्त ही है—"शनैः पर्वतलंघनम् ।।" मैंने हिमालय की यात्राओं में ऐसी पगडंडी पर किस प्रकार से चलना चाहिये इत्यादि के विषय में अनुभवी गड़रियों से शिक्षा प्राप्त की थी और नैपाल, कश्मीर इत्यादि की कठिनतम यात्राओं में उक्त शिक्षा का कई बार प्रयोग भी किया था जिसमें सफल होता आया। अतः मैंने यहाँ पर सर्पाकार मार्ग को छोड़कर पगडंडी का ही आश्रय ग्रहण किया और चढ़ाई करने लगा। किसी-किसी स्थान पर पत्थरों को पकड़ते हुए ऊपर चढ़ते तो कुछ स्थानों में भेड़-बकरी की भाँति हाथ-पैर से चलते हुए आगे बढ़ना पड़ता था। इस प्रकार से कुछ समय तक आगे बढ़ने के पश्चात् जब मैंने एक स्थान पर थोड़ा रुक कर पीछे मुड़कर देखा तो मैं अवाक् रह गया। चारों ओर का दृश्य अद्भुत था। नीचे के पहाड़ के चरण-कमलों को प्रक्षालन करती-सी धौलीगंगा अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही थी। आकाश में कुछ श्वेत बादल धौलीगंगा की पहाड़ के प्रति "पादसेवनम्" भक्ति की ओर ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हुए एवं उसके विषय में मानों कि उपेक्षा की दृष्टि से द्रुतगति से आगे जा रहे थे किन्तु इसकी धौली-गंगा को किञ्चित्मात्र भी परवाह न थी क्योंकि वह तो उन्मुक्त-सी अपना अनन्तकाल से शुरू, अस्पष्ट एवं भयंकर होते हुए भी अद्भुत सा गान में मस्त थी। स्यात् वह मन-ही-मन कहती होगी कि हे आकाशगामी अभिमानी बादल! याद रख कि तुझे भी एक दिन मेरे जल के रूप से इसी संकीर्ण मार्ग से गुजरना होगा।

चढ़ाई वाला सर्पाकार मार्ग जो ऊपर की ओर आ रहा था वह भी बड़ा ही सुन्दर दिखाई पड़ रहा था। ऊपर की ओर आ रहे यात्री लोग मानो कि श्वेत गऊओं के सदृश लग रहे थे। मार्ग के एक मोड़ पर से गुंजरती हुई भेड़-बकरियों की पंक्ति तो ऐसी मालूम पड़ रही थी मानो छोटी-सी चीटियों की पंक्तिबद्ध सेना पहाड़ से नीचे उतर रही हो। इस कठिन चढ़ाई में यात्री-गाड़ी के सभी डब्बे अलग-अलग हो गये थे। कोई धीमे-धीमे चढ़ाई चढ़ रहे थे तो कोई मार्ग में विश्राम के लिए बैठ गये थे। कुछ लोग तो बहुत ही पीछे छूट गये थे।[१]

१. योरोप में डेन्यूब नदी पर अवस्थित रोगेनबर्ग नामक नगर का एक २५ वर्षीय "लकी हाफ मेयर" नामक नौजवान होटलवाला ने हाथ के बल पर दूर-दूर तक की यात्रा करना प्रारम्भ कर दिया है। ऐसे तो उसने ई० सं० १९६४ में रोगेनबर्ग से म्युनिक तक की १३२ किलोमीटर तक की दूरी हाथ के बल चलकर पूरी कर दी। अब वह अपने नगर रोगेन-बर्ग से रोम तक जायेगा। उसे आशा है कि वह १०७० किलोमीटर की यह दूरी आठ सप्ताह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दूरवीक्षण यंत्र (Binocular) से देखने पर पता चला कि मार्ग के एक मोड़ के समीप से दामू भाई गुजर रहे थे और उनके पीछे-पीछे खाखी बाबाजी चढ़ाई चढ़ रहे थे। उनसे भी कई गज पीछे दो-तीन यात्री थे जो धीमे-धीमे आगे बढ़ रहे थे। अब मैंने यंत्र को जेब में रखकर पुनः आगे के लिए प्रस्थान किया। इस स्थान पर पहुँच कर देखा कि पगडंडी वहाँ पर समाप्त हो गई थी। यहाँ से कुछ दूरी पर बकरियों की मेंगनी ऊपर की ओर पड़ी हुई थी जिसे देखकर मैं उस ओर चल दिया। कुछ आगे जाकर देखा कि वहाँ से पहाड़ का कुछ अंश पीछे की ओर धंस गया था जिससे पगडंडी का नामोनिशान समाप्त हो गया था। यहाँ से आगे जाने के अतिरिक्त मेरे लिए और कोई विकल्प नहीं था। अतः मैं नोकदार लकड़ी को जमीन में अच्छी तरह से जमाता हुआ एक हाथ से उस पर सावधानीपूर्वक शरीर का कुछ बोझ रखता और दूसरे हाथ से भूमि के अन्दर के नोकदार पत्थरों को पकड़ता हुआ कुछ समय में ऊपर के एक ऐसे स्थान पर आ पहुँचा जहाँ पर पगडंडी बड़े सर्पाकार मार्ग से आ मिलती थी। यहाँ से अब मैं बड़े मार्ग पर आगे बढ़ने लगा। मार्ग के किनारे पर कई स्थानों पर यात्रियों के विश्राम हेतु

के अन्दर पूरी कर लेगा। हाफ मेयर का मैनेजर भी एक ट्रेलर सहित उसके साथ रहेगा और ट्रक भर मोटे दस्ताने उसकी रक्षा हेतु पास में रखेगा। लकी हाफ मेयर प्रतिदिन १२ घंटे के हिसाब से हाथ के बल चलेगा इसलिए वह प्रतिदिन ३० किलोमीटर दूरी तय करेगा। जब वह ट्रेन से टेयर्न टनल पास करेगा तब भी वह अपने हाथों के बल पर ही खड़ा रहेगा।

भारत में भी ऐसे कई साहसी वीर हैं जो कमाल कर दिखाते हैं। मैं जब ई० सन् १९५७ में बद्रीनाथ में था तब वहाँ के यात्रियों में एक दिन बड़ा होहल्ला मच गया। पूछताछ करने पर पता चला कि बच्चा-बाबा नामक एक नवयुवक साधू बिहार से साष्टांग दंडवत् प्रणाम करता हुआ कई मास के बाद आज बद्रीनाथ धाम में आ पहुँचा है और इस प्रकार से साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते हुए ही बद्रीक्षेत्र में जाकर भगवान् श्री बद्री-विशाल के दर्शन करने का अपना महान् संकल्प पूरा कर दिया है। यह सुनकर मैं भी उस साधू को देखने गया था। उसे देखकर मैं अवाक् रह गया। उसका पतला देह था और पैरों में लोहे के कितने ही भारी कड़े जंजीर इत्यादि थीं। उसका हिमालय-सा दृढ़ संकल्प जिसे उसने आज सिद्ध कर बताया है, अद्भुत था।

एक सौ वर्ष पूर्व भारत में स्वामी प्रेमपुरी नामक एक हठयोगी महात्मा थे जो काशी के निवासी थे। वे मौन रहते थे। वस्त्रों में केवल कोपीन पहनते थे और दोनों हाथ ऊँचे रखते थे। उन्होंने दोनों हाथ ऊँचे रखते हुए सम्पूर्ण विश्व की पैदल यात्रा की थी। जब वे रूस देश में थे तब वहाँ पर कोई स्त्री राज्य चलाती थी। कहते हैं कि लार्ड कर्जन उनको अपना गुरु मानते थे।

वर्तमान समय में भी कई भारतीय नौजवान विद्यमान हैं जिन्होंने विश्व का पैदल भ्रमण किया हुआ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बड़े बड़े पत्थर व्यवस्थित ढंगसे रक्खे गये थे। ऐसे विश्राम स्थान विशेषकर मजदूरों को बहुत ही सहायक होते हैं। मार्ग में कुछ-कुछ स्थान पर वृक्ष भी थे जिनके नीचे बैठकर आने-जानेवाले लोग कुछ समय तक विश्राम कर सकें। यदि इस मार्ग को सरकार और भी अच्छा बनवा देती तो आने-जानेवाले लोगों को उतना कष्ट नहीं झेलना पड़ता।[१]

पहले के सर्पाकार मार्ग पर आगे बढ़ता हुआ मैं करीब आधा घण्टे के बाद एक ऐसे बड़े वृक्ष के समीप में आ पहुंचा जिस पर कितने ही प्रकार के रंग-बिरंगे चिथड़े फहरा रहे थे। उसे देखते ही मैं समझ गया कि अब चढ़ाई समाप्त हो गई। हिमालय में पहाड़ों में–विशेषतः जहाँ से तिब्बत जाने का मार्ग है—जहाँ पर कड़ी चढ़ाई समाप्त होती है वहाँ या तो वृक्ष के ऊपर या भूमि में लकड़ी गाड़कर उस पर प्रवेश द्वार की तरह रस्सी बांधते हैं जिस पर आने-जानेवाले लोग अपनी-अपनी भाव-भक्ति प्रगट करते हुए इस प्रकार के रंग-बिरंगे चिथड़े बांधते हैं, और विश्वास करते हैं कि भगवान की कृपा से ही वे आज यह कठिन चढ़ाई तय करने में समर्थ हुए हैं। धन्य है लोगों की इस प्रकार की भावभक्ति को।

इसी वृक्ष के समीप, मार्ग के दक्षिण भाग पर, एक-दो मकान हैं जिनमें एक तो चाय की दुकान है जब कि दूसरा धर्मशाला के रूप में यात्रियों द्वारा प्रयुक्त होता है। यहां पहुंचकर मैंने अपनी घड़ी में देखा तो ७ बजकर १० मिनट हुआ था। यह स्थान सुन्दर और नीरव था। हवा आह्लादक थी। सूर्य के स्वर्ण-किरण अभी तक मृदु थे जो उत्साह एवम् प्रेरणा शक्ति देकर आनन्द में अभिवृद्धि करते थे, बायीं ओर नैपाल सीमा के पहाड़ों की शोभा भी निखर उठी थी। सामने के दूर के पहाड़ पर पक्षी के घोंसले जैसा खेला गांव और वहां से तवाघाट की ओर

१. ई० स० १९६२ के भारत पर अवैध रूप से चीनी आक्रमण के पश्चात् धारचूला से गरब्यांग का जो नया मार्ग का निर्माण हुआ है उसमें पंगु की चढ़ाई इत्यादि नहीं आता। वह तो कालीगंगा के तीरे-तीरे ही गुजरता हुआ आगे गया है।

पहाड़ों में सुरंग खोदने एवम् मार्ग बनाने के लिए वर्तमान समय के विज्ञान ने कई अद्भुत आविष्कार किये हैं जिनमें से पश्चिम जर्मनी की एक फर्म की T.V.M. 29-23 H नामक एक ऐसी विशाल इस्पाती मशीन है जो १०० टन वाले पत्थरों को भी तोड़ने की क्षमता रखती है। इस मशीन के प्रयोग से भूमिगत तथा उप-स्तरीय सड़कों के निर्माण के समय में आधे समय की बचत हो जाती है। ड्राइवर को बोर-मशीन को भी चलाना पड़ता है जिसका नियंत्रण स्वचालित है, एक रंगीन लेसर किरण से सुरंग की धुरी का पता चलता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नीचे उतरता हुआ एक सर्पाकार मार्ग और दूसरा मार्ग जो खेला से सीधा बाम भाग की ओर आगे बढ़ता हुआ दार, नागलिंग होकर दरमा और चाकरामंडी की ओर का कैलास मानसरोवर की यात्रा का मार्ग इत्यादि चित्ताकर्षक प्रतीत हो रहे थे। यद्यपि आकाश-मार्ग से तो खेला से पंगु की चढ़ाई का शिखर एक-दो मील की दूरी पर था तथापि हमें भूमि का आश्रय ग्रहण करते हुए वहाँ से यहाँ पहुँचने में कई घंटे लग चुके थे यह देख मुझे आकाश में आनन्द से उड़ रहे बड़े-बड़े पक्षियों की ईर्ष्या हो रही थी। सोचा कि प्रभु ने यदि मानव को पंख भी दे दी होती तो कितना अच्छा होता[१]।

यहाँ पर कुछ समय तक विश्राम करने के पश्चात् आगे जाने के लिए उठा। करीब पच्चीस डग आगे बढ़ाये होंगे कि उतने में मार्ग के बायीं ओर नये बने हुए टोंटीयुक्त जलाशय पर दृष्टि पड़ी। समीप जाकर टोंटी खोलकर देखा तो जलाशय में संचित जल स्वच्छ एवम् कम शीत था अतः यहाँ पर ही आज के स्नान-ध्यानादि नित्यकर्म से निवृत्त होने का निश्चय कर लिया। होटलवाले श्री घानसिंह ने बालटी ला दी जिससे मैंने बहुत सुखपूर्वक स्नान किया और समीप की स्वच्छ शिला पर बैठकर जप-ध्यानादि भी किये। पंगु की चढ़ाई ने जठराग्नि अच्छे प्रमाण में प्रदीप्त कर दी थी जिसको अब बिना आहुति दिये यहाँ से आगे बढ़ना मेरे लिए कष्टप्रद था। अतः थैले में से थोड़ा सूखा मेवा निकाल कर पेट-पूजा की। अब चारों

१. बफैलो, (न्यूयार्क) की "बेल एयरो सिस्टम" कम्पनी ने हाल ही में स्काई टैक्सी नामक आकाश में उड़नेवाली गाड़ी का निर्माण किया है जिसमें दो व्यक्ति बैठ सकते हैं। कहते हैं कि यह टैक्सी पृथिवी और चन्द्रमा दोनों पर ही उड़ान सम्बन्धी विविध क्रियायें सम्पन्न कर सकती है। इससे पूर्व बेल कम्पनी ने एक मनुष्य की सवारी के लिये गगनगामी "पोगो" नामक यन्त्र बनाया था। स्काई टैक्सी में अन्तर केवल यह है कि इसकी शक्ति पोगो से दूनी है और चालक के अलावा एक अन्य यात्री के खड़े होने के लिये भी स्थान है। इसे चलाना, घुमाना-फिराना, स्थिर उड़नयन्त्र के रूप में प्रयुक्त करना सम्भव है। इसकी लम्बाई शिर से पूंछ तक साढ़े पैंतालीस इंच है, चौड़ाई साढ़े बाईस इंच है और ऊँचाई लगभग ५ फुट है जब कि वजन १४७ पौंड है। इसके अन्वेषक का दावा है कि इस यन्त्र का जहाँ कोई अन्य वाहन नहीं पहुँच सकता, उन स्थानों पर लोगों को बचाने के लिए प्रयोग हो सकता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई यात्री या पर्वतारोही मार्ग भूलकर भटक जाय, तो दो मनुष्य वाला पोगो (स्काई टैक्सी) उड़कर उसके पास पहुँच सकता है। उसमें यह भी क्षमता है कि वह चन्द्रमा पर के ज्वालामुखियों के भीतर जा सकता है और उनसे बाहर आ सकता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ओर के पहाड़ों का सौन्दर्य प्रथम से भी अधिक निखर उठा हो ऐसा मालूम पड़ने लगा। किसी ने ठीक ही कहा है—

"पेट भरा तो सब जगह हरा-भरा"।[१]

(क्रमशः)

---

१. भारतीय धर्मग्रन्थों में एवम् आयुर्वेद में उपवास का बड़ा ही महत्त्व बताया है। कहते हैं कि रोमन सम्राट् वेस्पासियन सुस्वास्थ्य के लिये महीने में एक दिन उपवास करता था और अन्य को भी ऐसा करने के लिये प्रेरित करता था। रूस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक मिस्टर ब्लादिमीर निकितिन ने चूहों पर किये गये अपने दीर्घकालीन अनुसन्धान से यह निष्कर्ष निकाला है कि सावधानी से नियंत्रित उपवास द्वारा उम्र बढ़ती है और फिर से जवान होना सम्भव है। उनका कहना है कि देह के भीतर में हार्मोन के दो किस्मों के बीच संतुलन बिगड़ जाने पर उसे ठीक करने में उपवास सहायक सिद्ध होते हैं। चूहों की अधिकाधिक आयु अढ़ाई वर्ष की होती है परन्तु प्रोफेसर निकितिन उनकी आयु को साढ़े चार वर्ष तक लाने में सफल रहे हैं। उन्होंने चूहों को समय-समय पर भूखा रखने के बाद यह सफलता प्राप्त की। इस समय रूस के कुछ चिकित्सालयों में उपवास की विधि को कई रोगों के उपचार के लिये प्रयुक्त किया जा रहा है। इसमें मानसिक से लेकर स्वास्थ्य सम्बन्धी कई रोग आते हैं। यदि रसियन लोग भारतीय योग साधना में रुचि लें तो स्वास्थ्य के एवम् उदरादि के कई रोगों को आसानी से निवारण करने में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ ॐ माँ ॥

मातृ सत्संग

(48)

(श्री स्वामी भागवतानन्द गिरि)

ता० २५ जनवरी १९४८ पौष शुक्ल १४,२००४ प्रयाग—त्रिवेणी तट—अर्धकुम्भ मेला :—

मैं और मातृ भक्त लोग विन्ध्याचल से सुबह की गाड़ी से प्रयाग आ गये हैं। माँ विन्ध्याचल से शाम को मोटर से आयेंगी। माँ की अनुपस्थिति से सत्संग नहीं हुआ। लेकिन बहुत आतुर मातृ भक्त लोग माँ के दर्शन के लिये आये हैं लेकिन माँ को नहीं पाकर निराश होकर वापस जा रहे हैं।

माँ शाम को आनेवाली हैं... यह खबर सुनकर बहुत भक्त लोग सत्संग मंडप में आ गये हैं। सब लोग आतुरता पूर्वक माँ की राह देख रहे हैं। माँ को आने में देरी हो रही है इसलिये मणी ने भजन गाया :—

भजन :—

तुम्हारे कारण सब सुख छोडियाँ
अब मोहे क्यों तरसावो।

× × × ×

मेरा मन राम ही राम रटाय रे !

इसके बाद एक वृजवासी भाई ने भजन गाया—"पानी में मीन प्यासी"

× × × ×

सब मातृभक्तों को खूब अपेक्षा कराने के बाद माँ रात को ९ बजे विन्ध्याचल से प्रयाग में आ गईं। माँ के दर्शन करके सब मातृभक्त लोग आनन्द से परिपूर्ण हो गये हैं। माँ आकर चुपचाप अपने आसन पर बैठ गई हैं। सब मातृभक्त लोग माँ के दिव्य मुख की तरफ एक दृष्टि से दर्शन कर रहे हैं। मालूम हो रहा है कि मानों माँ की तरफ से अहैतुकी कृपा की बारिस हो रही है। इलाहाबाद का मुख्य न्यायाधीश श्री शंकर शरण भी माँ के पास आकर बैठे हैं।

माँ :—(शंकर शरण के प्रति) तुम्हारी मोटर देखकर मुझे पता लगा कि तुम यहाँ बैठे हो।

श्री शंकर शरण—तुमको कैसे पता लगा कि यह मोटर मेरी है ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—ऐसे ही देखकर ख्याल हो गया। ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति बाजार में बर्तन या कपड़ा खरीदने गया है, तो उस कपड़े में या बर्तन में उन व्यक्ति की इच्छा की छाप पड़ जाती है। यदि कोई योगी वहाँ हो तो कपड़ा या बर्तन देखकर देख सकता है कि अमुक व्यक्ति की छाप इसमें रह गई है। जब अभाव होता है तब खरीदने जाता है। जहाँ अभाव पूर्ण करने जाता है वहाँ उनकी इच्छा की छाप उसमें रह जाती है कारण बिंदु में सिंधु है और सिंधु में बिंदु है। एक छोटे से अणु में भी सारा विश्व ब्रह्माण्ड रह सकता है। एक शून्य में भी सब रह सकता है। यह सब बड़े-बड़े योगी लोग कि जिनकी दृष्टि खुल गई है वे ही देख सकते हैं। जैसे एक छोटे से बटवृक्ष के बीज में इतना बड़ा वट वृक्ष रहता है। सिर्फ इतना ही नहीं लेकिन इस छोटे से वट वृक्ष के बीज में अनन्त वृक्ष रहे हैं। अनन्त स्थिति, अनन्त गति, अनन्त पत्र, अनन्त बीज— सब रहा है।

प्र०—जिसको दृष्टि हो—वही देख सकता है। हम तो कुछ नहीं देख सकते हैं।

माँ—योगी लोग देख सकते हैं। विचार से भी पता लग जाता है। तुम लोगों ने सुना होगा कि कोई-कोई कहते हैं कि लड़की तो माँ की है और लड़का पिता का है। ऐसा कभी होता नहीं। लड़की और लड़का—दोनों में माँ-बाप की सत्ता होती है।

भगवान् वासुदेव सर्वत्र सर्व समय रहते हैं। अग्नि में जो दाहिका शक्ति है—वही शक्ति छोटी-सी अग्नि के स्फुलिंग में है। पूर्ण में से पूर्ण जाने से पूर्ण ही रहता है।

इसके बाद माँ अपनी कुटिया में चली गईं।

ता० २६ जनवरी १९४८ पौष शुक्ल पूर्णिमा—२००४ आज प्रयाग में अर्धकुम्भ मेला में पूर्णिमा स्नान के निमित्त त्रिवेणी में स्नान का बहुत बड़ा माहात्म्य है। आज सुबह ६॥ बजे माँ और मातृ भक्त मण्डली त्रिवेणी स्नान करने के लिये जा रही है। पाँच बड़ी-बड़ी नौकाएँ किराये पर की हैं। 'माँ' एक नौका में बैठी हैं। पाँच नौकाएँ भक्तों से पूर्ण भर गई हैं। माँ के आदेशानुसार सब अपनी-अपनी नाव में बैठ रहे हैं। सब व्यवस्था ठीक तरह से हो जाने के बाद माँ के आदेश से सब नौकाएँ यमुना मैया की गोद में तैर रही हैं। माँ की नाव सबसे आगे है। दूसरी नाव माँ के नाव के साथ रखने के लिये संघर्ष चल रहा है। हाँ! कितना सुन्दर दृश्य है। चारों तरफ लाखों जनता त्रिवेणी स्नान के लिये आ रही है। इसी समय हम लोग जगत् जननी, त्रिताप हारिणी भक्तों को भवसागर से पार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करनेवाली साक्षात् माँ—हम लोगों के साथ आनन्द करती हुई जा रही हैं। मातृ भक्तों के हृदय आनन्द के मारे नाच रहे हैं। ऐसा मालूम हो रहा है कि साक्षात् श्री गंगा माँ, श्री यमुना माँ और श्री सरस्वती माँ—त्रिमातृ मूर्ति माँ को अपने में स्नान करने के लिये आह्वान कर रही है। नौकाओं की भी स्पर्धा चल रही है। सब कोई चाहता है कि अपनी नाव माँ के पास रखें।—ऐसे आनंदोत्सव करते करते माँ के सान्निध्य में—त्रिवेणी संगम पर पहुँच गये। सब लोग—"जय जय माँ" का सुन्दर कीर्तन भी कर रहे हैं। माँ के आदेश से सब लोगों ने त्रिवेणी संगम में स्नान किया। अहा! कितना सौभाग्य है कि जिसके दर्शन के लिये देव, ऋषि, मनुष्य—सब लालायित रहते हैं—उसी हमारी अनंत विश्व ब्रह्मांड की जगत जननी माँ के समक्ष त्रिवेणी स्नान कर रहे हैं। मैंने भी माँ को प्रणाम करके त्रिवेणी में ३ बार गोता लगाया। स्नान के बाद फिर से माँ को प्रणाम किया और फूलों से माँ की पूजा की। सब मातृ भक्तों ने माँ की पूजा की—इसके बाद हम सब लोग माँ के साथ अपने कैम्प में चले आये।

× × × ×

प्रातः १० बजे हैं। माँ सत्संग मंडप में आकर अपने आसन पर बिराजे हैं। सब मातृ भक्त लोगों द्वारा माँ से भजन सुनाने के लिये खूब विशेष आग्रह करने पर माँ ने बहुत सुन्दर भजन सुनाया—

"प्रेम की पुतलियाँ भजन करो रे,
भजन करो रे।
काष्ट की पुतलियाँ भजन करो रे,
भजन करो रे॥
कौन तुम्हारा बहन भानजा?
कौन तुम्हारी माता?
कौन तुम्हारे साथ चलेगा?
और कौन बने गुरु माता?
भजन करो रे... ... ...
यमुना हमारी बहन भानजा,
गंगा हमारी माता।
पुण्य हमारे संग चलेगा,
धर्म बने गुरु माता।
भजन करो रे... ... ...

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कौन तुम्हारे देवर लगत है ?
कौन तुम्हारे जेठ ?
कौन तुम्हारी ननद लगत है ?
चमके चारौं देश ?
भजन करो रे... ... ...
चंद्र हमारा देवर लगत है,
सूर्य हमारे जेठ
बिजली हमारी ननद लगत है
चमके चारौं देश।
भजन करो रे... ... ...
कौन तुम्हारा सखा लगत है ?
कौन तुम्हारा साथी ?
कौन तुम्हारा पिता लगत है ?
कौन तुम्हारा पति ?
भजन करो रे... ... ...
सत्य हमारा सखा लगत है ?
धीरज मेरा साथी।
पिता हमारा परम पिता है,
और आत्मा मेरा पति।
भजन करो रे... ... ...

भजन पूरा होने के बाद माँ के आदेश से हिरनदी ने एक भजन सुनाया—

हरि से लगे रहो रे भाई,
तेरा बनत बनत बन जाई
तेरी बिगरी बनत बनत बन जाई—

× × × × ×

साम को ५॥ बजे हैं। माँ सत्संग मण्डप में बैठी हैं। प्रथम सुन्दर कीर्तन हुआ। माँ ने अपने लम्बे केश को शिवजी की जटा की तरह बांधा है—साक्षात् शिवजी बैठे हैं ऐसा मालूम होता है। माँ का मुख मण्डल सुन्दर, खूब तेजस्वी और देदीप्यमान मालूम हो रहा है। भक्त लोग मन्त्र मुग्ध होकर एक दृष्टि से अमूल्य दर्शन का लाभ ले रहे हैं।

प्र०—मनुष्य और देव में क्या फर्क है ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—(स्वामी शरणानन्दजी को) पिताजी आप बोलो।

स्वा० श०—सृष्टि शब्द एक है। एक में अनन्त योनियां हो सकती हैं। देवयोनि भी हो सकती है। देव लोग कम लेकर ज्यादा देते हैं—

एक दृष्टि से विचार करने से मालूम होता है कि मनुष्य योनि देवयोनि से श्रेष्ठ है। जो लोग भोग की अभिलाषा नहीं करते वे लोग देव से भी बड़े हैं। मनुष्य योनि साधना का स्थान है। देवयोनि तो भोग योनि है। देव शरीर में साधना नहीं हो सकती। यदि भोगेच्छा न हो तो मनुष्य योनि श्रेष्ठ है। जिन व्यक्तियों में भोगेच्छा होती है उनको तो देवों का शासक मानना चाहिए। मनुष्यको जीवन में दो मुख्य इच्छाएं होती हैं—(१) भोगेच्छा और (२) भगवत् प्राप्ति की इच्छा। सब कुछ छोड़कर भगवान् के श्री चरण कमलों में शरण लेनी चाहिए।

प्र०—स्वरूप माने क्या ?

माँ—कोई पूछेगा कि आँख और सूर्य का स्वरूप क्या है ? दोनों की जात एक है। आँख बिना सूर्य के दर्शन नहीं होते हैं। प्रत्येक शरीर के प्रत्येक अंग में देवताओं का वास होता है।

प्र०—ब्रह्मादि देवताओं का अस्तित्व होता है ?

माँ—उपासना की दृष्टि से देवताओं का अस्तित्व होता है। मनुष्य में ३ गुण मुख्य रूप से रहते हैं। कोई रजो गुण प्रधान होता है, कोई तमोगुण प्रधान होता है और कोई सत्त्वगुण प्रधान होता है। एक व्यक्ति—मानो भील है—शराब पीता है लेकिन साधना करने से उनको भी भगवत् प्राप्ति हो सकती है। धर्माचार्यों में उनके लिये पूजा पद्धति ठीक हुई है। भील है वो देवी को मांस का भोग देता है। आज मैं मेरी माँ को भोग दूंगा—यह प्रेम की दूसरी अवस्था है। कोई रजोगुण प्रधान भक्त होगा वह अपने गुण के अनुसार पूजा करेगा। उनके लिये वही ठीक है। कोई तत्वज्ञानी होगा तो कहेगा कि तुम्हारा आत्मा तो तीनों गुणों से पर गुणातीत है। जिसका जैसा स्वभाव वैसी व्यवस्था होती है।

धर्म प्रत्येक साधक की दृष्टि से सत्य होता है। साध्य में कोई भेद नहीं है। मजहब में एक व्यक्ति अपने धर्म को तो सत्य मानता है लेकिन दूसरों के धर्मों को मिथ्या मानता है और जो सिद्ध पुरुष है वह सबको एक मानता है।

स्वा० श०—साधना की अवस्था में कल्पना का भेद होता है। वस्तु तत्व में भेद नहीं होता है। भगवान अपने स्वभाव की कक्षा में यदि नहीं आता तो लोग उनको पा नहीं सकते थे। यदि शरीर सत्य है तो सृष्टि भी सत्य है। यदि माँ यहाँ बैठकर सुन्दर-सुन्दर बातें न बोलतीं तो कोई यहाँ बैठता नहीं। अपने जीवन में और माँ के जीवन में बहुत अन्तर है। जो देता है वही देवता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मनुष्य में पशुत्व भी है और देवत्व भी है। अपने ज्ञान से संसार का ज्ञान होता है। जो चीज तुम्हारे में नहीं है उनको तुम नहीं समझ सकोगे। देव का स्वभाव भी तुम्हारे शरीर में है और उपभोग का स्वभाव भी तुम्हारे शरीर में है।

माँ—पिता जी ने बहुत अच्छा कहा।

प्र०—साकार पूजन में गणेश, ब्रह्मा जी के स्वरूप को रखते हैं। यह सब क्या सत्य है कि मानसिक कल्पना ?

इस प्रश्न पर स्वामी शरणानन्द जी ने बहुत सुन्दर तात्विक दृष्टि से आलोचना की। उन्होंने दो बातें—'इच्छा' और 'आवश्यकता' पर खूब समझाया। उन्होंने कहा—"इच्छा मनुष्य को परतन्त्र, प्रमादी, अप्रामाणिक, हृदय विहीन बना देती है।"

माँ—पिता जी—यह क्या इच्छा का स्वभाव है ?

स्वा० श०—हा, माँ।

माँ—इच्छा—क्या वस्तु है ?

स्वा० श०—इच्छा परतन्त्र बना देती है। सब की इच्छायें भिन्न-भिन्न होती हैं। आवश्यकता स्वतन्त्र बनाती है। सबकी आवश्यकता एक है।

माँ—हम लोगों को तो अनन्त माता, अनन्त पिता है—पिताजी इच्छा क्या वस्तु है ?

स्वा० श०—जो वस्तु मुझको परेशान कर रही है वह इच्छा है।

माँ—जो वस्तु हैरान न करे तो ?

स्वा० श०—वो आवश्यकता है।

प्र०—क्या हम सब लोग भगवान् के हाथ में पराधीन है ?

भगवान् पराधीन है। जीव स्वाधीन है। जब जीव को इच्छा होती है तब भगवान् को पुकार सकता है। इसमें ही माँ की महत्ता है। अनन्त शक्तिवान होते हुए भी माँ खुद पराधीन नहीं बन जाती—क्या ? भोगवासना रहते हुए भी भगवान मुक्ति दे सकता है। देखो ! भगवान पराधीन है कि नहीं ? भगवान प्रत्येक जीव के धाम में २४ घण्टे में अनंतवार आता है, लेकिन आसन नहीं मिलने से विचारा भगवान वापिस चला जाता है। शक्ति और ज्ञान विना मूल्य में मिलता है। मनुष्य सदुपयोग के द्वारा उत्कृष्ट बनता है और दुरुपयोग से निःकृष्ट बनता है।

प्र०—अपने संचित कर्मों को मनुष्य को भोगना पड़ता है। सुना है कि निष्काम कर्मों के द्वारा उन कर्मों का खंडन हो जाता है तब फिर भगवान का इसमें कौनसा कर्तृत्व है ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वा० श०—भगवान ने एक बड़ी भूल की है कि उन्होंने जो जो वस्तुएं दी हैं--उनके ऊपर अपना नाम नहीं लिखा। कोई भी प्राणी या जीव भगवान की कृपा के बिना मुक्त हो नहीं सकता है। कर्म कब बनता है? जब तुम कर्त्ता बनते हो तब कर्म बनता है। जो व्यक्ति सीमाबद्ध भावों को और वासनाओं को दूर नहीं रख सकता है वो कैसे मुक्त होगा। द्रष्टा ज्ञान से वासनायें जल जाती हैं। प्रेमी भक्ति से गला देता है। सेवक अपना अहंभाव भगवान को अर्पण कर देता है। बन्धन में से छूटने के लिये कुछ न करो तो कम से कम अपना 'अहं' भाव अपनी मां को दे दो। अपनी किसी वस्तु पर अपना अधिकार मत मानो। संसार की वस्तु संसार को दे दो। और तुम अपने को भगवान के श्री श्री चरण कमलों में अर्पण कर दो।

प्र०—चैतन्य महाप्रभु जी ने जैसे जगाई मधाई का उद्धार किया तो वैसे हम लोगों का उद्धार हो तो अच्छा।

स्वा० श०—भक्त और भगवान में पाप नहीं रहता है। यदि तुम सब अपना सदा के लिये भगवान को दे दो तो उद्धार हो सकता है। पाप पापी में रहता है। यदि कोई व्यक्ति अपना पाप देना चाहे तो दे सकता है। मनुष्य को पता है कि,--"मैं झूठ बोलता हूँ" यदि--तुम अपने 'अहं' को देदो तो मां फौरन ले लेती है। मां तो सब के 'अहं' को हजम करने वाली हैं। सब के अहंकार को खाना ही मां का खाना है। मां 'अहं' से कम कुछ नहीं लेती है। 'मैं' और 'मेरा पाप'—ये दो वस्तुएं भिन्न नहीं होती हैं। 'मैं' और 'मेरा'—ये दोनों बहुत बड़ी गलतियां हैं। इस ख्याल को दूर करना चाहिए। अनन्त-जन्मों के पाप एक क्षणमात्र में नष्ट हो सकते हैं। जगत की चीज जगत को दे दो और अपने को—भगवान के श्री चरणकमलों में संपूर्ण रीति से समर्पण कर दो। माँ पराधीन है। माँ अकेली बैठना चाहती है।

(क्रमशः)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Sm. Indira Gandhi along with Mataji, Dr. Sushila Nayar & Dr. Bithika Mukerji at Varanasi Ashram.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Just as there is a veil of ignorance for the individual,
So there is also a door to Knowledge.

Mātri Vāni

Birth as a human being is hard to obtain. Having received this rare boon, if you do not give time to the contemplation of the Beloved, you will have to reproach yourself: "What have I been doing? Should my whole life continue in this manner ?" To reflect thus is beneficial. Failing to do so means moving towards death.

* * *

Who is called a friend? He who makes you turn towards the One Beloved, he, verily, is a real and true friend. But he who lures you away from this direction and induces you to take the road to death is an enemy, not a friend. Try to reform yourself. Not to make an attempt to correct oneself is as good as committing suicide.

* * *

Sense enjoyment acts like slow poison. And by this slow poison you are driven towards death. Therefore it is man's duty as a human being to get into the current that leads to immortality.

* * *

The world (*sangsāra*) is the abode of conflict. He who mistakes the comedy for reality, is just decorating for the various disguises. This is why it is called *sangsāra,** the place where play-acting is the main thing.

* * *

* A play upon words that cannot be translated. *Sangsāra* means world, also the round of births and deaths. *Sang* clown, *sāra* essence.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Lord, Thou Thyself art in this form—regard that particular *kriyā* in this light. See in all *kriyās* an expression of THAT. Realization of Reality will come through all *kriyās* combined. Do not look upon them as separate one from the other. Who is the *kriyā śakti* ? Thou Thyself. And who is the *Sakti* ? He, the One.

* * *

What does *Ātmā darśana*, the direct perception of the Self signify ? The seer, the seen and the act of seeing—where these three are one, there the Brahman is realized. When the question of action or inaction does not arise, this is called Self-realization (*Ātmā sthiti*).

* * *

To know the Mother means to find the Mother, to become the Mother. *Mā* means *Atmā*, *Mā* means *mayi* (all-pervading). Self-pervading, reposing in the Atma, Knowledge, the Self, Siva. "To become" actually means : it ever is so.

* * *

There is nothing in this world, yet every single person is madly pursuing this nothing—some more and some less. What a comedy God's play is ! What a lunatic asylum He has created ! He Himself sporting with Himself.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'MA'

D. S. NAKRA

It is more than a privilege and an honour to be called upon to say a few words about Ma—it is a blessing. Blessed are those that utter Her Hallowed Name, and twice blessed are those that hear the Holy Word in silence and contemplate Her Living Presence in their hearts. May She be with us now and for ever.

In his "Hymn to Bhagwan Ramakrishna", Swami Vivekananda says : "He that has passed by Thee has found peace; he that has taken Thy name has received Bliss and he that has surrendered himself at Thy Lotus Feet has got Freedom''.

The same is true of Ma. Fortunate are we who are gathered here Let us think of her. Let us utter her Name and let us surrender ourselves at her Lotus Feet in thought and in deed.

I do not know why I have been chosen for the talk today. I heard of Ma many times but I was not called into Her Holy Presence till about a year or so ago.

I had the good fortune of being in her presence for just a couple of minutes when I asked for and received her blessings. She said to me : "Cling lovingly to the Lotus Feet of the Lord and your mind shall loosen its grip on worldly desires. Have faith in His Name and persevere and you shall make progress."

These are common words of advice but they assumed a special meaning and significance. Coming from her, they were a promise and a blessing.

---

* The following is a talk delivered at the Ranchi Ashram on the occasion of Mataji's 72nd birthday, May 1968.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

This is all that I can say about Ma from personal knowledge—that she is a Living Blessing. I am waiting till her Grace vouchsafes to me another glimpse of her. I take it as a sign from her that I have been asked to speak today. This has given me an opportunity to read about her. One has first to hear the Name, think over It and absorb It before the meaning dawns and Its living presence is felt. It is in this spirit of dedication that I join you all in offering these few words at her Lotus Feet.

It is usual to start with a very brief historical life-sketch. Ma was born in May 1896 in a small village in the Tippera (Tripura) District of East Bengal; the population of this village was predominently Muslim, mostly illiterate. Her own formal education consisted of two years' attendance at a primary Pathshala. She was married at the age of 13 to Ramani Mohan Chakravarti, later known as Bhola Nath, who was employed as a keeper of Shah Bagh, a garden of the Nawab family of Dacca. Her spiritual life began to manifest itself even before she was old enough to enter worldly life as we know it. In fact she never entered worldly life.

The story of her life is a series of events of spiritual significance with which her devotees are familiar. I will mention only a few : her performance of nimaz (recitation of Qurana ayaat)" near the grave of a Muslim saint in Shah Bagh, her spells of absent-mindedness and the recitation of hymns and mantras, her spontaneous experiencing of yogic and other spiritual states; the coming of Jyotish Chandra Roy and Dr. Sasanka Mukherjee and his daughter (later renamed by Ma, 'Guru Priya' and lovingly called 'Didi' by everybody) her ministry and long tours including pilgrimages to Kailash and Mansarovar and of course the many miracles of which some only have been told by her devotees.

The narration of the experiences of her devotees would be an elevating *Katha* and *Kirtan* by itself, but unfortunately we do not have the time for it this evening. It is

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

enough to understand that her life story, as such, has significance only as something concrete to which our mind can cling; it serves as a vehicle of our thought, as a focus of our embodied love. What she really is her own grace will reveal to us according to our capacity. She herself has said: "I am for you what you think me to be."

"For the great majority of us", says Dr. Weintrob (Vijayananda), "she is a Mother, full of love and tenderness; to others, a friend, an elder sister or even a child. For others yet, who are spiritually more advanced, she is the Guru or an aspect of God, Durga, Krishna etc. And it is not only in the imagination of the bhakta that she represents these aspects. Her physical appearance, her behaviour and her voice are actually transformed and adapted to the part she wishes to play. I have often seen her features assuming entirely different aspects within a single hour."

I cannot, therefore, do better than relate what she is to some of her devotees. In this way, I will be able to present to you a few aspects of her many-sided personality. There is no better way of knowing Her than reading or hearing an account of the experiences of her devotees and her impact on them. Her totality is beyond understanding.

First came Hara Kumar who called her 'Ma' for the first time. Next Jotish Chandra Roy who saw Mother as 'Anandamayi' and gave her the name which seems the most fitting, more than even the name she got from her parents—'Nirmala' (the Taintless). If words can encompass her Self, it is these two words 'Anandamayi Ma.'

Mahamahopadyaya Dr. Gopinath Kaviraj has spoken of "the wonderful poise and bliss of her sweet personality which, strong as it is, blends into the impersonal and is utterly undifferentiated from it."

Another devotee declares that: "She is harder than thunder and softer than a flower". Still another says: "She is like the Ganges—her very touch purifies. In her

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

presence, one feels oneself getting better all the time. She does not seem to notice or want to notice the dark side of an individual ; she only sees our luminous aspects enhanced considerably by her divine mercy".

Another devotee declares :

"Seeing the radiant face of Ma Anandamayi and hearing her laughter, you guess that she is an incarnation of joy. Touched by the caress of her glance, you know that her heart is overflowing with love for all beings. Listening to her teaching, so simple and clear, you understand that she is in possession of all Wisdom. But one cannot say whether it is Joy, Love or Wisdom that is the source of all this : for with her, all three are inextricably and indissolubly mingled-one cannot exist without the other."

Parmahansa Yoganandaji says : "I had found many men of God-realization in India ; but never before had I met with such an exalted woman saint. Her gentle face was burnished with the ineffable joy that had given her the name of Blissful Mother." He adds : "She made one feel the closest of friends, yet an aura of remoteness was ever around her-the paradoxical isolation of Omnipresence."

So much about her personality. Let us now see what the devotees have to say about her teaching. Dr. Gopinath Kaviraj says : "Mother has no line of her own : No particular teaching or doctrine ; she declares that the genuine teachings of all true teachers sincerely followed can lead us to the one Truth." "What is wanted is unfailing patience, grim resolution, persistent endeavour, unflinching faith and unconditional surrender." As the first commandment enjoins: "Thou shalt love the Lord, thy God, with all thy heart and with all thy soul, and with all thy mind and with all thy strength."

"There are many mansions in my father's house", says Jesus. Yes, there are infinite mansions and infinite ways but we have to remember that the house is One.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

All these statements are but a measure of our own more or less limited understanding. What Mother is, only Mother knows. Let us now see what occasionally she has said about herself. Let us hear her own words: "I am Purna Brahman Narayana" she said to a questioner. To another: "If there were *'aham jñāna'* (I-consciousness) in me I could express who I am. As it is not there, I am what you choose to say about me."

To still another she declared: "This entire Universe is my home. I am in my own home. Even when seeming to be roaming from place to place."

Going still further, she declares: "I am conditioned as well as unconditioned. I am neither infinite nor confined within limits. I am both at the same time. I exist before there is creation, duration or dissolution of the world. I was the same, I am the same, and I shall be the same."

For many of us, these declarations are beyond comprehension. Let us, therefore, say in the words of the Gopis to Uddhava: "We do not know, O Uddhava, what *jñāna* and *yoga* is, we know only love." Let us surrender ourselves to Ma with all our love and let her make of us what she wills.

——

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

MATAJI'S DARSANA

New Delhi, September 1968.

EILEEN WOOD JASNOWSKI

I am before her, the holy one, Anandamayi Ma.
I am sitting here, wearing the costume of the hill people,
the Punjab. I am not saying anything but thinking it :
Look at me, sitting here before you, in lotus posture.
What do you think of that,—for a westerner ?

She thought highly of it. The Universal Mother was amused.
Her eyes consumed me, ate up all my passions, fused
my dreams of fame and gain into nothingness.
Her radar, love, flashed out of wisdom's third eye
halfway across the world
and brought me home to her.

She centered all her thought into my fate line,
sponged out what she wanted
from my starred and criss-crossed palm.
Ah, yes, another one; she thought,
another one who wants to have the Grace
handed to her, like an almond or an emerald
RIGHT NOW.

Come closer. Look into my eyes.
Look deeply. Tell me what you see.

The first moment I see a quiet woman, old as love
and steadfast; I see dark hair, the kindest eyes, Buddha's smile.

The second moment all expression's blotted out ; her eyes blend
into mine and I'm caught in the Madonna blue light-stream.

The third moment her upper lip twitched a gadfly of my past
had brushed it; she let it go,—an inconsequential
incarnation.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The fourth moment her face vanished but those eyes still
held me,—
set now in a cobra's narrow head. She danced on the
hood of my ego.
The fifth moment her love cracked my heart *Chakra*,
seaped into
every part of my body, flowing, pounding, rocking me high.
The sixth moment—my last unblinking glimpse of
eternity—
she tipped and nearly toppled me off my rim of life.
She burned me out in six minutes without a flick of fire.
The circle of her love widened and took me in
—where I'd always been
in the palm of her hand. Lord Krishna held me high,—
higher.
Six moments ? No, hundred lives it took
for initiation by Mataji's look.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

From the Diary of a European

MELITA MASCHMANN

(Translated from German)

Allahabad, December 28th, 1966.

Mataji has come on a visit to the Gopal Thakur Ashram at Allahabad. The house has a good atmosphere. One can feel that it is the centre of a community of persons who are occupied with someting essential. In the morning Kalyaniji performs puja for nearly two hours in the temple, in front of which the congregation assembles. I am impressed by the intensity of the atmosphere and the style of the ritual. Kalyaniji's almost air-rending invocation of the Devi : "Ma, Ma !" touches my heart. In her ecstatic appeal our yearning for God, the Eternal Mother, finds expression. "Ma, Ma !" the call comes from a depth where no falsification through sentimentality and sounding pathos is possible anymore.

Mataji is sitting at the entrance of the temple, only about a yard away from the priestess. Her whole being radiates Divinity—for our adoration. But how to describe what is taking place ? It does not happen very often nowadays perhaps, and only in response to invocations such as this one : "Ma Ma !" Also in response to silent invocations.

The Devi takes Her abode in the body of this Being whose whole existence is in complete submission to God.

Sometimes I think that these precious moments of union alone make Mataji's life bearable in our midst, with our oppressive ignorance (ignorance in all forms in which we allow it to get the better of us, such as indolence, greed, covetousness, pride and so forth.) Perhaps these react on Mataji more than we think. If our longing for God which attracts us to Mataji were quite sincere, pure and passionate,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

He would certainly have to reveal Himself to us through her. I am told that Ma once said : "My sustenance derives from those who, having come to me, lose themselves and find God." I feel sure that we often "starve" Mataji. Perhaps even when we imagine to be specially devout : in the midst of a solemn ritual.

Or is Mataji always Devi, not only in those special moments when it becomes so obvious ? The replies to such questions must always be conditioned by the particular school of thought to which one belongs. I do not feel bound to any of them and therefore no answer can be binding for me. In the first few years this uncertainty tormented me. We do not like to live with questions that have to remain unsolved. But if we give up insisting on a reply, the questions themselves one day disappear. Now I am content to love Mataji and to know that she is not threatened by the danger of succumbing to all the evils that result from our egos; and at times to see the Divine mysteriously shine through her.

It is after all only a metaphor for something indescribable when I say that Devi manifested through her body while Mataji sat on the threshold of the temple yesterday. When she was being decorated with garlands and covered with flowers like the murtis in temples, her whole body expressed depersonalization in which the self in annihilated for the sake of the Self. In such moments I have the feeling that an atom of Mataji's human self resists the destruction by the Self. It remains with us and joins into the veneration of the Self that has incarnated in her body. For this reason the tie of intimacy between her and us is never completely broken. To express it in my non-doctrinal language, she never ceases to be a human being, even while she is totally immersed in divinity.

Yesterday, when the puja was over, something very strange took place—(we should note and remember this.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Somebody had a tape recorder ready and placed it near Mataji. She was perhaps just returning from a realm into which we cannot follow her. With a smile that was still half "over there" she pointed to the microphone, saying very softly : "This body has no *kheyāla* to say anything just now."

Probably many had hoped to get Mataji's voice on the tape, for they could not be discouraged so easily. A lady said : "Ma, I have an urgent question to ask : Are Brahmins Brahmins by their birth or by their merits ?" "Both", replied Mataji almost inaudibly into the humming of the machine. She afterwards gave another answer with an equally soundless voice and then became silent. She remained mum in spite of all questions, although there were a number of very intelligent people present who introduced various topics in the hope of persuading Mataji to talk. "Ma, please, answer ! Say something ! Or if you do not feel like talking, sing a little ! Please, Ma........"

Mataji sat calmly at the entrance of the temple and smiled patiently and cheerfully at the eagerness of the people who wanted to outwither at any cost. Her gaze wandered with serene attention from face to face. In the corners of her eyes there was a faint twinkle of mockery : "Do you really believe my dear-ones, that you can make me act against my *kheyāla* ?" But her mouth remained tightly shut. It seemed to me that I had never before seen Mataji's motherliness radiate quite so warmly as during those moments in which she resisted with such adamant determination the entreaties of her children. What looked like relentlessness was nothing but love. After a while the ardour of the congregation calmed down, the questions ceased and then a great stillness began to spread which had its source in Mataji. Her face now became very serious and composed. The expression of an impersonal love shone in her eyes, and everyone on whom this gaze fell must have been filled with the certainty that something of the nature of an initiation had taken place

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

for him. Slowly her gaze wandered over the faces, and here and there sank into a pair of eyes. Then her look rose and with great tranquillity reposed on the horizon. There it dwelt for several minutes. Suddenly Mataji got up with a start and slipped into her room.

Mataji had thus refused to co-operate with the machine. I do not think it was by mere coincidence that her *kheyāla* established such a distinct borderline: Beyond it is the zone in which the truly human is threatened by encroachments of the lifeless machine. I have often witnessed Mataji speaking or singing into a tape but never in moments in which it would have meant a violation of the religious atmosphere, as here. Considering the fact that technical science has an almost demonical attraction for many, I would see in Mataji's refusal the symbolic victory of the Holy Ghost over a dangerous power of corruption.

At the Opening Ceremony of the Charitable Hospital of the Shree Shree Anandamayee Sangha.

Varanasi, December 26th, 1968.

About twenty minutes before the motorboat of the Prime Minister cast anchor near the Ashram, Mataji appeared on the dais, accompanied by two women professors of the Benares Hindu University. While walking, Mataji had that slightly forward bent attitude which is typical for her in moments of special concentration. What it expresses is not fatigue, but rather some kind of a kingly humility. Every time I observe it, it seems to me to reflect God's loving-kindness: He who could display devastating power, clothes Himself into a figure of affectionate tenderness.

Before sitting down, Mataji gravely greeted into the pandal below. She did not wear her spectacles and the total 'otherness' in her eyes put me into a holy terror. This can only be endured, never interpreted. Before the Prime Minister arrived, Mataji gave us a *darśana* of a rare intensity. In the

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

midst of the general nervousness that usually precedes a function of this kind, she had the tranquillity of a rock. Most of the time she sat with her eyes shut and the few movements of her shoulders and arms were slowed down. I presumed that she was in *dhyāna*. Two or three times, one of her companions put a question to her. Easily and swiftly she emerged from her absorption and, smiling almost imperceptibly, looked round the pandal According to my estimate, five hundred pairs of eyes, almost exclusively eyes of the so-called worldly prominence to which most of the guests belonged, were gazing at her, but not a trace of shyness was noticeable in Mataji. I was reminded of the peasant girl of the fairy tale who became a queen : In her charisma, her certainty, but also in her isolation Ma was more royal than any queen by birth. Her contacts are of a different order from ours. While we see her sit before us so silent and so calm—with whom may she be holding intercourse ?

As soon as the Prime Minister arrived, the atmosphere changed radically. From the background of the pandal one could feel intense movement—like a blast of wind : The slender figure clad in a dark green sari approached the dais with almost youthful agility and lightness. At the bottom of the steps occurred one of those tiny interludes that often throw more light on the character of a person than his utterances according to programme. Indira Gandhi hesitated for an instant, then with lightning speed moved towards the edge of the steps slipped off her shoes, left them there, and from the side set foot on the first step. Quite likely this was but an automatic reaction which she may not remember anymore. The reaction of a person who—although she could well "afford" it—does not wish to leave her shoes where they might be in the way of those who follow.

When the Prime Minister stood before Mataji and bowed down in greeting, the youthfully dynamic in her was again surprisingly strong. Her face lit up with a quick glow of joyful warmth that was equally quickly concealed behind a

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

restrained smile. At that moment I felt deeply for the woman who has to shoulder such an enormous burden of political responsibility : Before the critical eyes of her friends and adversaries she must control her personal impulses even when meeting Mataji. But who has not experienced something similar on a less prominent level : In official surroundings one meets a specially revered or loved person and is obliged speedily to withdraw into secrecy the natural expression of one's feelings. They are too precious and too personal to be exposed to the eyes of the public.

If I observed correctly, something of this kind occurred in Indira Gandhi. Mataji's position was very different from that of the Prime Minister. She could allow more of herself to be perceived while greeting and blessing. When she clasped Indira's hands into her own there was genial warmth and yet also restraint in the expression of her face. It has nothing to do with the arrangments of protocoll when I say that at that instant there was a very sublime 'in-tune-ness' in the *lila* of the two great women.

I had never before seen Indira Gandhi, and from the mostly inadequate newspaper photos I was not prepared to find her so fascinating. When she had taken her place next to the Maharaja of Benares—who by the way reminded me of a royal figure in a Mogul painting—I had leisure to watch her. I know nothing about her and still less about her politics; but for this very reason I feel free from prejudices. The woman on the dais in front of me had a certain boldness in the expression of her attitude and countenance. This observation was also in tune with the dynamic in her bearing, her walk and her movements. It was pleasing because, above all, it did not counteract anywhere the pronounced womanliness of her personality. She had a generous, surprisingly beautiful face, in which that which I called boldness was in accord with sensibility. At any rate just then this accord could be keenly felt. At other times it might have to be struggled for. Her face was intelligent,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

wide awake, and now and then a little nervous. That it looked serious was in keeping with the situation; however, at the background of this seriousness I seemed to perceive a sort of permanent·sadness, (or should I call it melancholy ?) which made it specially attractive. The politician acts in the 'now' and the 'here', and has to believe in the necessity and the sense of what he is doing. Yet it is good and saves him from arrogance and vainglory if he has some notion of the ultimate vanity of all worldly activity. Even though this notion should infuse a secret melancholy into all his decisions.

I was unable to follow completely the speeches that were remarkably short, but I had the impression that none of the speakers impaired the dignity of the function by empty phrases. Anywhere in the world where politicians move, this is extremely rare. Throughout the function Mataji sat in her place with the same stillness that had already enveloped her like an almost tangible aura before the proceedings began. Although she never uttered a single word, she was nevertheless the real centre of everything that took place here. While all the others on the dais sat in a row, one next to the other, Mataji had her place at right angles to them all. This demonstrated in an artless manner that Mataji does not belong to the rank and to the world of the active-ones of our day-to-day life. She is "of a different world", in spite of the fact that she does not disdain—(and the construction of the hospital amply proves this)—to effectively influence the world of our daily cares.

Indira Gandhi off and on threw a quick glance at Mataji, and Mataji looked two or three times at the Prime Minister, without their eyes ever meeting. Mostly Mataji held her eyelids shut, even during the speeches. The more I watched her the more undeniable became my impression that under the cover of her almost massive outer calm she was affecting the proceedings with the highest intensity. To be sure, on a different plane than the other actors in the *lila* of the hour.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Whenever I see Mataji in an extraordinary situation I feel something of her mysterious blending with cosmic occurrence. That morning it suddenly struck me that during the last few days we had had an unusual cold wave. The night before it had rained heavily and at the time when the function was scheduled to begin (it actually took place one and a half hours later) there was thunder and lightning over the Ganges. The cosmic tensions had been so strong that I felt them physically in the form of short breath and a deep restlessness. While I was now gazing at Mataji, I believed to perceive quite distinctly that the power of her massive silence had won a victory over an unknown threat which found expression in cosmic tension. It may sound extravagant, but that morning this had a clearly perceptible reality for me: At the present moment I am unable to make it more comprehensible. While Mataji was sitting on the dais, motionless and with closed eyes, I saw her in powerful action as the protector. None of us will surely be able to tell (and perhaps even the part of her which could reply to our questions is not aware of it either ?) in what way she affected the lives of all of us during that hour. But the thought that this protective power would also (or rather first and foremost) benefit the woman who had taken on herself such a heavy responsibility for her people, made me very happy.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Can Everybody Practise Yoga ?

DR. I. K. TAIMNI

Although every human being is destined to tread the path of Yoga sooner or later and has the potential capacity for doing so, this does not mean that everyonecan start the practice of Yoga immediately. He must have evolved mentally upto a certain stage and reached a certain level of spiritual maturity for doing so. What this stage of mental and spiritual evolution is, becomes clear to some extent by considering the five-fold classification of mental states or stages of mental evolution as defined in Yogic literature. These are called *Mūdha*, *Kṣhipta*, *Vikṣhipta*, *Ekāgra* and *Niruḍḍha*.

(1) *Mūdha* : The first and lowest state is called *Mūdha*. In this state the individual does not have the slightest idea of the nature of life and is carried along like a straw on its current, completely at the mercy of his circumstances and environment, with no discrimination and capacity to take initiative or direct his life in any manner. This is the state of mind of the mentally undeveloped man.

(2) *Kṣhipta* : The next stage is called *Kṣhipta*. In this stage desire begins to take an active part in the life of man but he still has no aim or purpose in life. Whatever comes before him and promises to give him some pleasure attracts him for the time being. He is like a butterfly flitting from flower to flower in search of pleasure or objects which can secure pleasures and comforts of different kinds. Although some capacity for taking initiative has been developed, still, there is no continuity of purpose in the pursuit of objects. He desires and runs after them in a haphazard manner according as they happen to come his way or attract his attention. This stage obviously represents a slight advance in the evolution of mind and the vast majority of people may be considered to belong to it.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(3) *Vikṣhipṭa* : The next stage of mental development is called *Vikṣhipṭa*. Here the individual pursues one object steadily, but though apparently he seems to have taken the initiative he is really a slave of the object and persues it not from free choice made with discrimination but because he cannot help it. He cannot give up the persuit of the object and has really no choice in the matter. Most people who have a bee in their bonnet belong to this class. They catch hold of an idea and it seems to possess them for the time being, if not for their whole life. Those people with a one-track mind lose all sense of proportion and perspective in persuing the idea and are not even conscious of the fact that they are pursuing it, because they cannot help it. In fact, many of them are proud of their capacity to pursue an idea with determination and perseverance and generally become experts in their own line. The majority of people who have remarkable achievements to their credit and are doing work of high quality belong to this class. They serve as very convenient though unconscious agents of the Divine Life and work out the Divine Plan in their respective spheres very efficiently. In the process they also work out their *Sāṁskāras* and develop special mental faculties.

But man is essentially a Divine being living in exile on the lower planes of illusion to unfold his Divine nature. He cannot by the very nature of things find real and permanent happiness in the illusory pursuits of the lower worlds. Those who get passionately involved in these pursuits, however glamorous they might appear for the time being, find at the end of their life—when it is generally too late—that they have been pursuing a mirage. They find to their dismay that their life is empty and frustrated and they are now face to face with a dark and uncertain future, because they have done nothing to develop their inner spiritual resources. Theoretical knowledge dealing with problems of philosophy or even observance of external forms of religious life are of no avail under these circum-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

stances. This is the inevitable result of ignoring the realities of our spiritual life and allowing ourselves to be entangled in illusory pursuits.

The man of discrimination does the work which is in his *prārabdha* or which he is required to do as an agent of the Divine life within him, but he does not allow himself to be caught in these worldly pursuits which bring temporary pleasure born of a sense of achievement. The first mantra of the *Ishāvāsyopanishad* given below warns us against such mental and emotional entanglements.

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥

(4) *Ekāgra*: The first three stages of mental and spiritual evolution referred to above represent the state of mind of the vast majority of people living in the world and one can easily see that an individual cannot practise Yoga as long as he has not outgrown them. The fourth stages is called *Ekāgra* which means 'one-pointed'. In this stage man is not only capable of taking initiative and pursuing a definite purpose with determination and perseverance but is also master of his own mind. It is he who selects the object of his pursuit after using his discriminative faculty freely in this selection. He is not at the mercy of an overpowering attraction or predilection for a particular kind of life or pursuit created by *saṃskāras* of activities in previous lives. He not only possesses the necessary qualifications for achieving any worthwhile object but also the discrimination and non-attachment for selecting and pursuing the highest object of human endeavour—knowledge of one's Divine nature.

(5) *Niruddha*: The last stage which is called *Niruddha* and may be translated as "controlled and capable of inhibition" represents the state of mind of the Yogi who is not only capable of practising Yoga but who is actually treading the path of higher Yoga. *Nirodha* is the essential

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

technique of transcending the mind whereby Reality can be realized and only the individual who is in this last stage of mental and spiritual evolution can learn and practise this technique. It should be noted that the *Niruḍḍha* stage does not necessarily mean the mental stage in which the higher states of consciousness and powers of Yoga have already been acquired, but it does mean that the Yogi has the potentiality and the capacity to tread the path of higher Yoga and attain its successive stages.

Anyone who is used to the study of human beings and their outlooks and modes of behaviour will see that the above broad classification of mental states corresponding to the five stages of mental evolution is essentially correct. He will also see that only those who have reached a minimum state of mental and spiritual maturity are capable of treading the path of Yoga which is concerned with the last stages of human evolution and ultimately leads an individual out of the human kingdom. In the first three stages man is meant to go through experiences of all kinds and through these experiences to develop the various mental and spiritual faculties which are present in a potential form in every human being. Till these faculties have been adequately unfolded and a certain degree of mental and spiritual maturity has been attained, the question of treading the path of Yoga in the true sense does not arise. It does not arise not only because the capacity is not there but also because the desire is completely absent.

The complete absence of desire to develop a faculty or exercise a function shows generally an absence of capacity to develop the faculty or exercise the function. Under these conditions there will not be the slightest attraction towards the required pursuits and activities and they will appear futile or meaningless. But the underlying fact is that the individual is not yet ready for them.

When an individual is getting ready for entering the path of Yoga, he begins to feel attraction for it in an increas-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ing degree. In the early stages the attraction is weak and is generally confined to the acquisition of theoretical knowledge concerning the philosophy and technique of Yoga. But a stage comes, sooner or later, when this attraction becomes sufficiently strong to at least partly overcome the attractions of the worldly life and start the self-discipline of preliminary Yoga. This is a critical stage because it is the practice of this preliminary Yoga which is called technically Kriya Yoga that makes the individual properly qualified to tread the path of real Yoga as distinguished from the various haphazard practices which these days pass under the name of Yoga. As the fitness of the individual for treading this path increases, his desire to reach the goal also increases *pari passu*. He is now in the stage of *Ekāgratā* and adequately qualified to tread the path of Yoga.

Although the serious aspirant who is determined to tread the path of Yoga is expected to have already developed *Ekāgratā*, still, Patanjali has recommended a number of practices to develop this capacity to pursue an aim wholeheartedly and with full concentration until it is accomplished. Practices hinted at in aphorisms I-33-39 of the *Yoga-Sūtras* for achieving *mansah-sthiti-nibandhani* or 'steadiness of mind' are meant for this purpose. The aspirant can adopt any of these methods which suits his temperament or circumstances or can devise one of his own.

The reasons why these exercises have been recommended are two. One is that they bring out from latency into active functioning the capacity to make the mind steady and one-pointed. The capacity may be there owing to the efforts made in this direction in previous lives but may be lying in a latent form in this life. A definite effort of this nature either brings it out in the active form or shows the aspirant that he is still lacking in this basic qualification for practising Yoga and must acquire it before trying to enter this path.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The second reason for adopting practices of this nature lies in making the mind not only one-pointed but also turned inwards. Many people in the world can pursue an object with one-pointness and perseverance provided it is outside in the familiar world of tangible objects. But this is quite different from the one-pointedness and steadiness required by the Yogi whose object of endeavour is inside, within the deeper realms of his mind and consciousness. This requires a higher kind of endurance and perseverance and involves a more severe test of faith and capacity to pursue an object in the face of difficulties and lack of any visible signs of progress. It is comparatively easy to pursue an object even against tremendous odds provided one can measure the progress made by objective methods, can share one's knowledge and experience with others, when success brings appreciation and applause from others and even failure evokes admiration or sympathy. None of these aids or compensations are available to the lonely traveller in his flight from the alone to the Alone; at least not in the early stages. It is only his faith, his intention, his indomitable will—all expressions of the *Jivātmā's* will to liberate himself from the illusions and limitations of the lower life—which can sustain him in this work within the inner realms of the mind.

The exercises recommended by Patañjali not only develop the capacity to keep the mind steady and one-pointed but also test his ability in this direction. Either he acquires this qualification in an adequate degree and enters the path of Yoga with confidence, or he realizes his weakness and decides to set about the task of developing it. If he is not yet ready for this divine adventure he merely gives up.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Some Recent Significant Trends in Contemporary Western Psychology

DR. B.L. ATREYA, M.A., D. LITT.

(*Continued from the last issue*).

II

PARAPSYCHOLOGY

Parapsychology, of all the recent great movements in western psychology the most important one, which brings it closer to Indian psychology and which unveils and reveals a good deal of the human personality, its nature and powers, is what was formerly known as Psychical Research, and is now known as Parapsychology. It started as a scientific research in some strange and supernormal powers and faculties of man, which were believed to be exercised by him, but which were inexplicable in terms of the known laws of physics, chemistry, biology and psychology, and so not believed by scientists to be exercised by man. In the middle of the last century there were numerous reports of many strange happenings which required scientific investigation, and some individual scientists of repute devoted their time to investigating their occurrence and causes of occurrence. The movement grew strong and in 1882 it was felt necessary to establish a society of eminent scientists of England and other European countries to found a Society of Psychical Research to make a scientific study in those odd and strange supernormal occurrences of human life which were inexplicable in terms of the then known laws of science. In other countries of Europe and America also such Research Societies were formed and a vigorous research into supernormal powers and faculties of man was carried on, revealing man to be capable of and exercising the following powers :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

1. *Telepathy.* Minds are capable of affecting other minds without any physical means directly and at great distance and almost at the same time. This power of direct contact of mind with mind has been established by hundreds and thousands of experiments and tests.

2. *Extrasensory Perception.* In the Duke Laboratory of Parapsychology of U.S.A. thousands of experiments have established that most men and women are capable of perceiving without the use of the sense organs of perception and describing in details the objects, and established that minds have powers of cognizing sensible objects without the use of sense-organs of persons at great distances and when obstructed by other things such as a wall and other obstructive things.

3. *Clairvoyance.* One kind of extrasensory perception is known as clairvoyance that is, visual perception of occurrences at a distance both in space and time by some without any direct contact with the occurrences.

4. *Clairaudience.* Perception of sounds at great distance in time and space without the actual use of ears.

5. *Psychometry.* It is a strange capacity of the mind possessed by certain individuals by which they are capable of divining the past history of or past events connected with a material object or person with whom they come into close contact.

6. *Precognition or Foreknowledge.* Power of having a peep into what is going to happen in the near or distant future.

7. *Retrocognition.* Power of knowing what happened in the past without any present clue to it, directly by mental concentration.

8. *Crystal gazing.* Seeing a vision of happenings distant in time and place on a bright surface of a crystal or glass ball, and describing them before others with whom they might be concerned, such as a theft or murder, etc.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

9. *Dowsing* or power of divining the presence of fresh running water underneath the deep surface of the earth, where a well is proposed to be dug.

Many great scientists who have devoted themselves to this field of research have borne witness to the reality of these powers in men they have examined and tested:—a few of them may be quoted here:—Prof. William Mc Dougall, the well-known psychologist writes, "In my view the evidence for telepathy is very strong...I hold that a case has been made out for clairvoyance of such strength that further investigation is imperatively needed.. ..." (McDougall: *Religion and Science of Life* p. 80). Hans Driesch, a famous German biologist writes: "The study of Psychical Research is on the right path and is pursued in the most critical manner...We have spontaneous telepathy as a quite certain fundamental phenomenon. Quite certainly established further is thought reading. To unprejudiced observers clairvoyance certainly appears at first sight to be present. Psychometry is *prima face* a fact. Prophecy is...I will describe as probable *Psychical Research.*" Dr. Rhine of Duke University, on the basis of his thousands of experiments, writes, "Extrasensory perception is an actual demonstrable occurrence". "ESP is not a sensory phenomenon. It is "fundamentally different from sensation.". J. B. Rhine: *Extrasensory Perception*, p. 222, 223). He further writes: "Extrasensory perception is fundamentally different from sensation, and it suggests the freedom of mind from the common material relations of extension and distance."

All these powers of supernormal cognition exercised by the human mind indicate that the human mind is not dependent on physical bodily conditions for its knowledge of other minds and external objects and happenings. It is something non-material and should be regarded as such by psychologists and philosophers as they do regard it in India.

Besides the above-mentioned powers of supernormal cognition, parapsychology has also discovered many other

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

kinds of supernormal powers of mind which may be called supernormal powers of action. Some of them are mentioned below:—

1. *Supernormal Control Over the Body, and Miraculous Cures of Physical and Mental Diseases*—Suggestion, Hypnosis, Prayer, which are purely mental activities but have been found very effective in producing actual changes, good or bad, in the body. Suggestion, particularly autosuggestion has been found to be a great agent in causing as well as curing diseases of the body and its organs. Hypnotism which employs suggestion "can relieve pain, in pleurisy, sciatica, lumbago, neuralgia, encephalgia, cancer, tabes dorsalis, and even in gastric ulcers, duodenal ulcers, and appendicitis, etc." Writes Alexander Cannon in his book *Hypnotism* on page 23. "Hypnotic treatment is also itself found extremely useful in the treatment of tetanus and other spasmodic diseases. The dysuria of Bright's disease or diabetes, stricture and even prostrate enlargement in some cases, can be relieved by hypnotism. Childbirth can be made painless. The menses can not only be regulated, but if absent, frequently brought on" (Cannon : *Hypnotism* p. 28,29). Cures effected by prayer, made either by the patient or by somebody else for him or on his behalf are even quicker, more marvellous and verging on the miraculous than those effected by hetero or autosuggestion. Alexis Carrel refers to such cures in his remarkable book, *Man The Unknown*, in these words : "The most important cases of miraculous healing have been recorded by the Medical Bureau at Lourdes." A detailed account of many cures effected at Lourdes is given in a nice clinical study, *Medical Proofs of the Miraculous*, written by Dr. Le Bec, translated by Drs. Ernest Ware and Elizabeth. The learned author refers to eleven serious types of cases, most of which had been previously treated in vain for a long time by several medical men and had consulations with hospital surgeons before proceeding to Lourdes. All these cases have taken almost negligible a time and were not

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

at all followed by any period of convalescence. "The patient", as Dr. Johnson puts it, "is instantaneously cured without having to undergo a period of recuperation, as invariably occurs in normal cases." (Johnson : *The Great Problem*, p. 211).

Apart from such control of the physical body in which some subconscious factor of human personality controls the autonomic functions of the body and brings about desirable or undesirable changes in the body, cases have been observed and studied where by some yogic or other training a man could consciously will and control some unconscious functions of the body, such as the pulse-rate or heart-beat. There are cases on record where animation could be suspended not only for hours but for days and months. (See pages 42, 43 of B. L. Atreya : *An Introduction to Parapsychology*).

Psychical Research or Parapsychology has not only discovered actual facts of supernormal kinds of knowledge in the mind that knows objects directly without the use of sense-organs and within the limits of time and space as ordinary psychology thinks, but also as unaided by the senses and the nervous system and knows the thoughts and feelings of other minds telepathically. Parapsychology has come across other very extraordinary powers and functions of the mind. We shall refer to some of them here.

Older Psychical Research and Contemporary Parapsychology pursued in Duke University under the guidance of Dr. Rhine, has come across what is called *Telekinesis* (Rhine calls it *psychokinesis*). It means direct action of mind on material objects in distant space, in the form of some kind of movement in them. Telekinesis (or parakinesis, as it was also called) denotes the supernormal movements of objects at a distance, under the influence of some mind, in the absence of any known force or energy moving them. Both the spontaneous and experimental kinds of evidence go in favour of telekinesis being a fact. William

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Crookes observed many telekinetic phenomena happening in the presence of the famous medium D. D. Home, studied carefully by him. He writes, "The instances in which heavy bodies, such as tables, chairs, and sofas etc., have been moved, when the medium has not been touching them, were very numerous. (Sir William Crookes : *Researches in the Phenomena of Spiritualism*, p. 88). A large number of other experiments in telekinesis are found recorded in Richet's *Thirty Years of Psychical Research* and Garland's : *Forty Years of Psychical Resarch.* Telekinesis is involved in what is called levitation of objects at a distance without any physical contact of the person lifting the object. The usual assumption made by psychical researchers to explain such movements is that some "physio-biological energy is employed, generated within the medium's organism, and exteriorised from it, into space. This must somehow become, so to say, solidified, in order to effect matter." (Carrington : *The Story of Psychic Science*, p. 137).

There are several other supernormal or ordinarily inexplicable phenomena studied by parapsychology (Old Psychical Research) which involve other mysterious powers of human personality. We shall refer to some of them here. They are *Raps*, *Poltergeists*, *Apparitions*, *Astral Body* and *Astral Projection*, *Trance-mediumship or Possession*, *Alleged Memories of Previous Lives.* We shall make passing references to them, lest this paper should become too long.

Raps are percussive sounds heard as produced from walls, floors, and articles of furniture, without anything seen as striking them. They were first heard by Fox Sisters in Hydesville near New York in 1847. They were mechanically recorded by Sir William Crookes in the presence of the famous medium D. D. Home, studied by him. Very often these raps indicate some sort of "intelligence" or "personality" other than that of the medium which seems to use them as symbols of expression of some ideas or messages to be conveyed to

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

someone. Dr. Maxwell has made a special study of this aspect of the Raps in his *Metaphysical Phenomena*.

Poltergeists is the name of a peculiar kind phenomenon, common in India and the West, in which various kinds of disturbances created by some unknown agency, such as throwing about the furniture of the room, breaking of crockery, besmearing the walls with blood, placing flesh, blood or bones among the articles of food, throwing filth into the kitchen, throwing stones or brickbats into the courtyard of the house, making disturbing raps and confused noise, ringing bells, and doing such other things as annoy the family and also the person concerned. Dr. Harry Price, the founder of the British National Laboratory for Psychical Research studied in 1926 a very interesting and genuine case of a poltergeistic phenomenon. He was quite convinced of its genuineness. Poltergeistic phenomena are difficult to explain on the hypothesis of normal human behaviour and of fraud. The writer himself has come across some genuine cases of poltergeistic phenomena.

Apparitions: Ghosts, apparitions and phantasms are known to humanity from time immemorial. Every age has been believing in their existence and in every age they have been believed to exist and have been perceived by people. The Society for Psychical Research collected authentic evidence of enormous strength in favour of apparitions being something more than illusions or hallucinations, as ordinary scientific psychology regards them. This enquiry further revealed a strange and mysterious fact that apparitions do not pertain only to persons who are dead, but who are also actually alive. So it has been discovered that there are apparitions of the *dead*, as it is generally believed, but also of *dying* as well as of living persons. The only explanation of all these apparitions that Psychical Research has found is that every human being, in addition to his having a physical body, has a finer and subtle body called the *astral body*, made of subtler elements, which does not perish at

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

death or when the man is in an unconscious or trance-state. At death it leaves the dead physical body and it can leave the living physical body at will also and appear elsewhere to other persons. Many studies have been done in connection with the subtle body or the astral body. The astral body is found to be of the same size and form as the physical body, although very fine and light in structure. During the waking state it coincides with the physical body. At night however, when one is asleep, a certain detachment occurs between the two. The same happens when one faints or becomes unconscious on account of an anaesthetic or some other cause. It can also be detached from the physical body experimentally by putting it to a deep magnetic sleep, and voluntarily after one has acquired conscious power to do so, by having performed some exercises. *The Projection of the Astral Body* by Sylvan J. Muldoon with a Foreword by Hereward Carrington, a great psychical researcher, is a very interesting and authentic book on Astral Projection. Crookall's recent books : *Astral Projection* and *The Supreme Adventure* are also very informative on astral body and astral projection. He has collected and studied hundreds of cases of astral projection under various conditions and circumstances.

Automatic Writing, Automatic Speech and Trance-personality :

These phenomena occurring in human lives open another chapter in the study of the nature and interrelationship of human personality. In Automatic Writing the writer tries to with-hold his consciousness from the act and simple allows his hand and the instrument held in it to move quite automatically and freely. Such writing is done with the help of a planchette, an ouija board, or simply a pencil. Sometimes very strange and unexpected answers and messages purporting to be coming from departed spirits are written. Automatic writings include pictures, sketches and paintings etc. As Carrington says : "It is not the movement

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

of the writing instrument which is the mystery, but the information which it imparts, and there is no reasonable doubt that much extraordinary information of this kind, unknown to the sitters, has been imparted". (*Psychical Phenomena and the War*, p. 121). In Automatic Speech, the same kind of information is received through the utterance of a person, who speaks in an unconscious or semi-conscious state. Its extreme form is trance-mediumship. The main characteristic of trance-mediumship is a temporary loss or withdrawal of personal consciousness and in its place appearance of a different or higher consciousness with greater power of knowledge and action through the same physical organism which has been temporarily released from the control of the limited personal consciousness. Less desirable and more common in India is the phenomenon of "possession" in which the personal consciousness of an individual makes room for some "other" personal consciousness which communicates with persons through the body owned by the consciousness which has temporarily withdrawn from the scene of manifestation. The credit of starting a scientific investigation into the phenomenon of trance-mediumship in the west goes to the great psychologist William James some years before his passing away. In the year 1885, he discovered a very strange woman, Mrs. Piper, who became an object of interest for quite a large number of scientific investigators of both America and Europe and whose study led to the discovery of many new facts about human personality. Mrs. Piper who was capable of passing into a trance in which her own consciousness appeared to have withdrawn and her physical body with its mechanism of speech and writing was in the meantime used, as it were, as a means of communication by certain seemingly other persons who professed to be denizens of other worlds, where the surviving spirits of dead were said to be living, to bring news and messages to their earthly friends and relatives. William James, did not dismiss Mrs. Piper as a case of

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

mere hysteric dissociation, as psychologists would have done. On the other hand, he became very much interested in her as a great find of great scientific interest, and introduced her to Dr. Hodgson, the then Secretary of the American Society for Psychical Research, who was very critically minded and had a passion for truth. Both William James and Dr. Hodgson made a close and thorough study of Mrs. Piper for a period of seven years. Then she was handed over to other psychical researchers. From 1886 to 1911, for a period of more than 25 years, Mrs. Piper was under the full watch and observation of a large number of scientific investigators of Europe and America who made a very thorough and critical study of her trances, of the personalities manifesting and communicating through the trances, and of the information and messages given by these personalities. Amidst all the differences of opinion with regard to the facts of the case, which nobody can deny, there is a general agreement that in the trances of Mrs. Piper there is much supernormal material which needs new categories for description and explanation unknown to psychology. In the words of Tyrrell, a great scientific student of psychic phenomena: "All the investigators who made a study of the case agree that the evidence for supernormality is incontestable." (Tyrrell: *Science and Psychic Phenomena*, p. 168). William James wrote in a letter to Sir Oliver Lodge: "Taking anything I know of Mrs. Piper into account, the result is to make me feel as absolutely certain as I am of any personal fact that she knows things in her trance which she cannot possibly have heard in her waking state and that the definite philosophy of her trances is yet to be found."

In course of time many more trance-mediums have been discovered by Psychical Researchers and have been very thoroughly and critically examined and studied. Several hypotheses and counter-hypotheses have been formulated to understand them. One of the hypothes discussed theeadbare is that of the survival of the dead in the form of spirits who

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

make use of the trance-personalities to come in contact with the living by giving information and messages. In the field of Psychical Research "Practically every psychical researcher agrees in thinking that the evidence in favour of the spiritistic hypothesis is now so strong that it may be justifiably employed as *working theory*", writes Hereward Carrington in his *The Story of Psychic Science*, p. 323.

The attention of the parapsychologists of the world (particularly of Dr. Stevenson of the Medical Department of the Virginia University) has recently been directed to the alleged memories of previous lives retained by some young children all over the world, particularly in India. He has come thrice to India and travelled much in other countries to collect such cases and to study them very thoroughly. Such memories when verified in detail are so supernormal, and when studied along with the powers of mind mentioned and discussed above, throw a great flood of light on the nature of mind and human personality and bring western science of mind very close to the philosophy of mind and man that was a living philosophy in ancient India, which formed the basis of Indian Yoga practice. Stevenson "*Twenty Cases Suggestive of Reincarnation*".

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Sacred Places of Kashmir, Jammu and Ladhak

"A Devotee"

HEMIS SHUKPA

Hemis Shukpa is a grove of shukpa trees (pencil-cedar) which lies between the Timisgam and Khalsi villages at a distance of about fourteen kilometers west of Tiripti and about seventy kilometers west of Leh, the capital of Ladhāk.

The grove is regarded as very sacred and is said to be protected by the gods. It consists of a few hundred pencil-cedar trees.

JAMMU

Jammu is the winter capital of the Kashmir State. It is situated at a distance of about one hundred and eight kilometers north west of the Pathankot railway station. The sacred river Tawai, also named Surya putri, (daughter of the sun god) flows near it.

There is an ancient temple of Shri Raghunāth at Jammu. It is large, and rich in architecture with beautiful sculptures inside. The marble, image of Shri Raghunath, is about three feet high. Adjacent to the main shrine of Raghunāth there is a shrine of Shiva. This temple contains innumerable Sālagrama.

There are many other temples and Gurudwāras* in Jammu. The temple of Shiva called Ranabireshwara was constructed by Maharaja Ranabir Singh in the nineteenth century.

* Temples of the Sikhs.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥*

[Obeisance to Rāma, Ramabhadra, Ramachandra, the creator the Lord of Raghus, the Lord of all and the husband of Sitā.]

JWALA

The village Jwala lies at a distance of about twenty-five kilometers south-east of Srinagar by road.

There is an ancient rock at Jwala which is regarded as very sacred. It is said to be an emblem of the goddess Jwala Devi and is worshipped by the pilgrims. About forty years ago a temple was built over this sacred rock, It's origin is lost in antiquity.

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥†

[Reverence to the Goddess of the Great, To Her who is auspicious, for ever reverence.

Reverence to Prakriti who maintains setting our minds wholly upon Her, we make obeisance to Her.

Reverence to Her, who is eternal, Rudra,
To Gauri and Dhatri, revence and again reverence.
To Her who is moonlight and in the form of the moon,
To Her who is supreme bliss, reverence for ever.]

KAPLAS

हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः ।
यन्मया भुक्तमसाधुनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः ॥
यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम् ।
तन्नो इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता च पुनन्तु पुनः पुनः ॥*

† From Sri Sri Chandi Translation by Arthur & Ellen Avalon.
* Krishna Yajurveda, Taittiriya Aranyaka XI.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[I take refuge in the gold crested Varuna, the Lord of the waters, I pray to thee, O Varuna May Indra, Varuna, Vrihaspati and Savitā purify me again and again from whatever sins that I have committed in my thought, speech and action and from whatever I have eaten from dishonest people and whatever I have accepted from sinners.]

Kaplas is a mountain situated between Bhadarwāh and Basohli. It is about twenty-four kilometers south of Bhadarwāh town lying on the western flank of the Chalardha pass at a height of about 14.240 feet above sea level. It is also known by the names of Kailās Kamlās and Kablas.

There are a number of sacred mountain lakes on the northern side of the Kaplas mountain. They are called Kund Kaplạs, Sera Jalikā, Kālikā, Kāli kund etc. The land is regarded as sacred to goddess Kāli and Vāsuki Nāg.

Kund Kaplas is also known as Kailash Kund or Vāsuki Kund. It is egg shaped and is situated at a height of 13065 feet above sea level. There are no shrines or temples on the bank of the lake, but images of Vāsuki Nāg, Jimut-Bāhana and an emblem of Shiva are worshipped on the northern bank of the kund. It is said that when Vāsuki Nāg was chased by Garuda, Vāsuki Nag ran for life and entered into Kailāsh kund with the permission of Lord Shiva to whom the kund originally belonged. Garuda tried to empty the kund by drinking up its water but failed because the goddess Saraswati poured a huge quantity of water into it by breaking the bank of the kund named after her. Vāsuki Nag was therefore saved in this way. The waters of the Saraswati kund, though filled with ice and boulders, still flow into the Kailās Kund which from that time came to be known as Vāsuki kund also.

In order to save Vāsuki Nāg from being devoured by Garuda, Jimut Bāhana, a Vidyādhara* who dwelt at that

* A type of semi-celestial beings.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

place, offered himself to be eaten up by Garuda as a substitute for Vāsuki. Hence Jimut Bāhana is also worshipped at this sacred spot. His image is on the right side of that of Vāsuki and his worship is done before that of Vāsuki.

The pilgrimage to Vāsuki kund starts from Vāsuki temple at Gatha on the thirteenth day of the month of Bhādra every third year and reaches the kund the same evening. On that day pilgrims also come from Billawar (Basohli). The pilgrims bathe in the waters of the kund that day and the next morning and then return. Some pilgrims reach Kāilas kund via Sevajdhar by a bridle path.

Sweet grass grows on the banks of the kund. It is said that Vāsuki Nāg, when chased by Garuda, ate the grass to appease her hunger. It is also said that even to-day Vāsuki Nāg sometimes appears in the middle of the lake so that the pilgrims may see her.

Kālika kund is situated about two kilometers east of Vāsuki kund. It is sacred to the goddess Kāli.

Kāli kund which is actually Kālikā Nāg Kund is sacred to Kāli Nāg. It is about six kilometers south-west of Vāsuki Nāg. It is the source of the Tawi river, also called Surya putri (the daughter of the Sun-God), which flows near Jammu town. It is said that Bhairava Devata, a son of Vāsuki Nāg, removed boulders from the Kāli Kund and made the water flow.

सर्वे वरप्रदा नागाः सर्वे नीलं अनुव्रताः ।
सर्वेऽतिदयिता राजन् वासुकेः सुमदात्मनः ॥*

[O king ! All the Nagas are benificial. All of them are very beloved of the high-souled Vāsuki.]

* The Nilamata, verse 949.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

KISHTWĀR

Kistwār is a town on the left bank of the sacred river Chāndrabhāgā situated at a distance of about seventy-five kilometers north of Bhadarwāh and about one hundred and eighteen kilometers south-east of Ananta Nāg in Kashmir.

There is an ancient temple of the goddess Ashtabhujā in Kishtwar. The goddess was born as a daughter of Yashodā, wife of Nanda, in Gokul, district Mathura, Uttar Pradesh. In order to save the infant Krishna from being killed by Kamsa, Vasudeva, the father of Krishna, miraculously carried away Krishna at night from the prison of Kamsa to Nanda's house at Gokul and brought the daughter of Yashoda to Kamsa's prison in order to allay the suspicion of Kamsa and thinking that Kamsa might not kill a girl. But the cruel Kamsa did not show any mercy. As soon as he heard the cry of the baby he walked into the prison, snatched her away from the bosom of Devaki (mother of Krishna) and hurled her to the ground in order to kill her, but the child rose up into the sky and revealed herself as goddess in the form of Ashtabhujā (one having eight arms). There is a reference about this incident in Shrimad Bhāgavatam.

सा तद्धस्तात् समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ।
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥
दिव्यस्रगाम्बरालेप-रत्नाभरणभूषिता ।
धनुः शूलेषुचर्मासि-शङ्ख चक्र गदाधरा ॥*

[The moment that girl, the younger sister of Vishnu (Krishna), was hurled to the ground by Kamsa, she, being freed from his clutches, rose up into the sky and revealed herself to all as Goddess. She had eight arms, holding a bow, an arrow, a trident, protecting armour, conch, discus and mace. She was dressed in beautiful garments and her body was decorated with rich garlands, ornaments jewels and cosmetics.]

* Shrimad Bhagavatam, Tenth Skanda, Chapter 4; verse 9-10.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

KONSAR NAG

क्रमसरेति विख्यातं सर्वंकल्मषनाशनम् ।*
सतिदेहस्य सरसस्तीर्थं विष्णुपदं सर: ॥†

(The sacred lake, whose water is the body of the goddess Sati and which is formed by the stampede of Vishnu, is known as Kramasara. It destroys all sins.)

Konsar Nag is a mountain lake situated between the peaks of the Pir Panzal range at the south-eastern extremity of the Kashmir valley. As the crow flies it is about sixty kilometers south of Srinagar.

The mountain lake is sacred to Vishnu. He is said to have created this lake by stamping with his foot. It is therefore called Vishnupada. Its water is regarded as very holy. Another ancient name of it is Kramasara, of which Konsar is a corruption. It was called Kramasara because it marks a foot-step (*krama*) of Vishnu, the depression of which resulted in the formation of the lake (*Sara*). Its water is said to be formed of the body of the goddess Sati

There is the following reference about the mighty foot-steps of Vishnu in the Shrimadbhāgavatam :

त्रिभि: क्रमैरिमांल्लोकान् विश्वकाय: क्रमिष्याति ।
सर्वस्य विष्णवे दत्ता मूढ़ वर्तिष्यसे कथम् ॥
क्रमतां गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभो: ।
खं च कायेन महता तार्त्तियस्य कुतो गति: ॥*

(Shukrāchārya said to Vali : "The god Vishnu, whose body is the entire universe, will cover the three worlds with three steps. O fool, where will you stay after donating all that you have to Vishnu ? He will cover the earth by his first step and the heaven by the second. He will cover the

---

* Shrimadbhagavatam, tenth skanda, chapter 4, verse 9-10.

† The Nilamata, verse-123.

* Shrimadbhagavata, eighth skanda, chapter 19, verses 33-34.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

region between the heaven and the earth by his body. Where will he then put his third step ?").

Shukrāchārya was the preceptor of Vali, the mighty king of the demons who drove out the gods from heaven and ruled the three worlds. In order to subdue Vali and reinstate the gods in heaven Lord Vishna incarnated as a dwarf Brāhmana called Vāmana. When Vali was performing a sacrifice, Vāmana approached him in the guise of a Brāhmana boy and begged for a plot of land which could be measured by three of his foot-steps. Shukrāchārya, who knew the motive behind Vāmana's request, tried in vain to dissuade Vali from making the promise. Ignoring his preceptor's advice the righteous Vali agreed to donate the land. Thereupon the great Vishnu, in the form of the dwarf, began to expand his body and assuming the form of Trivikrama, which means the mightiest in the three worlds, he covered the earth and heaven with two steps and there was no space left for the third. Vali then requested the Lord to step on his head and thereby became a captive in the hands of the gods, who regained their kingdom in heaven.

VISHOKA

From the mountain lake Konsar Nag rises the sacred stream called Veshan. Its ancient name is Vishoka, which means 'free from sorrow". This stream is said to represent Lakshmi the goddess of wealth and wife of the God Nārāyana. The Nilamata Purāna tells about the sanctity of this rivcr in the following verse.

दृष्ट्वा विशोकं काश्मीर्यां केशवेनोपबृंहितम् ।
प्रतिष्ठितं केशवेन विष्णुलोके महीयते ॥*

[By seeing Vishoka in Kashmir which was brought and established by Keshava (Vishnu) one is glorified in the region of Vishnu.]

* The Nilamata, verse 1012.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The confluence of Vishoka with the sacred rivulet Godāvari at Gudar, a village on the right bank of the Vishoka in Divsar Pargana, is also regarded as very sacred.

KOTHER

आद्याय सर्वजगतामखिलेष्टदाय
नित्याय निर्जितसुरासुरवैभवाय ।
कुन्देन्दुगौरवपुषे कुसुमास्त्रहन्त्रे
देवाय भक्तवरदाय नमः शिवाय ॥

[I bow down to God Shiva, the giver of boons to his devotees, who bestows all the best to the whole world, who is eternal, who is the origin of this universe, who subdued the glory of the gods and the demons, whose body is as white as the Kunda flower, and who killed the 'God of Love' (whose weapons are made of flowers.)]

Kother is about three kilometers from Achhibal, which is about eleven kilometers south of Ananta Nag. It is about sixteen kilometers north of Veri Nag. Its ancient name is Kapoteshwara. According to the Skanda Purana, Shiva and Pārvati once sported by taking the forms of pigeons. Hence Shiva and Parvati are also referred to as Kapoteshwara and Kapoteshwari. (Kapota is the Sanskrit word for pigeon). The God is also referred to as Pāpasudana, which means 'Destroyer of sins.'

There is a noted spring sacred to Kapoteshwara at Kother. Two shrines of Shiva are by the side of the holy spring. A king named Mutsukund is supposed to have founded the temples. This is supported by the following couplet quoted by the local people.

"Mutsukund Razas manshihandi kān
Tim kati salanas ? Kuther Van."

(King Mutsukund has buffalo's ears. Where will they be removed ? In the woods of Kuther.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

It is said that the king Mutsukund ears resembling those of a buffalo. He was very much ashamed of these and wanted to get rid of them. He consulted the *pandits* (learned people) and as a cure was advised to bathe in the holy waters of the spring at Kother. When he did so, the buffalo's ears disappeared. He then constructed the temples and a stone enclosure of the spring as a mark of gratitude.*

About this sacred place, Kalhana writes the following verse in the first book of the Rājatarangini.

भक्ति मुक्ति फलप्राप्तिः काण्ठरूपमुमापतिम् ।
पापसुदनतीर्थान्तर्थंत्र संस्पृशतां भवेत् ॥

(There within the sanctuary of Pāpasudana, by touching the husband of Umā in the form of the wooden image people get the pleasures of life as well as final liberation.)

From the above verse it appears that in those days a wooden image of Shiva existed in Kother near the spring.

There is a reference about this sacred spring of Kapoteshwara in the Nilamata Purāna also. A verse is quoted below :

रूद्रलोकं अवाप्नोति स्नात्वा तु कपोतेश्वरे ।
विशलिङ्गह्रदे पुण्ये रूद्रलोके महीयते ॥

[One goes to the region of Rudra (Shiva) by taking a bath in the sacred spring of Kapoteshwara. One glorifies in the region of Rudra by bathing in the holy lake of Vishalinga.]

---

* See 'Ancient monuments of Kashmir' by Pandit R. C. Kak.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mātri Lila

(December 1968—March 1969.)

On December 7th Mataji arrived in Delhi from Naimisharanya via Lucknow, accompanied by Sri Haribabaji Maharaj and Sri Akhandanandaji with their disciples. She had come at the urgent request of Sri Haribabaji and his devotees who had arranged for a grand religious function called "*Brihat Hari Sammelan*" on the vast Subhas Maidan from 7th to 16th December. On arrival at Delhi Station, Mataji was profusely garlanded by the devotees. With an affectionate smile she accepted offerings of fruit and flowers. For those ten days Mataji stayed at her Ashram at Kalkaji, a beautiful, quiet and fairly solitary place, far away from the hub of the city. Every morning and evening she used to attend the *satsang* at Subhas Maidan. A large number of the population of Delhi could thus avail themselves of the opportunity of Mataji's *darśana* in the open pandal. One hour of the daily *satsang* was managed by our Delhi Kirtan Party who sang the *Mahāmantra*. Almost every evening Mataji would lead the kirtan for a short while, singing mostly *Rāma Nāma*. A few times she also replied to questions. Day by day the crowd grew larger and more enthusiastic. People patiently waited for hours in order to have the blessing of Mataji's *darśana* for half an hour and to hear her sing. The function proved a great success, mainly due to Mataji's gracious presence. This was the general feeling. On December 17th Mataji boarded the train to Varanasi, reaching there on the 18th midday.

Her health being indifferent and having been extremely busy both at Naimisharanya and Delhi, Mataji, for the first

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

few days remained mostly in her room behind closed doors, giving *darśana* only for one hour in the evenings. The outstanding event during Mataji's sojourn at Varanasi was on December 26th, the opening by the Prime Minister of the three main blocks of the newly constructed Mata Anandamayee Hospital.

The hospital has been run on a small scale since 1965. Several years before that, Dr. Gopal Das Gupta had started a charitable homoeopathic dispensary in our Ashram. It was attracting an ever increasing number of patients, both Hindus and Mohammedans. It was his great desire to build in Mataji's name a first class hospital equipped with all upto-date amenities that would cater to the destitute and needy of all communities without distinction of creed or caste. This project was taken up with great zeal and enthusiasm by the organizers of the Shree Shree Anandamayee Sangha. Unfortunately Dr. Das Gupta passed away at the age of 70 even before the foundation stone of the hospital could be laid.

The opening of the new double-storied western block, housing a number of out-patients departments, took place in July 1965. Since then this part of the hospital has been functioning very efficiently, thanks largely to the selfless service rendered by several well-known physicians of the city, especially Dr. U. N. Mathur and Dr. S. N. Mathur and Dr. G. S. Bhargava. About two hundred fifty patients are being treated daily. The report shows that already during the year 1967, 38,567 patients received medical aid. Within the short span of three and a half years and although as yet incomplete, the hospital has already become quite famous and earned high praise from Indian as well as foreign visitors for its unusual standard of cleanliness and efficiency.

In November 1965 the Chief Minister of the U. P. Srimati Sucheta Kriplani and the Union Health Minister Dr. Sushila Nayar came to visit the hospital. They took great interest and

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Dr. Nayar suggested that the in-patients department should have not less than 170 beds, more than double the number of the original plan. Sri J.D. Shastri, Senior Architect of the Ministry of Health, who is recognised as one of the foremost hospital designers of this country, was requested to make the design. The Central Govt. has since then sanctioned more than Rs. 5.50 lakhs for construction purposes & purchase of essential hospital equipments. Several lakhs of rupees have been collected from private donations and spent, while more than half of the construction has yet to be accomplished.

On December 26th, the ground floors and first floors of the three main blocks were formally opened by Sm. Indira Gandhi in the presence of Mataji.* The elite of Varanasi as well as many distinguished guests and devotees of Mataji from all over India and even from abroad attended. The function was excellently organized and proceeded with great dignity, in perfect order and pindrop silence. On the southern side of the hospital a large pandal had been erected and beautifully decorated with garlands and flower-rings. The dais was all in white with a flowery background. There had been a heavy rainstorm in the morning and the Prime Minister's plane could therefore not take off from Delhi at the scheduled time. The function thus started one and a half hours later than originally planned. Srimati Indiraji arrived by motor boat. She was accorded a hearty welcome. The Maharaja of Benares, who is the President of the hospital, led her up to the dais. After bowing to Mataji, she took her seat. The speech of welcome to the Prime Minister by the Maharaja was followed by the reading of the Hospital Report by the Maharaja of Tehri Garhwal. Then Indiraji delivered her inaugural address. She spoke for five minutes with great simplicity, dignity and charm. She remarked that the ground on which the hospital stands has some connection with Gandhiji, with her father and

* See also pp. 61-65 of this issue.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

therefore also with her. She then stressed the point that the patients of this hospital would not only be cured from their bodily ailments but would return to their homes filled with the peace and inspiration that is derived from Mataji's influence.

When the function was over, the Prime Minister cut the garland and was shown round the hospital buildings. Then she came to the Ananda Jyoti Mandir. Didi presented her with a silk scarf and with garlands from Sri Gopalji's neck and *tulsi* leaves. After this she had a few minutes alone with Mataji upstairs. Indiraji seemed very pleased to be able to have a short while with Mataji even on this official occasion. Refreshments were served to her, while beautiful *bhajans*, sung in the Ashram hall by Chhabi Banerji and Pushpa, could be heard through the amplifier placed outside of the room. To the accompaniment of the sweet music, she took leave of Mataji and boarded the boat.

Mataji remained in Varanasi until January 9th. Every night Brahmachari Virajananda would read out of the book "*Amara Vani*"† and usually lively discussions ensued, Mataji often making lengthy comments. On January 3rd, full-moon day, a special *pūja* was performed in the course of which the *Narāyana Sīlā* of Annapurna Mandir was bathed in 50 litres of pure cows milk. Tumblers full of this *prasāda* were distributed to everyone who asked for it, fishermen and their families, labourers, beggars—all the poor of the locality had their share.

On January 9th, Mataji motored to Allahabad, where she remained for two nights in the Ashram of the late Sri Gopal Thakur at Allenganj. At Allahabad, Mataji is always in a special mood. Her visits are short but very intense. On the 10th morning there was puja.* At night films were

† Discussions with Mataji with a commentary by Dr. Gopinath Kaviraj, recently published in book form in Hindi and Bengali.

* Similar to the one described on p. 58 of this issue.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

shown of the consecration of the Chheliya Mandir at our Vrindaban Ashram and of the last *Gita Jayanti* that Sri Gopal Thakur had performed in our Varanasi Ashram. Mataji also sang.

On January 11th, she left for Naimisharanya with a very few companions. In the atmosphere of this hallowed abode of ancient Rishis, Mataji relaxes and is in a jolly mood, laughing and joking, walking about or lying in the sunshine, occasionally cooking—"like a child on holiday" someone remarked. Here also the daily reading of *Amara Vani*, followed by discussions, was continued. Off and on devotees would come for short spells from Sitapur or Lucknow. Dr. Gouri Nath Shastri, Vice-Chancellor of the Sanskrit University, Varanasi, stayed for two days. In the mornings he would read out from the Srimad Bhāgavata, seated under a *tamāl* tree.† On January 22nd, *Vasant Panchami* day, *Saraswati Pūjā* was performed in the hall in front of the *Purāṇa Mandir*, the most fitting place to propitiate the goddess of art, learning and the highest knowledge. A beautiful small *vigraha* was brought from Varanasi. A few professors of the Benares Hindu University had come for the occasion. Mataji herself supervised all preparations. It was a charming, very intimate function. In the evening Mataji related in great detail the story of the *Purāna Mandir*. Since Mataji had left Naimisharanya in December, the well and the new electric pump had been in good order and so Swami Paramananda had with the help of an efficient gardener laid on a lovely garden with a variety of beautiful multi-coloured flowers that were in full bloom to welcome Mataji. Vegetables of the best quality had also been grown and baskets-full could be sent to Varanasi and also to neighbouring Ashrams. One day the boys of Sri Naradananda ashram was entertained to a feast. On every new moon day there is always a special puja at Lalita Devi Mandir

† The tamāl tree is sacred to Sri Krishna.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

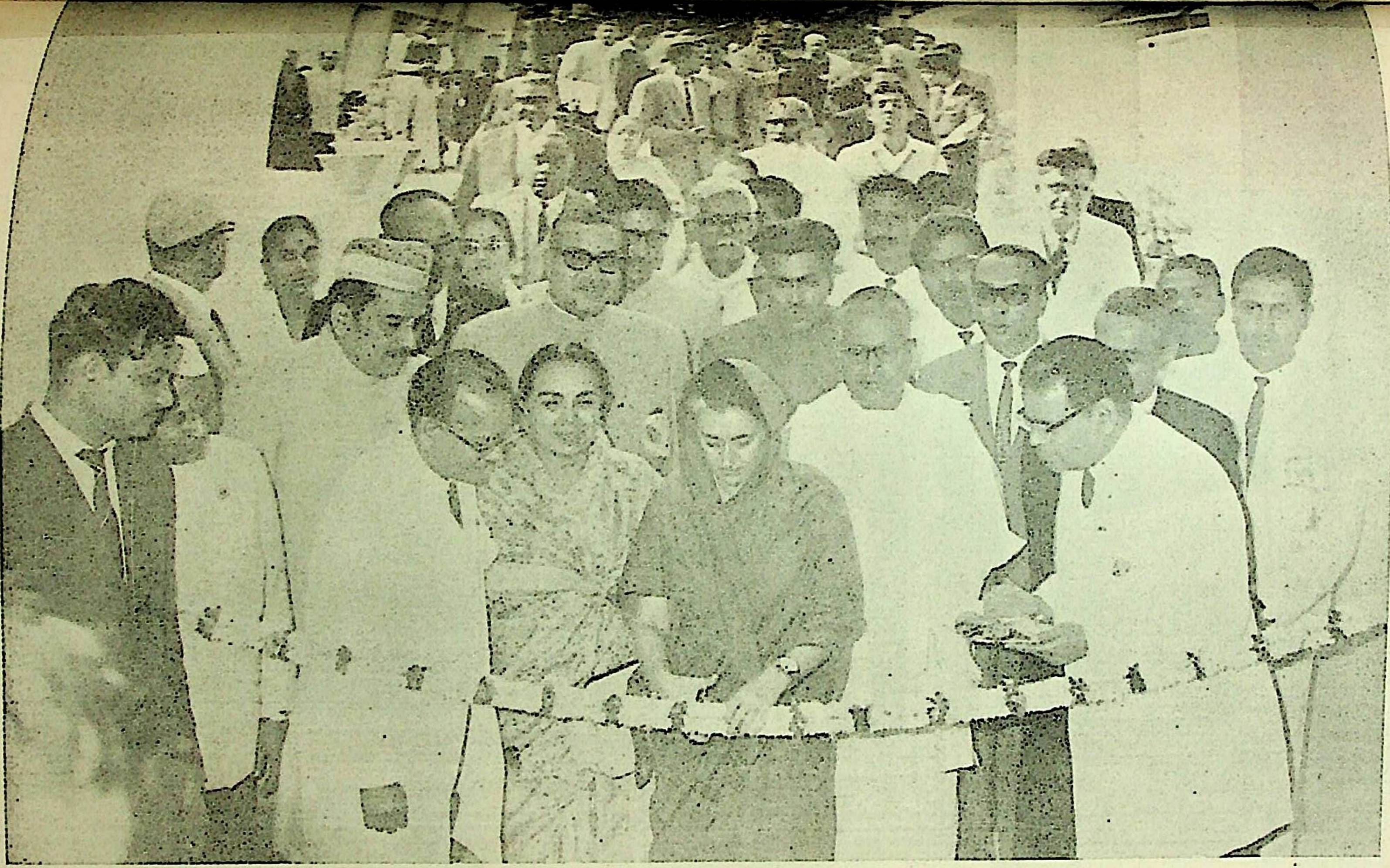

A scene from the inauguration ceremony of Mata Anandamayee Hospital
Prime Minister along with Maharaja of Benares and Hospital Staff

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

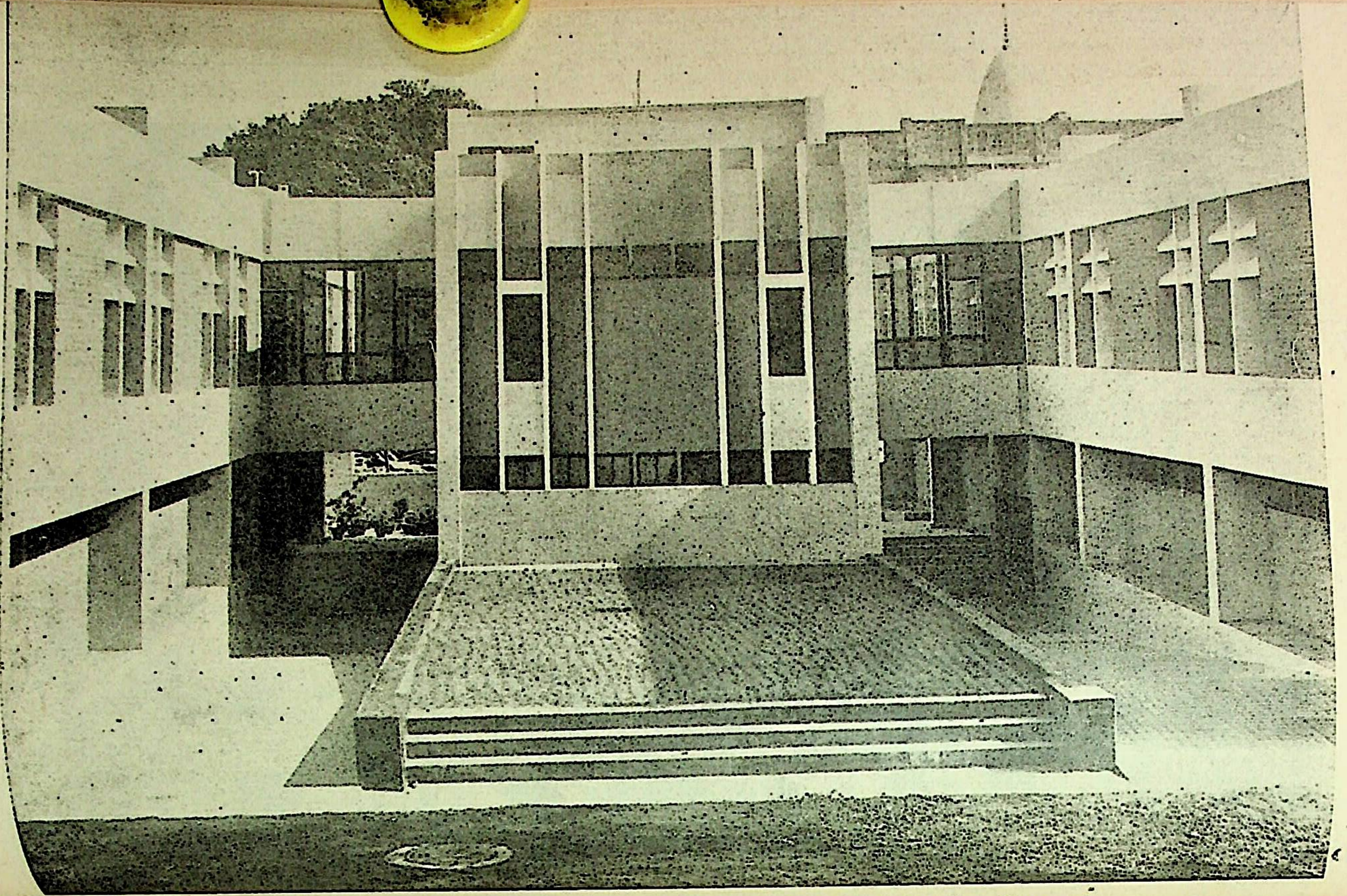

Front view of the newly constructed Mata Anandamayee Hospital at Varanasi

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

at Nimsar town and huge crowds of pilgrims assemble at Nimsar on that occasion. About a lakh of people had come this time and large streams of them flowed in and out of the Ashram grounds for Mataji's *darśana*.

On January 25th, Mataji again alighted in New Delhi where she remained over Sivaratri which fell on February 15th. Her stay was interrupted by a short visit she paid to Dehradun and Hardwar. She reached Kishenpur on February 10th morning, leaving by car for Hardwar on the 11th at midday. She did an incredible amount of work in those 27 hours, visiting twice Kalyanvan where a *Yajñashāla* is being built. On her way to Hardwar, she also halted at our Sadhan Ashram, Jakhan. In between she had any number of private interviews, gave *darsana* several times and arranged for everything conceivable. Time does not exist for Mataji, she can compress any amount of work into the shortest span. At Hardwar she went to Baghat House, Kharkhari, where the Boys' School of the Ashram is stationed at the moment, and also to Santiniketan our Ashram at Kankhal, where a small shrine for a *Siva linga* is being constructed under the bel tree in the garden. On the 12th morning, Mataji was again in Delhi.

Sivaratri in New Delhi was an event of the first order. People who took part said they would never forget that night. While two years ago when Sivaratri had been celebrated at Bandh, the attendance was a record in smallness of numbers (although the function was equally unforgettable) this time the attendance was enormous, as can easily be imagined. The spacious circular hall of the Ashram is exceptionally well suited for this function, only it proved too small. Vratis were seated in 13 circles round *Siva linga* and there were other circles on some of the verandas as well. The *Panchavati*, that had recently been converted into a room with glass walls and a proper roof and had been opened in Mataji's presence, was also used for the Puja. From one of the verandas just opposite Mataji's

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

seat, about a dozen devotees hailing from foreign countries, mostly Americans, were watching the proceedings with unfaltering interest. Brahmachari Nirvanananda who conducted the *Pūjā*, not only dictated to the participants what to do and what to say, but also along with every *mudra*, *mantra*, offering, etc explained its significance, so that nothing was done mechanically or thoughtlessly. This was an innovation, heartily welcomed by all. The *kirtan* between the four *pūjās* was exquisite. In the interval between the first and second *pūjā* a Madras *kirtan* party gave a wonderful performance, Mataji playing the cymbals in rhythm with their music. Later Pushpa and others sang, surpassing themselves. In the small hours Mataji herself led the *kirtan* for a while. Mataji was not only present throughout the whole night, but she never even once reclined. She sat in her place or moved about among the circles of the vratis, encouraging, inspiring and seeing whether everyone had all the ingredients necessary for the ritual. Among those who took part in the *pūjā* were some very high Government officials such as Dr. Triguna Sen, Minister of the Central Govt. and Sri Subimal Dutt I.C.S. (Retd), Chief Vigilance Commissioner. Those who intended to perform only the first *Pūjā* and then break their fast and vigil could not tear themselves away and remained until the morning. To their surprise they felt neither strained nor fatigued. The sacred night and tbe fast without a drop of water or food for 36 hours ended with the distribution of fruit by Mataji to all present. The next day also Mataji was very generous in giving *darśana*.

On the 18th morning she left for Bundh. A car took her up to Anupsahar. From there the road is not suitable for cars, only bullock carts or jeeps can be used. Mataji was taken in a closed jeep along the very dusty path of about 12 miles. Sri Haribabaji as usual gave her a spectacular welcome with elephants, horses, gunshots and a band playing religious tunes. Mataji had taken only very few people with

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

her. Swami Sharananandaji was among those who welcomed her, but had to leave the next day. Sri Haribabaji had arranged for a very fine programme of *satsang* for the whole period of Mataji's stay. Swami Akhandanandaji had come from Vrindaban, Swami Naradanandaji from Naimisharanya, Sri Ramdas Baba from Gwalior and Pt. Kapindraji from Delhi. Every morning a *Rāsalīlā* partly enacted scenes from the life of Sri Gouranga. Every evening after Sri Haribabaji's kirtan and talk the Mahatmas as well as the entertaining Ramabhakta Kapindraji gave lectures. The gatherings became longer every day and continued until 10-30 p.m. On March 3rd and 4th, Holi as well as the birthdays of Sri Chaitanya Mahaprabhu and of Sri Haribabaji were celebrated in great style. Sri Sitaram Sharandas of Ayodhya sang '*vadhai*', the story of Sri Rama's birth, beautifully and with deep feeling: At the end he spread out his cloth in the gesture of begging and said to Mataji: "When Rama was born, Kaushalya Ma in her joy took off her jewellery and distributed it to those present. Mataji what will you give me?" Without a moment's hesitation, Mataji left her seat and went near Sitaramji. With a graceful gesture she folded her hands and bowed into the cloth, saying: "This little child is giving herself." The whole congregation was deeply thrilled and people gave lavishly to the inspired singer who kept nothing for himself. The next day Mataji procured 108 volumes of scriptures such as Upanishads, Bhagavata etc. and presented them to Sri Sitaram Sharandas for free distribution.

Sri Haridham Bundh is a unique place. We have written about it at length two years ago,* when Mataji spent Sivaratri as well as Holi there. Mataji is at her best in such unsophisticated rural surroundings, and even more so when the atmosphere is surcharged with heartfelt devotion and a rare spirit of service as in Bundh.

* See Ananda Vartā, Vol. XV, 1, May 1967, pp. 48-50.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

On March 5th, Mataji accompanied by Swami Akhandanandji and her small party, left for Gwalior at the urgent invitation of Rajmata Vijayaraje Scindhia to be present at the installation of a *Siva linga* on the 6th morning and the unveiling of a statue of the late Maharaja the same evening. Arrangements were excellent and Mataji's short visit was relished greatly by one and all. Swamis Akhandanandaji, Sharananandaji, and Govind Prakashji of Ramatirtha Ashram spoke in the evening. The young Maharaja gave a moving talk about his deceased father. He related how Mataji's influence had brought about a complete change in his father's attitude to life. Before meeting Mataji, he had never had faith in any religion or Mahatma.

On March 7th morning, Mataji and her people were taken by cars to Vrindaban, where Mataji attended the inauguration of a new Radha Krishna temple built by one of Sri Haribabaji's devotees. Mataji remained in Vrindaban only for four days. While Mataji had been in Bundh, Didima and Didi were waiting for her in Delhi, proceeding to Vrindaban on March 1st. While at Delhi, Didima's health deteriorated considerably, so that her attendants felt quite alarmed, as Didima is 92 years old. But Mataji, although no physical information had reached her, at once had the *kheyāla* that Didima should get well again and so Didima recovered. Didima accompanied Mataji to Naimisharanya on the 11th and we are happy to state that she kept well there. Only a handful of people were allowed to go with Mataji and so she could have a delightful rest in our youngest Ashram, which seems to be Mataji's favourite at the moment. One day during Mataji's stay there, Sri Prayag Narayan arranged for a reading of some part of the Ramayana under a banyan tree just outside of the Ashram boundary. Mataji asked him to see that a similar function should take place at least once a year under the same tree, which seems to be rather special.

On March 17th Mataji left for Varanasi. From Naimi-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

sharanya she motored to Hardoi Ry. Station. The train was late and she had to wait at the station for 1½ hours. There were very few people with her. Mataji at first walked about on the platform all by herself and then sat down under a tree. She was in a playful mood. She called a vendor who was selling Sandila *laddus* (sweets) in earthern pots, bought all the seven pots he had with him and distributed them to everyone who came along: kulis, vendors, passengers, railway staff, etc. Then she got some savoury from another vendor, and at last fruit, distributing with full hands. Finally she started singing *kirtan* of her own *kheyāla*. Now only a large crowd collected, sat down around her and joined into the singing. Mataji continued for about half an hour, chanting Rama's names, then Krishna's, Siva's and so forth. She also talked to the people, asking them to repeat God's name and keep their minds on God. None of the people had any idea who Mataji was. It was a delightful interlude, witnessed by only three or four of her companions. At last the train arrived and carried her off to Varanasi where she alighted on the 18th morning, to be present at *Vāsantī Pūjā*, the *Durgā Pūjā* in spring. *Navarātri* started on March 19th, ending with *Ram Naomi*, Sri Rama's birthday on the 27th. The *Pūjā* was celebrated in great style and Mataji was in excellent form. She sang for quite a long time on *Raam Naomi* day and again the next day, when the *image* of the goddess was removed to be immersed in the Ganges.

Mataji is expected to leave Varanasi on April 10th for Ranchi where Didima's *Sannyāsa* Utsava is to be observed on April 13th. Mataji is due to return to Varanasi on the 17th morning. On April 19th the first anniversary of the consecration of *Ananda Jyoti Mandir* is to be celebrated in Mataji's presence. On April 25th Mataji may leave for Bombay where her birthday will be celebrated from May 2nd to May 5th. It is likely that Mataji will spend the rest of the summer in Poona.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

... she motored to Banaras Station. The train was late and she had to wait at the station for 3 hours. Even there were few people with her. Mataji at first walked about on the platform all by herself and then sat down under a tree. She was in a playful mood. She called a vendor who was selling small *laddus* (sweets) in earthen pots, bought all the seven pots he had with him and distributed them to everyone who came along: kulis, vendors, passengers, railway staff, etc. Then she got some savoury from another vendor, and at last fruit, distributing with full hands. Finally she started singing *Nama* of her own accord. [illegible] only a large crowd collected, and [illegible] joined into the singing. Mataji continued for about half an hour, chanting Rama's name, then Krishna's, Siva's and so forth. She also talked to the people, asking them to repeat God's name and keep their minds on God. None of the people had any idea who Mataji was. It was a delightful interlude, witnessed by only three or four of her companions. At last the train arrived and carried her off to Varanasi where she arrived on the 13th morning, to be present at Basanti Puja, the Durga Puja in spring. A[illegible] started on March 19th, ending with Rama Navami, Sri Rama's birthday, on the 22nd. The Puja was celebrated in great style and Mataji was in excellent form. She sang for quite a long time on Rama Navami day and again the next day, when the image of the goddess was removed to be immersed in the Ganges.

Mataji is expected to leave Varanasi on April 1st for Calcutta where [illegible] observed on April 10th. Mataji is due to return to Varanasi on the 15th morning. On April 18th the first anniversary of the consecration of [illegible] Mandir is to be celebrated in Her presence. On April 20th Mataji may leave for Bombay where her birthday will be celebrated from May 2nd to May 5th. It is likely that Mataji will spend the rest of the summer in Poona.

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SHREE SHREE ANANDAMAYEE SANGHA
LIST OF PUBLICATIONS

Hindi

Mātri Darshan—"Bhaiji"	2.50
Sad Vāni "	1.00
Sri Sri Ma Anandamayee—Gurupriya Devi :— Vol. I to XV	40.50
Ma Anandamayee—Dr. Pannalal	3.00
Akhanda Mahāyajña—Gurupriya Devi	2.50
Kirtan Rasa Swarūpa	6.00
Sankirtan, Stav, Arati	0.50
Aamr Vani	6.00

Bengali

Matri Darshan—"Bhaiji"	3.00
Sad Vāni—"Bhaiji"	1.50
Mātri Vāni	0.75
Sri Sri Ma Anandamayee—Gurupriya Devi :— Vol. I–XII	30.50
Ma Anandamayee Upadeshamrita Sangraha	1.50
Akhanda Mahāyajña " "	2.50
Kirtan Rasa Swarūpa	6.00
Suno Bali Maer Kotha—Sailesh Brahmachari	1.25
Mātri Lila Sankirtan	0.31
Anandamayee Ma—Ganga Samiran	2.50
Namavali— "	0.50

Gujarati

Mātri Darshan—"Bhaiji"	1.50
Ma Anandamayee Ke Sannidhyame, Part I —Br. Kantibhai	1.00
Amrit Vani—Br. Dattatreyanand	2.00
Ma Anandmayee—Nonubhai Dave	1.25

English

Mother As Revealed to Me—"Bhaiji"		4.00
Mātri Vāni (Sayings)	1.50, Special edition	2.50
Words of Sri Anandamayee Ma	3·00, " "	5.00
Mother as seen by her devotees	5·50, " "	6.50

Photos etc.

Photos—various sizes	0.50 to 15.00
Lockets	1.50
Album	2.50

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीश्री आनन्दमयी संघ

ॐ मा

मातृ शरणं

Registered with the Registrar of Newspapers for India under No. N. 4726/57

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ānanda VĀRTĀ

HINDI & ENGLISH

श्री श्री आनन्दमयी संघ

ॐ मा

मातृ शरणं

Vol. XVI. July, 1969 No. 3

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्यात्म-साहित्य की अनुपम कृति

श्री श्री माँ आनन्दमयी के अमूल्य उपदेशों का अपूर्व संग्रह

★ अमर-वाणी ★

व्याख्याकार—म०म० डॉ० श्री गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्०

• विभिन्न जिज्ञासु भक्तों के विभिन्न प्रकार के संशयों के समाधान के लिए, विभिन्न स्थान और समय पर जो उपदेश श्री श्री माँ के श्रीमुख से प्रकट हुए थे, उन सबका यथासंभव परिवर्त्तनहीन अवस्था में इस संग्रह में लिपिबद्ध किया गया है।

• श्री श्री माँ के श्रीमुख की वाणी स्वभावतः अत्यन्त सरल और सहज भाषा में होती है, किन्तु कुछ स्थलों पर साधारण पाठकों के लिए भाव समझना कठिन हो जाता है। ऐसे सभी कठिन स्थलों को श्रद्धेय महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज जी ने अपनी व्याख्या के द्वारा सरलीकृत किया है।

• श्री श्री माँ की यह वाणी वास्तव में मातृभक्तों के निकट महावाक्य के सदृश गुरुत्वसम्पन्न है। उनके श्रीमुख से निकले सभी उपदेश महावाक्यों के समान परम आप्तवचन हैं जिसमें शास्त्रों के ही निगूढ़ सिद्धान्त हैं।

★ ४० पौण्ड का उत्तम कागज ★ माँ के दो नयनाभिराम चित्र ★

★ आकर्षक गेटअप और साजसज्जा से युक्त ★

पृष्ठ-संख्या : ३६६ मूल्य : ६) रुपये

श्री श्री आनन्दमयी संघ

भदैनी, वाराणसी—१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Ānanda Vārtā

A quarterly journal dealing mainly with the divine life and teaching of Mata Anandamayee and with other religio-philosophical topics

✻

BOARD OF EDITORS

Mahamahopadhyaya Sri Gopinath Kaviraj, M. A., D. Litt.
Padma Vibhushan

Brahmachari Nirmalananda, M.A., Shastri.

Kumari Lalita Pathak, M. A.

Brahmacharini Atmananda.

Sri K. Bose,—*Managing Editor.*

✻

✻ ANNUAL SUBSCRIPTION ✻

India—(Postage free) Rs. 6/- only
Foreign—(By Sea Mail) Rs. 10/50 or 15 shillings or $ 2·00
" (By Airmail)—Rs. 25/- or £ 1-10-0 (Europe etc.)
" —Rs. 35/- or $ 5.50 (North & South America.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ĀNANDA VĀRTĀ

GENERAL RULE

1. The magazine is published in three separate edtions—(1) Hindi-English (2) Bengali-English (3) English. The magazine is published four times a year, in the months of January, April, July & October. The year begins from January.

2. Subscriptions are always payable in advance. Foreign subscriptions may be sent either by international Money orders or Postal orders.

3. Subscriptions to be sent to :—

The General Secretary, Shree Shree Anandamayee Sangha Bhadaini, Varanasi, (U. P.)

4. All correspondence regarding 'Ananda Varta' should mention without fail the subscription number and be addressed to :—

The Managing Editor, "Ananda Varta", Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhadaini, Varanasi, (U. P.)

5. Complaints about non-receipt of the magazine should be sent *within the month of publication.*

6. Any change of address should be intimated to the Managing Editor at the earliest possible opportunity.

7. Subscribers are requested not to dishonour any issue of the magazine sent by V. P. P., as this entails a loss to the Ashram fund. They may kindly inform us *beforehand* if they desire to discontinue subscribing to the magazine.

Published by Shri K. Bose, for
Shree Shree Anandamayee Sangha, Varanasi.
Printed at the Indian Press (Pte.) Ltd., Varanasi-Branch VARANASI.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CONTENTS

Hindi Section

1--मातृ-वाणी 103
2--श्री श्री माँ की अमर वाणी-- 105
3--श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग--श्री अमूल्यकुमार दत्त गुप्त ... 114
4--देहसिद्धि--महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज ... 119
5--मातृ सत्संग--श्री स्वामी भागवतानन्द गिरि ... 124
6--अनुकम्पाधारा--श्री चरणकमलाश्रिता 128
7--कैलास-मानसरोवर-प्रदक्षिणा--श्री "दत्त" ... 135
8--बम्बई में श्री श्री माँ का ७४ वाँ जन्मोत्सव-- ... 114

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CONTENTS

English Section

1. Mātri Vānī 103
2. About Sri Anandamayi Ma
   —Dr. Bithika Mukerji, M.A., D.Phil. ... 105
3. Man and His Goal—The Light of Viveka ... 116
4. In Search of the Mother
   —Swami Bhagavatanand Giri ... 123
5. Nada Yogi Swami Ḥaridas—Saroj ... 130
6. Sacred Places of Kashmir, Jammu
   and Ladhak—A Devotee ... 135
7. Matri Lila 144

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

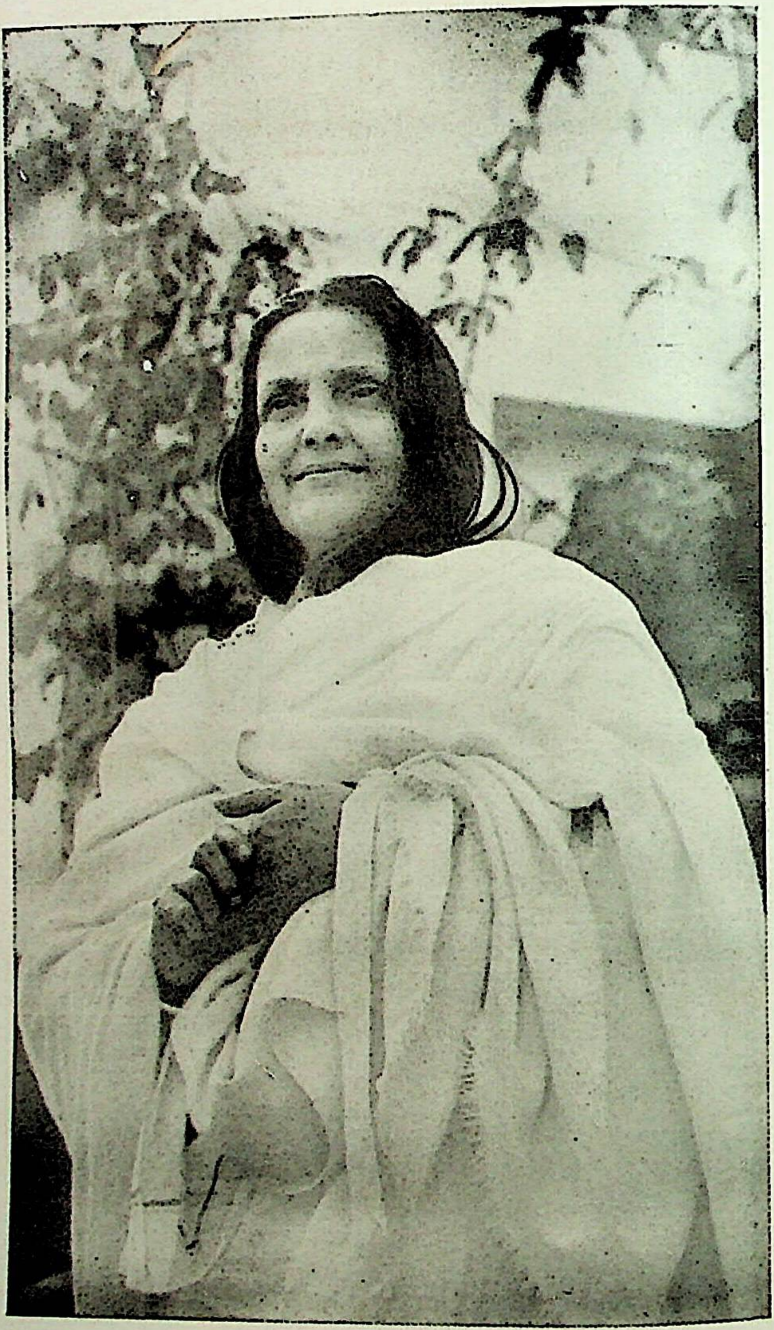

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Ānanda Vārtā

"अमर आत्मा—अमर पन्थी स्वयम्—अपनेमें आप।"

VOL. XVI] JULY, 1969 [NO. 3

—मातृवाणी—

भगवान् पूर्ण। इसलिए पूर्ण के प्रकाश के लिए उनके पास आना। भगवान् के अभाव का बोध ही दुनिया का दुःख। जहाँ भगवान् का प्रकाश, वहाँ दो नहीं—दुःख का स्थान नहीं।

× × × × ×

भगवत् प्राप्ति के लिए चलो—चेष्टा करो। वही तो असली पागल है। पागल माने— पाया गोल—या गया माने- अनन्त प्रकाश होना। इस पागल के लिए पागल होने से दो के लिए जो पागलपन है वह छूट जाता है। कोई किसी शरीर के लिए पागल है। उस पागलपन से मोह-माया में पड़कर अपना शरीर नष्ट कर देता है। भगवान् के लिए पागल होने से शरीर नष्ट नहीं होता।

× × × × ×

भगवत् शक्ति भगवान् के काम में न लगाकर दुनिया के काम में लगाने से शक्ति का क्षय होता है। परमार्थ शक्ति को दुनिया की तरफ लगाने से इस शक्ति की धारा खंडित हो जाती है। साधन करते-करते शक्ति यदि आ जाय, तो उसका क्षय करना उचित नहीं।

× × × × ×

सभी भगवान् की विभूति, उनकी माया,- उनकी लीला, उनका ही खेल। इस खेल के अन्दर जो प्राप्ति हुई है, उसे दुनिया के व्यवहार में लगाना ठीक नहीं।

× × × × ×

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक है महामाया और एक है विषय माया—विषय भोग। तुम अमृत के यात्री होकर यदि उनके रास्ते में न चलो तो विघ्न। विषय में पड़कर विभूति के बीच में फँस कर नहीं रहना। विभूति—यह भी एक स्थितिमात्र है। यह किसी का भला भी कर सकती है, खराब भी हो सकता है। पर इसके द्वारा चरम परम नहीं मिलेगा, शक्ति प्राप्त करके उसका क्षय नहीं करना चाहिए। आत्मप्रकाश के लिए चेष्टा करो। नहीं तो विघ्न—पतन।

× × × × ×

एक तो है शक्ति का व्यवहार करना, और एक होता है स्वाभाविक। अपने आप हो जाता है। शक्ति का व्यवहार करने से 'मैं' रह जाता है। इसलिए इससे पतन हो सकता है। पर जहाँ स्वाभाविक वहाँ यह बात नहीं।

× × × × ×

मोह में फँस जाना और प्रेम में अपना प्रकाश। मोह में फँसने से हाय हाय करना पड़ता है।

× × × × ×

जो परम वन्धु वह कभी धोखा नहीं देता। दुनिया की दृष्टि से त्याज्य पुत्र हो सकता है परन्तु उस वन्धु का त्याग नहीं होता।

——

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्री माँ की अमरवाणी

(ब्रह्मचारी विरजानन्दजी से प्राप्त)

महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज कृत व्याख्या के साथ

प्रश्न के उत्तर में मां—गुरु बार-बार क्यों, और गुरु क्यों किया जाय—यह सब जो तुम पूछते हो—गुरुस्थान किन्तु एक (ही है)। जिस दीक्षा से जो जो प्रकाश चाहता है वही तो होगा। एक स्थान से तुमने दीक्षा ली और एक जगह जाकर श्रद्धा हुई—चेहरा देखकर, भाव देखकर वा तत्त्वकथा सुन कर; एक तरफ से सामयिक भक्ति श्रद्धा आई। पर स्मरण रखो, जहाँ गुरु शक्तिसम्पन्न, वहाँ बाहर से सब समय, उसी मुहूर्त में प्रकाश न पाने पर भी पीछे देखोगे तुम्हारा किस सूत्र में लाभ हुआ—खुल जाना चाहिए, जहाँ जगद्गुरु जाता है कहा है वहाँ तो कहते हैं कि वे गति-स्थिति-अस्थिति का लक्ष्य भेद करते हैं। वह महान् तीर जगद्गुरु, सद्गुरु के साथ में है। वह गुरु जैसे भी प्रकाशित हों, होना ही चाहिए, किसी-किसी समय कहते हैं न कि उस धारा में पड़े रहो, देखोगे कि धारा एक ही है। एक जगह जाकर अनुभूति नहीं हुई और एक जगह जाकर हुई। पर जहाँ भी हो, वास्तविक ग्रहण जहाँ, (होगा) तब देखोगे कि एक धारा के बीच अनन्त धारा हैं और अनन्त धारा के बीच वही एक धारा।

प्र०—एक जगह दीक्षा ली, और एक जगह जाकर शक्ति पाई—तब क्या दीक्षा में शक्ति नहीं ?

माँ—हाँ, निश्चय ही मन्त्र में शक्ति है। गुरुशक्ति यदि न मिले, मन्त्र शक्ति की क्रिया तुम पाओगे ही। जहाँ मंत्रद्रष्टा ऋषि, मंत्र के अन्दर वह शक्ति अक्षुण्ण वर्तमान है—यह जान लो। फिर किसी जगह सम्भव है तुम्हें शक्ति मिली,—सामयिक शक्ति की क्रिया तुमने पाई किन्तु स्थायी-अस्थायी सम्बन्ध में द्वन्द्व। किन्तु निर्द्वन्द्व प्रकाश होने पर जानोगे कि वहाँ गुरुशक्ति प्रदत्त प्राप्ति—यह मन में रखना। गुरुशक्ति की बात तो विशेष है। किसी का संग पाकर अपने गुरु के ऊपर जो श्रद्धा बढ़ गई—गुरु ने ही तुम्हें उस भाव से ग्रहण किया। जब वे तुम्हें जनाएँगे तभी समझ में आएगा कौन मुझे यहाँ ले आया। और यहाँ, वहाँ—वह कौन, किसको कहते हैं—वह ही। जब तक नहीं पाओगे "वह" "भी" मालूम पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि से अन्य स्थान है। वहाँ जाकर या पाकर—मेरे ही गुरु इस रूप में। फिर शायद दीक्षा ली, दूसरे के पास जाने का प्रयोजन नहीं। संस्कार के अनुसार ग्रहण शक्ति तो अलग-अलग है इसलिए विभिन्नता होना तो स्वाभाविक है। पर जहाँ गुरु शक्ति सम्पन्न हैं, वहाँ जिसका जो प्रयोजन, अपने आप ही प्रकाश में आता है, योगायोग भी हो जाता है। अरे देखो—जीवस्वभाव मनुष्य क्या करे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जहाँ जिस रूप में वे प्रकाशित हों—वे ही स्वयं गति स्थिति। किसकी किस गति से प्रकाशित होंगे। खींच लेंगे—वे स्वयं ही वह योगायोग कर लेते हैं। इसलिए भावना, अनुताप न करके इष्ट कर्म में मन रखना।

गुरु का अनन्त रूप से अनन्त प्रकाश। यदि कहो कि जाग्रत गुरु न होने से नहीं चलेगा तो यह ठीक बात है। और यदि कहो दीक्षा लेने से ही सब हो गया वह भी ठीक बात है। किन्तु गुरुशक्ति का जागरण होना चाहिए क्योंकि अपने को गढ़ेगा तो अपने को पाने के लिए। हाँ, किसी क्षेत्र में सामयिक एक अस्वाभाविक शक्ति का प्रकाश पाया पर जो चाहते तो वह तो पाते नहीं यह भी उनके राज्य में वृथा नहीं। एक चक्कर पाना था, उन्हीं ने एक यह चक्कर देकर धक्का देकर अपनी तरफ खींच लिया। वे आश्रय देकर फिर तो लौटाते नहीं। मुमकिन है कितने ही जन्म निकल जाते घूमना पड़ता, वे चक्कर देकर संक्षेप करके ले भी तो सकते हैं। यह भी उनके राज्य में सम्भव पर है।

प्र०—पुस्तक देखकर पसन्द करके मन्त्र लेने से क्या होता है? राम ठाकुर महाशय से पूछा था—उन्होंने कहा, जहाँ "मैं" ने पसन्द करके लिया वहाँ, "मैं" रह जाता है।

माँ—यह तो ठीक ही है। स्वयं लेने से अहंक्रिया का संशय तो स्वाभाविक ही है—वहाँ गुरुशक्ति कहाँ? फलाफल क्या होगा—सोचो, द्वन्द्व आना तो स्वाभाविक ही है। जो तुम पूछते हो वह द्वन्द्व की ही बात है। गुरु पाना माने आश्रय पाना। नित्य आश्रित जो है उसका उद्घाटन गुरु के सिवा कौन करेगा? विश्वजगत् जो गुरुरूप से नित्य है—उसी के प्रकाश के लिए यही तो गुरु की सेवा शिष्य की—जिससे शिष्य गुरु सेवा का अधिकारी हो सके। देखो न पिता माता शिशु की सेवा करते हैं अपनी उसी स्थिति की ओर यात्रा कराने के लिए। वही फिर समय पर पिता माता होगा। यही तो अनन्त रास्ते चले आए हैं बाबा आवहमान काल से। सब अधिकार अनधिकार तुम्हीं में तो हैं। उद्घाटन, अनुद्घाटन—जहाँ वाक्य नहीं—उसी प्रकाश के लिए इस महायात्रा को जानो। तभी तो अपने में अपना जो है उसके प्रकाश का रास्ता। निर्भरता का सहायक तो है ही।

व्याख्या

१. बार बार गुरुकरण

अनेक समय देखा जाता है कि कोई-कोई एक गुरु से उपदेश प्राप्त करके शेष पर्यन्त उन्हीं को पकड़ कर नहीं रह पाते। चाहे जिस कारण से हो, दूसरे स्थान से उपदेश ग्रहण करते हैं। यह ठीक है कि नहीं इसकी आलोचना करने की मेरी इच्छा नहीं। किन्तु ऐसा होता है। प्राचीन काल में भी ऐसा होता था—वर्तमान काल में तो होता ही है। और यह भी देखा जाता है कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोई-कोई मात्र एक बार गुरुकरण करके शेष पर्यन्त उन्हीं के उपदेश में निष्ठा रख कर यथाशक्ति क्रिया करके जीवन के पथ पर अग्रसर होते हैं। इस सम्बन्ध में औचित्य, अनौचित्य की समालोचना न करके कुछ-कुछ सरल सत्य के विषय में चिन्ता करने से आपात प्रतीयमान रहस्य के ऊपर प्रकाश का संचार होगा ऐसा मन में आता है। हम लोग साधारणतः दीक्षागुरु और शिक्षा-गुरु में भेद करते हैं। तदनुसार दीक्षागुरु और शिक्षागुरु में पार्थक्य भी देखा जाता है। और अनेक स्थानों में दीक्षागुरु ही शेष पर्यन्त शिक्षागुरु रूप में शिष्य के चित्त को उद्बुद्ध करते हैं। प्रश्न का समाधान करने के पूर्व यह जान रखना आवश्यक है कि गुरुशक्ति मूल में एक ही है। किन्तु केवल यही नहीं। गुरुशक्ति के साथ शिष्य की श्रद्धा एवं विश्वास की योजना न कर सकने पर सम्यक् फल लाभ की आशा नहीं करी जा सकती। सम्यक् भाव से विचार न कर सकने से देखा जाता है कि शिष्य के अज्ञान की निवृत्ति के लिए एक विलक्षण कारण-समष्टि कार्य करती है। इसके बीच में गुरुशक्ति है। शिष्य की विश्वास मूलक शक्ति है एवं गुरुदत्त मंत्र की अन्तर्निहित निज शक्ति है। इसके अतिरिक्त अनुकूल देश और काल आदि की शक्ति भी है ऐसा जानना होगा। जो कार्य शिष्य की अज्ञान निवृत्ति और ज्ञान के विकास आदि के रूप में कालक्रम में प्रस्फुटित हो उठेगा, उसके लिए जिस परिमाण में शक्ति आवश्यक है वही शिष्य की पूर्ण बोधिनी शक्ति है। गुरु में यदि पूर्ण शक्ति जाग्रत हो और यदि वह उसे शिष्य के अधिकार के अनुसार एक ही समय में अथवा क्रमशः प्रयोग करें तो एक गुरुशक्ति से ही शिष्य के उद्धार का कार्य निष्पन्न हो सकता है यहाँ तक कि शिष्य के विश्वास की कमी एवं अन्यान्य कारण वर्ग की दुर्बलता रहने पर भी शिष्य के इष्टलाभ में बाधा नहीं पड़ती क्योंकि प्रयोजन अनुसार गुरुशक्ति वह सब अभाव पूरे करके कार्यनिर्वाह करने में समर्थ हैं। यहाँ यह भी याद रखना होगा कि गुरु में पूर्णमात्रा में शक्ति रहने पर भी यदि वे प्रयोगकाल में शिष्य के अधिकार का विचार करके क्रमानुसार मात्राभेद करके उसका प्रयोग करें तो वह भी असम्भव नहीं गुरुशक्ति का मूलस्वरूप अनुग्रह है और गुरु में वह जाग्रतभाव से कार्य करता है। इस अवस्था में क्रमिक शक्ति की क्रिया शिष्य के कल्याण के लिए ही होती है। शिष्य की आधार शक्ति जैसे-जैसे प्रबल होगी गुरु की बोधनशक्ति मात्रा अनुसार शिष्य में काम करेगी। शिष्य का अनुभव सब समय सत्यासत्य का मानदंड नहीं है। अनुभव स्वाभाविक नियम से होने की ही बात है किन्तु अवस्था विशेष में मंगलमय सद्गुरु की कृपा से, उन्हीं की इच्छा से शिष्य का अनुभव, शिष्य के ही कल्याण के लिए, कुछ समय के लिए रुद्ध भी हो सकता है। ऐसी अवस्था में सरल हृदय शिष्य भ्रम में पड़ सकता है क्योंकि अनुभव का प्रकाश न पाकर उसका हृदय स्थिर विश्वास की अनेक समय रक्षा नहीं कर पाता है। फिर गुरु यदि शक्तिशाली हों और शिष्य यदि निष्कपट और सरल हृदय हो तो परिणाम मंगलमय ही होगा। साधारणतः जो अनुभव एक के बाद एक क्रमशः घटित होते हैं, स्थान विशेष में उस प्रकार के अनुभव सम्भव है, उदय न हों। किन्तु

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्तिम अनुभूति अवश्यम्भावी। विश्वास और धैर्य न होने से ऐसे स्थल में चित्त चंचल हो जाता है। साधारणत: विकास क्रमश: होता है किन्तु प्रकाश होता है मुहूर्त के अन्दर। इस जगह गुरु प्रबल और शिष्य दुर्बल।

किन्तु जहाँ गुरु दुर्वल एवं शिष्य प्रबल, वहाँ शिष्य की विश्वास शक्ति सब बाधाओं को अतिक्रमण करके काम करती है। गुरु की शक्ति दुर्वल होने पर भी शिष्य के ज्वलन्त विश्वास के प्रभाव से उस दुर्वल शक्ति के मध्य ही महाशक्ति आत्मप्रकाश करती है। विश्वास मनुष्य की एक असाधारण सम्पत्ति है। चित्त विकल्पशून्य न होने से विश्वास हो ही नहीं सकता। विकल्प संशय का ही नामान्तर है। शिष्य की यदि गुरु के ऊपर श्रद्धा हो तो उस विशुद्ध श्रद्धा के फलस्वरूप असम्भव भी सम्भव हो जाता है। स्मरण रखना होगा कि मूल में एक ही शक्ति काम कर रही है। गुरुसत्ता में जो गुरुशक्ति रूप में कार्य करती है शिष्य की सत्ता में वही विश्वास रूप में काम करती है। लौकिक दृष्टि से गुरु अयोग्य प्रतीत होने पर भी शिष्य की विश्वासपूर्ण दृष्टि से वे भगवान् के प्रतीक रूप ही प्रतीत होते हैं।

२. मंत्र-शक्ति

इसके बाद गुरुदत्त मंत्र की शक्ति भी विचारणीय है। मंत्रशक्ति यदि जाग्रत हो, तो व्यक्तिगत रूप से गुरु साधारण होने पर भी, वह जाग्रत मंत्र शक्ति शिष्य का कल्याण साधन कर देती है। इस शक्ति को सम्प्रदायगत शक्ति कहते हैं। किसी सिद्ध महापुरुष की जाग्रत शक्ति सञ्चारित होकर लौकिक गुरुपरम्परा के अन्दर से किसी श्रद्धालु व्यक्ति विशेष के ऊपर पतित हो सकती है। इस स्थान में व्यक्तिगत गुरु उतना उन्नत न होने पर भी उसकी प्रदत्त शक्ति सम्प्रदाय-अनुगत होने से शिष्य का उद्धार करने में समर्थ होती है। इस प्रकार के क्षेत्र में अधिकांश भाग में गुरु से शिष्य की योग्यता अधिक मात्रा में प्रकाशित हो सकती है। इस प्रसंग में एक और विषय आलोचना के योग्य है। यह है मंत्र विचार और उसके साथ-साथ शिष्य के प्राक्तन जीवन की साधना का विचार। मंत्र विचार तन्त्र ग्रन्थों में नाना प्रकार से किया गया है, क्योंकि सब मंत्र सबों के पक्ष में अनुकूल नहीं भी हो सकते हैं। व्यक्ति विशेष के लिए कोई मंत्र मित्र का काम करता है और कोई शत्रु का काम करता है और कोई मंत्र मित्र भी नहीं, शत्रु भी नहीं, उदासीन। गुरु का कर्तव्य है अरिमन्त्र का त्याग, उदासीन मंत्र का भी परिहार। केवल मित्र मंत्र का आवाहन करके सञ्चार करना आवश्यक है। साधारणत: संसार में ज्योतिष विज्ञान की सहायता से एवं अन्यान्य प्रचलित प्रणालियों के अनुसार मंत्र निर्वाचन पूर्वक मंत्रदान होता है। गुरु के अन्दर योगशक्ति यदि जाग्रत न हो तो यह निर्वाचन सब समय ठीक नहीं होता। इसके अतिरिक्त और भी एक विषय आलोच्य है। वह है साधक के प्राक्तन कर्म संस्कार के साथ योजना। पूर्व जन्म में कृत कर्म को न जान सकने से उसके संग योजना सम्भव नहीं। इसीलिए गुरु का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्तव्य है ज्ञानदृष्टि और योगदृष्टि द्वारा दीक्षार्थी शिष्य का पूर्व संस्कार जानकर उसी धारा से उसे योजित करना। यह सब हुई विधि विधान की बात।

३. प्रकृत गुरु

असली बात यह है किन्तु कि मूल में प्रकृत गुरु एक ही हैं—वे जगद्गुरु हैं शिष्य में श्रद्धा एवं विश्वास रहने पर और जाग्रत गुरु द्वारा योजना व्यापार सम्पन्न होने पर उसी एक परमगुरु के आश्रय में ही शिष्य को संचरण करना होता है। चाहे किसी भी व्यक्ति वा आधार के माध्यम से क्यों न हो, वे सब समय के शिष्य को अपनी दृष्टि के सामने रखते हैं और प्रयोजन के अनुसार ठीक रास्ते पर नियन्त्रण करते हैं। फिर भी इसके मूल में रहना चाहिए, इस परमसत्ता के प्रति विश्वास एवं साक्षात् भाव से या परम्परा से उनकी अनुग्रह शक्ति के संग योग। यही हुई पारमार्थिक सत्य की ओर से तत्त्व विचार की प्रणाली। फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर भिन्न गुरु का समर्थन भी पाया जाता है। किन्तु याद रखना होगा कि मूल में किन्तु सब एक ही हैं। आचार्य अभिनवगुप्त के जागतिक दृष्टि से विभिन्न गुरु थे किन्तु प्रकृत प्रस्ताव में यह सब लौकिक व्यवहार की बात है—मूल में उनका गुरु एक और अखण्ड—जिनको उन्होंने परमशिव नाम देकर संसार के सामने प्रकाशित किया है।

माँ ने कहा—"गुरु का स्थान किन्तु एक है।" यह बात अत्यन्त सत्य है। बाहरी दृष्टि से गुरु एक अथवा बहु चाहे क्यों न हों, तत्त्व दृष्टि से गुरु एक से भिन्न दो नहीं। सब गुरुओं के भीतर एकमात्र उन्हीं का प्रकाश है। जो अध्यात्म जगत् के रहस्य से अवगत हैं वे जानते हैं कि गुरुपंक्ति जिस प्रकार की भी हो गुरु एक छोड़ दो नहीं। ओघ दृष्टि से गुरु का तीन प्रकार का विभाग है। उसके अनुसार दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ, यह तीन द्वार प्रतिष्ठित हैं। दिव्यौघ शब्द से दिव्य देहधारी आत्मा से तात्पर्य है। सिद्धौघ कहने से जिन सब योगियों की काय सिद्धि हुई है, उनके अन्तर्गत सिद्ध आत्मा समझी जाती है। मानवौघ शब्द से मानव देहधारी गुरु समझना चाहिए। कहना व्यर्थ है कि प्रत्येक पंक्ति के गुरु ही शुद्ध ज्ञान का सञ्चार करने में समर्थ हैं। सभी सद्गुरु हैं। देह एवं स्थिति भेद से मानव सिद्ध और देवता में पार्थक्य होने पर भी सद्गुरु हिसाब से सब ही समश्रेणी भुक्त हैं। तथापि सब मनुष्य सब श्रेणियों के गुरुओं से ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि मनुष्य, अर्थात् शिष्य जैसा आधार सम्पन्न होता है उसी का अनुसरण करके ही उसको गुरु प्राप्त होता है। यह आधार भेद अत्यन्त दुरूह और दुर्ज्ञेय तत्त्व है। देहात्मबोध की मात्रा के साथ इसका सम्बन्ध है। दृष्टान्त स्वरूप कहा जा सकता है कि शङ्कराचार्य सिद्ध कोटि के गुरु थे। किन्तु शङ्कर के गुरु गोविन्दपाद के गुरु थे मानव कोटि के। अवश्य कोई-कोई उन्हें सिद्ध कोटि में स्थान देते हैं। उनका नाम था गौड़पाद। गौड़पाद के गुरु सिद्ध कोटि के थे। सम्प्रदाय के जो आदिगुरु वे शिव, दिव्यकोटि के अन्तर्गत। सांख्य ज्ञान की

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दृष्टि से देखा जाता है कि आसुरि पंचशिख के गुरु थे। दोनों ही मानव कोटि के अन्तर्गत, आसुरि के गुरु थे कपिल मुनि—वे थे सिद्ध कोटि के अन्तर्गत। इस प्रकार विभिन्न श्रेणी विभाग हो सकता है किन्तु मूल है वा आदिगुरु परमेश्वर, वे ही जगद्गुरु इसलिए तत्त्वदृष्टि से गुरुशक्ति पारमेश्वरी शक्ति से भिन्न और कुछ नहीं। परमेश्वर की अनन्त शक्ति के मध्य में जो उद्धार शक्ति है, अर्थात् जो पतित जीव को शोधन करके उसका उद्धार करती है एवं चिन्मय दिव्य स्वरूप में प्रतिष्ठित करती है वही गुरु शक्ति है। किसी भी योग्य आधार के भीतर यह शक्ति काम करती है और अनेक समय आधार की योग्यता न होने पर भी देश और काल के अनुसार किसी भी अवस्था में काम कर सकती है।

प्रसंगतः माँ ने कहा, "जगद्गुरु जहाँ कहते हैं, गति, स्थिति अस्थिति का लक्ष्य भेद करते हैं इसीलिए तो। वह "महान तीर" जगद्गुरु सद्गुरु के हाथ में है। वे गुरु जिस तरह से प्रकाशित हों। होना ही चाहिए।"

माँ के वाक्य का प्रकृत तात्पर्य यह है कि जगद्गुरु ही प्रकृत गुरु हैं क्योंकि वें ही लक्ष्य भेद कर देते हैं। बाहर से कैसा भी वा कितनी भी संख्या के गुरु क्यों न हों किन्तु मूल में गुरु वे ही हैं जो लक्ष्य भेद कर देते हैं। लक्ष्य भेद करने की शक्ति केवल एक ही स्थान में है। वह किसी भी आधार को आश्रय करके निर्दिष्ट देश एवं काल में अपना कार्य करती रहती है। बाहरी गुरु के रूप में जो भी हों, उनके द्वारा ही यह महाकार्य सम्पन्न हो सकता है क्योंकि एकमात्र अखण्ड सत्ता के सिवा, अर्थात् उसकी महाकृपा के बिना यह कार्य कोई भी नहीं कर सकता। लोकदृष्टि से गुरुत्व जिस किसी आधार पर आरोपित क्यों न हो, वस्तुतः वही महासत्ता ही सब की गुरु एवं प्रकृत गुरु हैं। भगवान् पतञ्जलि परमेश्वर का ही प्रकृत गुरु नाम से वर्णन करते हैं। उन्होंने कहा है "स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।" जागतिक व्यावहारिक गुरु को अस्वीकार नहीं करते पर उन्होंने कहा है कि इन सब गुरुओं के भी गुरु परमेश्वर हैं। जागतिक गुरु काल में रहकर काम करते हैं किन्तु जगद्गुरु कालातीत हैं।

एक गुरु त्यागकर अन्य गुरु नहीं करना चाहिए—यह मत भी शास्त्रीय है और प्रयोजन होने से एक गुरु को त्याग कर अन्य गुरु ग्रहण करना चलता है—यह मत भी शास्त्रीय। शास्त्र में लिखा है—.

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत्।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत्॥

साथ ही साथ यह भी शास्त्र में है—

लब्ध्वा कुलगुरुं सम्यक् न गुर्वन्तरमाश्रयेत्।

अवस्थानुसार दोनों ही मत सत्य है। शक्तिरहस्य नामक ग्रन्थ में है :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कौलिके गुरवोऽनन्ताः ।

इस दृष्टि के अनुसार कूल साधना में अनेक गुरुओं की सम्भावना है और वह शास्त्र विरुद्ध नहीं। यह सब मतवादी कहते हैं कि कल्पसूत्र में "एको गुरूपास्ति" प्रशंसायोग्य मानकर वर्णित हुआ है। तब भी आचार्यगण कहते हैं कि यह ज्ञानी गुरु के सम्बन्ध में प्रयोज्य है। किसी-किसी स्थान पर गुरुत्याग की बात नहीं है—ऐसा नहीं-। तदनुसार शास्त्र में ऐसा वचन भी पाया जाता है—

गुरोरप्यवलुप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥

इसके अनुसार कुमार्गगामी गुरु को परित्याग करने की विधि है। और साथ ही साथ अध्यात्म विज्ञान के इतिहास में ऐसा भी देखा जाता है कि शिष्य एक बार जिसको पूजा का अर्घ्यदान कर चुका है, उनके शतसहस्र अपराध होने पर भी उन्हें कभी त्याग नहीं करता। शिष्य के विश्वास की निर्मलता गुरु के सहस्र प्रकार के दोषों को भी ढक देती है। इस अवस्था में शिष्य सोचता है मैं जो सब नीति उल्लंघन का काम गुरु में देखता हूँ वह मेरी परीक्षा करने के लिए गुरुरूपी भगवान् का सृष्ट कौशलमात्र है। इस तरह गुरु की विभिन्न प्रकार की कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होकर शिष्य यथासमय गुरु की महाकृपा प्राप्त करके एक मुहूर्त में सिद्धि लाभ करता है। मैं जो कह रहा हूँ उसका दृष्टान्त महायोगी तिलोपा के शिष्य नरोपा के जीवन-चरित्र में मिलता है। यह नरोपा सेकोद्देश नामक ग्रन्थ की टीका के रचयिता महासिद्ध रूप से इतिहास में कीर्तित हुए हैं। इनके शिष्य थे मारपा और मारपा के शिष्य थे अपूर्व सिद्धिसम्पन्न मिलेरेपा। इस दृष्टि के अनुसार गुरु के दोषगुण का विचार करना शिष्य का काम नहीं एवं उसके पक्ष में सम्भव पर भी नहीं। इस दृष्टि से गुरुकरण न करने से इतनी क्षति नहीं किन्तु एक वार गुरुपद पर वरण करके, उनके विरुद्ध विद्रोह करना अध्यात्म जीवन का सहायक नहीं।

सुतरां सर्व अवस्था में स्मरण रखना चाहिए कि वास्तविक पक्ष में गुरु एकमात्र भगवान् ही हैं। लौकिक गुरु में अलौकिक शक्ति हो सकती है पर वह गुरुशक्ति नहीं। उनके माध्यम से प्रकृत गुरुशक्ति कार्य कर सकती है। पक्षान्तर में शिष्य का यदि विशुद्ध विश्वास हो और विचार-शक्ति द्वारा वह विश्वास कलंकित न हो तो गुरुस्थिति चाहे जैसी भी हो, उससे क्षति नहीं। स्वयं जगद्गुरु शिष्य के विश्वास के प्रभाव से उस लौकिक गुरु के जरिए अपनी कृपा शक्ति का संचार कर देते हैं।

मंत्र शक्ति के सम्बन्ध में माँ ने कहा है कि गुरुशक्ति प्राप्त न होने पर भी मंत्र की जो शक्ति है वह प्राप्त हो सकती है। इस स्थान पर मंत्र शक्ति कहते हुए माँ ने मंत्र द्रष्टा ऋषि के विषय में इङ्गित किया है। इस प्रसंग में यह जानना उचित है कि प्रत्येक मंत्र के एक मूल द्रष्टा

2

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं जो उस मंत्र के ऋषि हैं—जिनके निकट उस मन्त्र ने सर्वप्रथम आत्म प्रकाश किया। जैसे गायत्री मंत्र के ऋषि हैं विश्वामित्र। यह भी बहुत कुछ उसी तरह है। इस दृष्टि से विचार करने पर समझ में आएगा कि गुरु शक्ति शब्द का अर्थ गुरु की अनुग्रह शक्ति है जो मंत्र शक्ति को आयत्त करके एवं उसको करण रूप से ग्रहण करके शिष्य के हृदय को संचारित करती है। यद्यपि प्रकृत प्रस्ताव के मूल में दोनों शक्ति ही एक महाशक्ति का प्रकार भेद हैं। तथापि स्थूल दृष्टि से दोनों में कुछ भेद है। इसीलिए मंत्र जप के प्रसंग में मंत्र द्रष्टा ऋषि का चिन्तन अनेक जगह विहित है। गुरु शक्ति की महिमा अप्रतिहत है। गुरु शिष्य का सम्बन्ध ऐसा रहस्यमय है कि वाह्य दृष्टि से न समझने पर भी इसे प्रायः सत्य कह कर मानना पड़ेगा कि शिष्य की अकृत्रिम आन्तरिक श्रद्धा जो गुरु के देह के ऊपर पतित होती है, अज्ञात सार से उसी स्थान से गुरु-शक्ति उद्रिवत होकर शिष्य का उद्धार करने में प्रवृत्त होती है। शिष्य पहले समझ नहीं पाता कि गुरु किस आकार में अवस्थित होकर उस पर कृपा क र रहे हैं। जब वह जाग उठता है तभी सब प्रकाश पाता है। किस शरीर का आश्रय करके जगद्गुरु ने उसे जगाया है वह फिर गोपन नहीं रहता। जाग्रत न होने तक अवश्य ठीक-ठीक समझ में नहीं आता कि किस केन्द्र से शक्ति के प्रवाह ने निर्गत होकर उसे जगाया है।

माँ ने और भी कहा कि साधारणतः लोग अपने संस्कार के अनुसार किसी स्थान से दीक्षा ग्रहण करते हैं और एक स्थान में ही अपने को आवद्ध करके रखते हैं, किन्तु शक्तिसम्पन्न गुरु होने से शक्ति के प्रभाव से ऐसी अवस्था होती है कि जिसके लिए जो आवश्यक है उसकी प्राप्ति का योगायोग उस शक्ति सम्पन्न केन्द्र के माध्यम से अपने आप हो जाता है। शक्ति सम्पन्न गुरु प्रयो-जन होने से स्वयं ही योगायोग कर लेते हैं। शिष्य का एकमात्र कर्तव्य है कि गुरुदत्त कर्म में सरल अन्तःकरण से निविष्ट रहे।

४. ग्रन्थों से अपना-अपना मंत्र निर्वाचन

कोई-कोई सोचते हैं कि स्वयं शास्त्र ग्रन्थ देखकर अपनी पसन्द के अनुसार मंत्र निर्वाचन कर लें यह प्रक्रिया बिल्कुल प्रशंसनीय नहीं—क्योंकि मंत्र तभी प्रकृत मंत्रपद वाच्य है जब वह गुरुमुख से निर्गत होता है क्योंकि गुरु के मुख से निकलने के साथ ही साथ मंत्र वीर्यशाली होता है—कारण—गुरुमुखादेव विद्या वीर्यवती भवति। यही शास्त्र का अनुशासन है। मंत्र में वीर्य न होने से वह वैखरी अक्षर का आडम्बर मात्र है। मंत्र का प्रकृत उद्गम स्थान कुंडलिनी है। परा-वाक् स्वरूप से कुंडलिनी के बीच सभी मंत्र विलीन रहते हैं। कुंडलिनी महामाया अथवा बिन्दु-स्वरूप। कुंडलिनी से निर्गत होने के साथ ही मंत्र विशुद्ध ज्योति का आकार धारण करता है। यह विशुद्ध ज्योति चैतन्य शक्ति का ही नामान्तर है। यह पश्यन्ती भूमि की अवस्था है। इस अवस्था में मंत्र चैतन्यात्मक और बोध स्वरूप होता है। यह शब्द और अर्थ का अभिन्न स्वरूप है। पश्यन्ती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूमि से चैतन्यमय वाक् वा शब्द नादभूमि पर उत्थित होता है। यह नादशब्दात्मक और उस शब्द के साथ शब्दवाच्य अर्थ का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह अर्थ ही मंत्र प्रतिपाद्य देवता है। यह मनोराज्य का विषय है, इस मध्यमा भूमि से वैखरी भूमि में बाह्य वायु का स्पर्श स्थूलभाव से प्राप्त होकर कंठ द्वारा मंत्र वायुमंडल में उच्चारित होता है। यह शब्द श्रोता शिष्य के कान में प्रविष्ट होकर उसके हृदय क्षेत्र में प्रविष्ट होता है। यह ठीक बीज बोने के समान क्रिया है। यह मंत्र बीज-स्वरूप होने पर भी चित् शक्ति द्वारा अनुप्राणित बीज है। शिष्य के हृदय क्षेत्र में प्रविष्ट होकर वह शिष्य कृत यथाशक्ति जपादि द्वारा लालित होने पर अंकुरित होकर मनोमय भूमि का आश्रय लेता है एवं पीछे चैतन्यभूमि में प्रवेश करता है। तब उस मंत्र की सिद्धि होती है और साक्षात्कार होता है। पुस्तक से मंत्र ग्रहण करने से उस मंत्र में वीर्य नहीं होता। वह अंकुरित होकर देवता के स्वरूप में परिणति लाभ नहीं कर सकता। ठाकुर रामचन्द्र देव ने जो कहा है वह खूब ही सत्य है। अपनी व्यक्तिगत देहावच्छिन्न प्रकृति के अहंकार से जिस मंत्र का चयन होता है, उससे परम चैतन्य की स्फूर्ति, जिसके प्रभाव से देहात्म बोध सम्यक् प्रकार से विनष्ट हो जायगा, कैसे सम्भव है? वस्तुतः मंत्र ही देवता है। इसीलिए अपने निर्वाचन के फलस्वरूप ग्रन्थ से जो मंत्र स्वयं ही ग्रहण करा जाता है वह चित्शक्ति का स्वरूप नहीं है और वह शिष्य की आत्मा को चित्शक्ति के आश्रय शिवतत्त्व पर्यन्त नहीं पहुँचा सकता। किन्तु इस स्थान पर प्रातिभज्ञान का खंडन नहीं करा जा रहा यह याद रखना होगा। अपने व्यक्तिगत अहंकार को अभिभूत करके अपनी स्वरूपाविष्ठित परमसत्ता से यदि प्रातिभज्ञान रूप से मंत्र का आविर्भाव हो तो वह दूसरी बात है। वह अत्यन्त उच्च अधिकारी का विषय है। ऐसे स्थान में अपने अन्दर ही गुरुशक्ति काम कर देती है। ऐसे क्षेत्र में अहंकार जागने की सम्भावना नहीं रहती। वह इस प्रसंग में आलोच्य नहीं।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

आचार्य को साक्षात् भगवान् समझे, कभी भी उसका तिरस्कार न करे। मानव-बुद्धि से (अर्थात् उनको साधारण मनुष्यमात्र समझकर) उनकी निन्दा न करे क्योंकि गुरु सर्वदेवमय माने गए हैं— (भागवत—एकादश स्कन्ध)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्री मां आनन्दमयी प्रसंग

(पंचम खंड)

श्री अमूल्यकुमार दत्त गुप्त एम० ए०, बी० एल०

भारतवर्ष के भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न

सन्ध्या को आश्रम में जाकर देखा मां गंगा के किनारे चबूतरे के ऊपर बैठी हैं। रामकृष्ण मिशन से दो संन्यासी आए। उनमें से एक की वयस अपेक्षाकृत कम है। वे मां के पूर्व परिचित मालूम पड़े। वे कहाँ से काशी आए हैं और कितने दिन यहाँ रहेंगे—यह सब मां ने उनसे पूछा। स्वामीजी बोले कि वे बेलूड़ से आए हैं और थोड़े दिन वहाँ रहेंगे। स्वामीजी की बातचीत मीठी थी और वे बात भी अच्छी तरह से कर रहे थे। उनकी बातचीत की भाव भंगी से मालूम होता था कि उन्हें सर्व साधारण के बीच में वक्तृता देने का अभ्यास है। उन्होंने मां से कहा, "मां, देश में तो इस समय शान्ति के नाम पर कुछ नहीं। चारों ओर ही अशान्ति। यह अशान्ति जल्दी शेष हो जायगी या इसकी तीव्रता दिनोंदिन वृद्धि पाकर सभी कुछ एक विराट ध्वंस में पर्यवसित हो जायगा ?

मां—बाबा—भविष्य में क्या होगा, नहीं होगा यह शरीर नहीं कहता फिर भी यदि कभी कुछ कहना हो जाय तो हो जाय।

स्वामीजी—एक समय भारतवर्ष के साथ अन्यान्य देशों का घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं था। इस समय विभिन्न देशों के साथ योगायोग खूब सहज साध्य हो गया है एवं उसके फलस्वरूप भाव का आदान प्रदान भी सुगम हो गया है। भारतवर्ष को धर्म का स्थान कहा जाता है, किन्तु वर्तमान काल में भारतवर्ष के विशाल समाज के ऊपर इस धर्म का प्रभाव निस्तेज हो गया है। अध्यात्म-सम्बन्धी कोई उत्सुकता भारतवासियों में नहीं दिखाई पड़ती बल्कि विदेशी ही इस समय भारतीय धर्म के सम्बन्ध में कुछ-कुछ अनुसन्धान कर रहे हैं। और भारतवासी विदेशीय आकार व्यवहार का अनुकरण कर रहे हैं।

मां—इसको संगगुण कहना ही पड़ेगा। एक संग रहने से संस्कार अनुयायी एक दूसरे के दोषगुण का अनुकरण करते हैं।

स्वामीजी—उत्थान पतन समस्त जाति में ही देखा जाता है। एक समय भारतवर्ष सब विषयों में जगत् में शीर्षस्थानीय था। इस समय उसका वह ऐश्वर्य नहीं। महापुरुषों के मुख से इतने दिनों से सुनता आ रहा हूं कि भारतवर्ष फिर अपने लुप्त गौरव को प्राप्त करेगा। किन्तु आज

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कल चारों ओर की अवस्था देखकर निराश ही होना पड़ता है। भारतीय धर्म और त्याग की महिमा का प्रचार है। विदेशियों के संस्पर्श में आकर लोग देखते हैं कि विदेशी लोग धर्म और त्याग के बिना ही खूब शक्तिशाली हैं। इसलिए वे भारतीय शिक्षा एवं धर्म के विषय में संदिग्ध हो गये हैं। वे इस समय अर्थ को ही जीवन की एकमात्र ईप्सित वस्तु समझने लगे हैं। इसीलिए चोर-बाजारी की इतनी वृद्धि हो रही हैं। फिर पूर्व वंग के नरनारियों की क्या दुर्दशा ! दो चार लोगों के साथ ऐसा होने से कहा जा सकता है कि उनके कर्मफल के कारण ही उनकी यह अवस्था हुई है किन्तु जहाँ लाख-लाख कोटि कोटि लोगों की बात है, वहाँ कैसे कहा जाय कि कर्मफल के कारण उनकी ऐसी अवस्था है। उनको क्या कह कर सान्त्वना दी जाय ? उनसे क्या मैं कह सकता हूँ कि तुम्हारा जो गया है वह फिर से पाओगे। हम लोग अवश्य कुछ कहकर उनको सान्त्वना देते हैं, किन्तु आप लोग जो इतने उन्नत हैं—आप लोगों के पास से कोई आशा की वाणी पाने से हम लोग अपनी बात पर और भी जोर देकर बोल सकते हैं। हम कह सकते हैं कि मां आनन्दमयी भी ऐसा कहती हैं।

माँ—यह भी तो भविष्यत् के सम्बन्ध में बात हुई। बाबाजी तुम क्या कह कर सान्त्वना देते हो ?

स्वामीजी—वह मैं आपको नहीं बताऊँगा। (सब हँसते हैं)।

माँ—पीछे मैं शायद तुम्हारी बात सबसे कहूँ इसलिए नहीं बोलोगे ? (सब हँसते हैं) देखो, यह जगत है न इसीलिए यहाँ समस्त चीजों का ही परिवर्तन होता है। जो था, वह अब नहीं है। जो अब है, वह भी नहीं रहेगा। गतागति ही तो जगत है। फिर इस गतागति के कारण ही स्थिति। इसलिए यहाँ कुछ भी चिरस्थायी नहीं। भारतवर्ष को तुमने धर्मस्थान कहा न ? वास्तव में वह अब भी उसी भाव से है। है, इसीलिए जो यहाँ धर्म चाहते हैं, वे धर्म पाते हैं। विदेशी यदि इस धर्म को पाते हैं तो इसमें दुःख का क्या कारण है ? क्योंकि वे तो तुम्हारे भाई हैं। भाई क्यों, वे तो तुम ही हो। दुःख कष्ट की जो बात कही,—वह सब तो उनकी ही लीला है। उनसे भिन्न तो जगत् में और द्वितीय कोई नहीं। तुम्हारी गीता में भी यह बात कहते हैं कि वे सबके हृदय में रहकर सबको चलाते हैं। नाना भावों में नाना रूपों में वे अपने को लेकर खेल रहे हैं। उनका खेल इस समय ऐसा ही चल रहा है, पीछे सम्भव है अन्य रूप होगा, क्योंकि वे एक भाव से नहीं खेलते। उनके खेलने का ढंग भी अनन्त है। और यदि शास्त्र मानो तो कर्मफल मानना ही पड़ेगा। कष्ट भोग लोगों के कर्मों के कारण होता है, इसमें सन्देह क्या ? एक जन के विषय में जो, समष्टि भाव में भी वही। लाख लाख लोग एक सा कष्ट पा रहे हैं, देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि यह कर्मफल के कारण नहीं है। युद्ध में भी तो बहुत लोग एक साथ मारे जाते हैं। वहाँ तो लोक संग्रह इच्छा करके ही होता है। तुम लोग accident इत्यादि कहते हो न ? गाड़ी में, नाव में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कितने लोग एक साथ मारे जाते हैं। भगवान् की नौका तो छोटी नहीं। इसलिए लाख लाख लोग एक साथ मारे जाते हैं। इसमें आश्चर्य की क्या बात है? फिर दुःख कष्ट का प्रयोजन भी है। लोग कहते हैं न कि बिना खोए होश नहीं होता। तुम लोग भी तो बच्चों को पीटते हो—उसका उद्देश्य उन्हें कष्ट देना नहीं, उन्हें अच्छा बनाना है। उसी तरह भगवान् भी दुःख कष्ट देकर लोगों को सुपथ पर ले आते हैं। इस प्रकार देखने से दुःख-कष्ट भी उनकी दया मालूम पड़ते हैं।

स्वामीजी—आपने जो कहा वह भूमा की दृष्टि से; किन्तु प्रत्येक देश के लोग ही अपने देश को बड़ा बनाना चाहते हैं जैसे हिटलर जर्मनी को बड़ा करना चाहता था। अंग्रेज आदि सब जातियाँ ही अपने-अपने देश को बड़ा करना चाहती हैं। ऐसे ही हम भी इस भारतवर्ष को बड़ा देखने की इच्छा करते हैं। भारतवर्ष क्या अपना पुराना गौरव फिर से प्राप्त नहीं करेगा?

माँ—भगवान् को तुम लोग मंगलमय कहते हो न? वे जो करते हैं वह मंगल के लिए। दुर्बलता का आश्रय लेना उचित नहीं है। तुम्हीं ने कहा न कि महापुरुषों ने आशा दिलाई है कि भारत फिर बड़ा होगा। महापुरुषों ने जो कहा है वह सत्य होगा—यह सोचना ही उचित है। इसलिए तुम जिस प्रकार भारत का मंगल चाहते हो, उसी प्रकार वह होगा—ऐसी आशा करना ही तो अच्छा है। भगवान् वैसा ही परिवर्तन करेंगे इसीलिए शायद चिन्तारूप से सबके मन में दिखाई दे रहे हैं।

स्वामीजी—आपने एक बुद्धिमती महिला की भाँति मेरे प्रश्न का उत्तर दिया। इससे अधिक नहीं (सब हँसते हैं)।

माँ—बाबाजी, तुम बना के, सजा के बात कर सकते हो। इस शरीर ने तो पढ़ा-लिखा नहीं है इसीलिए उल्टा-सीधा बोलता है।

सन्ध्या हुए देर हो गयी। बाहर सबको ठंढ लगते देख माँ उठ गईं। मैंने सोचा कि आज की आलोचना शायद बन्द हो गई। मैं उतर कर हौल में आया। वहाँ माँ को खड़ा देखा। मुझे देखकर माँ ने कहा "बाबाजी (स्वामीजी) क्या चले गए?" मैंने ऊपर जाकर देखा कि वे वहीं थे। मैंने उनसे कहा, "माँ आपको बुला रही हैं।" वे मेरे साथ उतर कर नीचे हौल में बैठे। पहले जो स्वामीजी माँ से बात कर रहे थे वे फिर बोलने लगे, "आनन्द की लोगों को चिरन्तन चाहना है। अनादि काल से आनन्द चाहते आ रहे हैं। पर क्या किसी ने उसे पाया है। शास्त्र भी कहता है आनन्द से ही जीव का जन्म, आनन्द में ही उसकी स्थिति, पर यह आनन्द कहाँ है। कोई कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, भीतर-भीतर सर्वदा हाहाकार। आनन्द सभी चाहते हैं पर पाते नहीं हैं।"

माँ—लोगों को यदि आनन्द एकदम ही न मिलता तो वे क्या जीवित रह सकते थे। जो जैसा चाहता है, वह वैसा ही पाता है। फिर भी परम आनन्द की बात अलग है। उस भाव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से यदि कोई उस आनन्द को चाहे तो वह उसे पाता है। तुम क्या कहना चाहते हो कि लोग उसे चाहते हैं पर पाते नहीं ?

स्वामीजी—हाँ, लोग चाहते हैं पर पाते नहीं है। यह जैसे दो पार के यात्री। इस पार के यात्री "कहाँ है आनन्द, कहाँ है आनन्द" कह कर चीत्कार करते हैं, और उस पार के यात्री कहते हैं—सभी आनन्दमय, सभी पूर्णानन्द"। पर प्रश्न हुआ यह कि जो कहते हैं कि उन्हें आनन्द मिला है. उन्हें वास्तव में आनन्द मिला है इसका प्रमाण क्या है ?

माँ—इस आनन्द का प्रमाण आनन्द ही है। इस प्रमाण को ग्रहण करेगा कौन ? मन के द्वारा तो वह समझा जायगा नहीं, जो आनन्द स्वरूप होगा वही उसे समझ सकेगा। उसे प्रमाण की आवश्यकता नहीं, एम० ए० पास होने पर क्या विद्या मिलती है, वह वही समझ सकता है जिसने एम० ए० पास किया है।

स्वामी जी—जो लोग ध्यान व साधन से इसको कुछ-कुछ जान पाए हैं, वे तो बोल सकते हैं।

माँ—वह रास्ते का ही विवरण होगा। असली चीज प्रकाश नहीं करी जा सकती।

अब स्वामीजी ने विदा ली। माँ ने उन्हें दो-दो सन्तरे दिये। उन्होंने फिर उनमें से एक-एक माँ को दिया। आगामी पौष संक्रान्ति के दिन उनसे आश्रम में प्रसाद ग्रहण करने को कहा गया। स्वामीजी बोले, "पौष संक्रान्ति के दिन आने के माने हम लगाते हैं पीठा खाना।" मा हँस कर बोलीं, "यह लोग क्या जोगाड़ कर रहे हैं, मैं कह नहीं सकती।"

१२-१-४६—आज सर्दी और बुखार सा मालूम होने के कारण आश्रम नहीं गया। कल पौष संक्रान्ति है। सावित्री यज्ञ का तीसरा साल शुरू होगा। उस उपलक्ष्य में खूब धूमधाम होगी पर मेरा उपस्थित रहना सम्भव नहीं होगा।

२६ पौष बृहस्पतिवार—आज ज्वर नहीं है। पर खूब जुकाम है। घर के सब कोई आज आश्रम में प्रसाद पाएँगे। मैं घर में लेटा था। ६ बजे के लगभग बन्धुवर मनोमोहन ने आकर कहा कि मुझे माँ बुला रही हैं। यह सुनकर मैं उसी समय उनके साथ आश्रम के लिए रवाना हो गया।

आश्रम में जाकर देखा बड़ी भीड़ है। यज्ञशाला फूलों की माला से खूब सुन्दर सजाई हुई थी। यज्ञशाला के ऊपर एवं स्तम्भ-स्तम्भ पर पताकाएँ उड़ रही हैं। इन पताकाओं के बीच में भिन्न-भिन्न मूर्ति। यज्ञशाला में इन्द्र वरुण आदि जिन देवताओं की पूजा होती है उनके वाहनों की मूर्ति इन पताकाओं में बनी थी। यज्ञशाला के अलावा आश्रम को भी नाना रंग की पताकाओं से सजाया गया है। मनोमोहन मुझे दोतला पर ले गए। दोतला पर पहुँचते ही माँ से साक्षात् हुआ। माँ ने मेरा चेहरा देखकर कहा, "मैं देखती हूँ तुम खूब कातर हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(ग) 'योगचक्र' हृदय में है। यह योगप्रसर का आश्रय स्थान है।

(घ) 'भेदनचक्र' तालुदेश में है।

(ङ) 'दीप्तिचक्र' विन्दु-स्थान भ्रूमध्य में है।

(च) 'शान्तचक्र' नादस्थान में अवस्थित है।

(२) षोडश आधार

ये आधार समूह जीवका आधार होने के कारण 'आधार' कहलाते हैं। पैर के अंगुष्ठ से द्वादशान्त कमलपर्यन्त इनका विस्तार है। इनके नाम हैं—अङ्गुष्ठ, गुल्फ, जानु, मेढ़, पायु, कन्द, नाभि, जठर, हृत्कमल, कूर्मनाडी, कण्ठाधार, तालुदेश, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र और द्वादशान्त। ये सब 'आधार' नाम से प्रसिद्ध हैं।

(३) तीन लक्ष्य

(क) अन्तर्लक्ष्य

तडित्प्रभा के समान अति सूक्ष्म कुण्डलिनी-स्थित आकाश का दर्शन अथवा मस्तक के ऊर्ध्व में द्वादशाङ्गुलपर्यन्त ज्योति का दर्शन। यह आन्तर और बाह्य इन्द्रियों के अगोचर है। इस विषय में कुछ मतभेद पाया जाता है। योगिगण का अन्तर्लक्ष्य सहस्रार में ज्वलज्ज्योतिका दर्शन है। वैष्णवों के मत से बुद्धिगुहा में सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष रूप का दर्शन है। शैव लोगों के मत से शीर्षस्थ मण्डल में उमा महेश्वर-रूप का दर्शन है। दहर—उपासकों का अंगुष्ठमात्र पुरुष रूप दर्शन भी यही है।

(ख) मध्य लक्ष्य

सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि की शिखा के समान नाना प्रकार के विचित्र वर्ण अथवा तद्विहीन अन्तरिक्ष के समान दर्शन।

(ग) बहिर्लक्ष्य

अपने नासिकाग्र में अभ्यास के फलस्वरूप थोड़ी दूर तक व्योम का दर्शन।

(४) पञ्चव्योम

ये व्योम-समूह जन्मस्थान, नाभि, हृदय, विन्दु और नाद में भावना करने में आते हैं। इनमें प्रथम व्योम है अनन्त विश्व का आश्रय अनन्त शून्यरूप। यह अनन्त शून्य सुषुप्ति का आवेशकारक होने के कारण हेय है। पञ्च आकाश के नाम विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार के मिलते हैं जैसे—

गुणरहित आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश, सूर्यकाश आदि।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(५) द्वादश ग्रन्थि

माया से लेकर शक्तिपर्यन्त द्वादशग्रन्थि के स्थान हैं। मायाग्रन्थि देह की उत्पत्ति का कारण है। पाशवग्रन्थि पशुओं की संकुचित दृष्टि का कारण है। यह ग्रन्थि कन्द में अवस्थित है। हृदय से आरम्भ करके ललाटपर्यन्त पाँच कारणग्रन्थि विद्यमान हैं। ये पशुओं की सृष्टि में कारण हैं, इसी कारण इनका निरोध करना कर्त्तव्य है। निरोध करने योग्य होने के कारण इनको 'ग्रन्थि' कहते हैं। ब्रह्मग्रन्थि हृदय में, विष्णुग्रन्थि कण्ठ में, रुद्रग्रन्थि तालुमूल में, ईश्वरग्रन्थि भ्रूमध्य में और सदाशिवग्रन्थि ललाट में अवस्थित हैं। इनके ऊर्ध्व भी और भी कई ग्रन्थियाँ हैं। वे नाद-शक्तिरूपी निरोधिका के ऊर्ध्व पर अवस्थित हैं। उनके नाम हैं—इन्धिका, दीपिका, बैन्दव, नाद और शक्ति। ये भी परचित् के प्रकाश में आवरण स्वरूप हैं।

(६) तीन धाम

चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप तीन धाम वाम, दक्षिण और मध्य स्थान में व्याप्त होकर अवस्थित हैं। मानव-देह की अधिष्ठात्री तीन प्रकार की वायु के द्वारा तीनों धाम सृष्ट हैं। इडा आदि तीनों नाड़ियाँ भी वायुत्रय के द्वारा नियन्त्रित हैं। वस्तुतः नाड़ी असंख्य हैं और वायु उनकी अधिष्ठाता है।

परचित्-शक्ति से प्रसृत अमृत के द्वारा दिव्य शाक्तकाय उद्भूत होता है। इस शक्ति का स्वरूप क्या है ?—यह आत्मा का धर्म है, भगवान् की स्वरूप महिमा है, शिव की प्राणरूप सामर्थ्य है। परन्तु शक्तिरूप में व्यवहार होने पर वह स्वरूप से अतिरिक्त नहीं है; क्योंकि वह स्वरूप में आश्रित नहीं है। इस चितिरूपा परमेश्वर की स्वातन्त्र्यशक्ति का आश्रय करके योगिगण परमपद की ओर यात्रा करते हैं। वह समस्त विश्व के मध्य में है, विश्व की हृदयगुहा में अति गुप्तभाव से निहित है।

मानव निरन्तर श्वास उच्छ्वासशील है तथा नाना प्रकार के द्वन्द्वों के घात उपघात से पीड़ित होने के कारण मध्यमार्ग में संचरणशील, समस्त वस्तुओं के मध्य रहनेवाली इस शक्ति का साक्षात्कार नहीं कर सकता। अन्योन्यविरुद्ध प्राण और अपान की वृत्तियों के संघट्ट के द्वारा जीव-देह के सारे कार्य तथा चिन्तन परिव्याप्त रहते हैं अतएव किसी-न-किसी प्रक्रिया से इन वृत्तियों को अभिभूत करना आवश्यक है। विरुद्ध शक्तियों का विरोध शान्त होने पर यह भावना करनी चाहिये कि सुषुम्णा में स्थित मध्यम प्राण में पराशक्ति का संचार हो रहा है। यह मध्यम प्राण ही 'उदान' नामक प्राणब्रह्म है। जब देहादि में अहंभाव का त्याग हो जायगा तथा पूर्णाहंता के समावेश की सिद्धि हो जायगी, तभी समझना होगा कि सब भावना सफल हो गयी। अहंभाव-परामर्श के लिये यही क्रमशः करना चाहिये। योगी पूर्णाहंतामय मूलमन्त्र के साथ पराशक्ति का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सामरस्य चिन्तन करे। इस प्रकार की भावना के फलस्वरूप प्राणादि संस्पर्श से रहित स्पन्द स्वयं प्रकट होगा। इस स्पन्द के द्वारा पूर्वोक्त सामरस्य की प्राप्ति कठिन नहीं रहेगी।

यहाँ तक सिद्ध हो जानेपर भावना के मार्ग में मन्त्रवीर्य का सार समुदित होता है। यही अभिमान-उदयरूप रहस्य है। तत्पश्चात् देह-प्राण आदि से परिच्छिन्न प्रमाता में विद्यमान अभिमान का परिहार करके उसको आनन्दचक्र से उठाकर मूलाधार में स्थापित करना पड़ता है।

यहाँ तक प्रारम्भिक प्रक्रिया हुई। इसके बाद वेधक्रिया का समय आता है। पहले आधार आदि सोलह केन्द्रों को एक-एक करके वेध करना पड़ता है। वेधकार्य में नाद करण होता है, वह मन्त्रात्मक प्राणरूप में अथवा स्फुरत्ता के उन्मेष के रूप में प्रकट होता है। यहाँ सूक्ष्म योग और प्रयोग की आवश्यकता है।

उन्मिषित स्फुरत्ता की तीव्र उत्तेजना का सञ्चार ही सूक्ष्मयोग है। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है कि प्राणात्मक मन्त्र पूर्वोक्त उत्तेजना के वश अपने स्थान को त्याग कर कुछ ऊर्ध्व सुषुम्णा के मार्ग से आरोहण करता है। इस आरोहण के साथ-साथ कौलिक मत के अनुसार सारे आधार और सारी ग्रन्थियों की वेधक्रिया सम्पन्न होती है। वेधक्रिया समावेशरूप है, इसमें कोई सन्देह नहीं। द्वादशान्त में प्रवेश के साथ-साथ महामायापर्यन्त सारे बन्धन परिहृत हो जाते हैं। उसके बाद ध्रुवपद में स्थिति होती है।

अन्तिम वेध सम्पन्न होने पर महाव्याप्ति का आविर्भाव होता है। यह नित्योदित पराशक्ति का सामरस्य रूप है। यहाँ तक योग सम्पन्न होने पर पराशक्ति के साथ अभिन्नता स्फुरित होती है। यह अभिन्नता फिर शिवतादात्म्यरूप होती है।

कौलिक प्रक्रिया में प्रथम प्रपञ्च है परम शिव के साथ अभिन्नता और उसका फल—सब कुछ इस प्रपञ्च के अन्तर्गत है। इसके बाद द्वितीय प्रपञ्च आता है। द्वादशान्त में प्रसरण करनेवाली शक्तिधारा की सहायता से मध्यम मार्ग के पथ में हृदय के आपूरित होने पर परमानन्द प्रकट होता है। उस आनन्द को परामृत-प्रवाह समझना चाहिये।

यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि हृदय में प्रविष्ट परानन्द रसायन का काम करता है। जब तक वह हृदय में रहता है, तब तक भावना के बल से उसको स्वसंवेद्य बना लेना आवश्यक है। हृदय से उमड़ती हुई परमानन्द-प्रवाह की धारा को चारों ओर फैला देना कर्तव्य है, जिससे वह प्रवाह समस्त नाड़ियों के अनगिनत तन्तुओं में गमन कर सके। इसके बाद अनुरूप ध्यान करना आवश्यक है।

तत्पश्चात् इस अमृत के द्वारा देह के बाहर और भीतर को पूर्ण कर लेना आवश्यक है। इस प्रकार स्वदेह अमृतमय हो जाय, तब तीव्रवेग से इस प्रवाह को देहस्थ रोमकूप के माध्यम से बाहर के विषयों में निरन्तर प्रेरित करना चाहिये। तत्पश्चात् शाक्तानन्द-ज्ञान के द्वारा समस्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जगत् आप्यायित हो रहा है—ऐसा ध्यान करना चाहिये। इस ध्यान के फलस्वरूप अजर और अमर भाव आता है तथा आत्मसिद्धि भी प्राप्त होती है। कौलिक शास्त्र में मृत्यु पर विजय के लिए वह प्रक्रिया उपदिष्ट हुई है।

तान्त्रिक वाङ्मय में भी इस प्रकार की तथा इससे भिन्न प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। तान्त्रिक लोग कहते हैं कि पहले मत्तगन्ध स्थान—संकोच-प्रसरण रूपी किसी मुद्रा के द्वारा अपनी सूक्ष्म प्राणशक्ति का उद्बोधन आवश्यक है। इस शक्ति का आश्रय लेकर आगे की क्रियाओं का साधन होता है। इस स्पन्द के द्वारा आविष्ट 'मध्यमा कला' नामक प्रसिद्ध शाक्त-कन्द जन्म स्थान में प्रसुप्त अवस्था में है। कौलमत से जन्मस्थान आनन्देन्द्रिय है। तान्त्रिक प्रक्रिया में वह कन्द (मूल) रूप है केवल इतना ही दोनों में भेद है।

योगी बहुत सावधान चित्त से निरन्तर इस शक्ति की भावना तब तक करते रहें, जब तक समावेश सिद्ध न हो जाय। तत्पश्चात् भगवान् के बल से पादांगुष्ठ में स्थित कालाग्नि के आधार का आश्रय लेकर ऊर्ध्व में आरोहण करने का प्रयत्न करना आवश्यक है।

यह प्रथम पर्व है। इसके समाप्त होने पर कन्द-भूमि से प्राप्त शक्ति-स्पन्दात्मक वीर्य को उसमें निक्षेप करके प्रस्फुट भावना के द्वारा व्यक्त करें। तत्पश्चात् प्राणस्पन्दरूपी क्रिया-शक्ति उस वीर्य के द्वारा आपूरित होती है। इसकी मात्रा बढ़ने पर देह की मध्यवर्ती नाभि प्राप्त होती है। वह तीन प्रकार की है—एक 'इच्छारूप', जिसमें संकोच क्रम से उत्पन्न ऊर्ध्वारोहण का प्रयत्न मुख्य है। द्वितीय है 'भावना रूप' और तृतीय है 'क्रियारूप', जिसके द्वारा ऊर्ध्वग्रन्थियों का भेद वा वेध होता है। ये ग्रन्थियाँ गुल्फ, जानु, मेढ़ तथा कन्दरूप हैं।

मूलस्पन्द के आश्रय मत्तगन्धस्थान की बारबार संकोच-विकास क्रिया का तात्पर्य है—निरोध। यह स्वच्छन्द शास्त्र में वर्णित दिव्यकरण का उपलक्षण है।

इड़ा और पिङ्गला-रूपी दोनों पार्श्व की नाड़ियों का परित्याग करके इच्छा का अवष्टम्भ साधन करते हुए, मध्य मार्ग में प्रवाहित मध्यप्राणशक्ति के द्वारा सुषुम्णा का आश्रय लेना कर्तव्य है। सुषुम्णा में प्रवेश होने पर समस्त इन्द्रियों और विषयों से विरत होना चाहिए। तब माया-रहित विज्ञान के द्वारा (चिदात्मक ज्ञान शक्ति के द्वारा) क्रमशः हृदय आदि स्थानों में स्थित ब्रह्मादि कारणों को एक-एक करके त्यागना पड़ता है। यहाँ प्राणादि की प्रधानता न होने के कारण इसे विज्ञान रूप समझना चाहिये। यह ब्रह्मादि सृष्टि आदि संवित्-स्वभाव है। तत्पश्चात् मायाग्रन्थि-भेद करके पञ्च आकाश का त्याग करें। तब ब्रह्मा से लेकर शिव तक सब कारणों के ऊर्ध्व देश में विराजमान् 'समना' नामक कुण्डली शक्ति को प्राप्त करना होगा। उसी के गर्भ में शून्यातिशून्य अखिल विश्व कुण्डल की भाँति अवस्थित है। समना-प्राप्ति के बाद ऊर्ध्व में विरत है। वहाँ उन्मना की प्राप्ति होती है। वही परशिवदशा परसामरस्यरूप 'परव्योम' है।

(समाप्त)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ ॐ माँ ॥

मातृ सत्संग

(४९)

श्री स्वामी भागवतानन्द गिरि

स्थान—प्रयाग त्रिवेणी तट। अर्ध कुम्भ मेला

ता० २६ जनवरी १९४८ पौष शुक्ल पूर्णिमा

प्रश्न—माँ, जगत् की चीज जगत् को कैसे दी जाती है ?

माँ—(स्वामी शरणानन्द जी के प्रति) पिताजी तुम बोलो।

स्वा० श०—माँ किसी पर नाराज नहीं होती हैं। जैसे माँ रहती हैं वैसे तुम रहने की कोशिश करो। यदि कोई खिलाने वाला आता है तो माँ खा लेती हैं। माँ तो कहीं भी प्रवचन—भाषण करने जाती नहीं हैं तब भी माँ के पास इतने सब लोग कहाँ से आते हैं—और क्यों आते हैं ? माँ को फिकर है सिर्फ अपनी जगह ढूँढ़ने की।

माँ—तुम ही माता हो—तुम ही पिता हो। माँ ने स्वामी शरणानन्दजी को अनेक फल दिया। डॉ० पन्नालाल ने प्रश्न किया, "यह इच्छा है कि—आवश्यकता ?

स्वा० श०—यह माँ की कृपा है।

माँ—कोई फल लेकर यहाँ आया था। लेकिन फल बिना दिये ही जा रहा था इसलिये—इस शरीर ने पिताजी के लिये जबरदस्ती फल उनसे ले लिया।

डॉ० पन्नालाल—माँ, तुम ऐसे हम लोगों को जबरदस्ती से कब अपने श्रीचरण कमलों में ले लोगी ?

स्वा० श०—जैसे तुम फल लेकर खड़े थे वैसे अपने अहंकार को लेकर माँ के सामने खड़े रहोगे तब। माँ के आदेश से मणी ने एक सुन्दर भजन गाया—

"प्रभु, तुम मेरे जनम मरण के साथी"

भजन होने के बाद डॉ० पन्नालाल ने प्रश्न किया,—"गंगा यमुना का तो दर्शन हो रहा है लेकिन सरस्वती कहाँ हैं ?

माँ—पिताजी—त्रिवेणी तो तुम्हारे पास ही हैं।

डॉ० प०—कहाँ है ? दीखती नहीं है ?

माँ—यह शरीर तो छोटी बच्ची है ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डा० प०—माँ कहती हैं कि—यह शरीर तो छोटी बच्ची है।

स्वा० श०—सब कोई बड़ा होना चाहता है—छोटा होना कोई चाहता नहीं है।

माँ बोलने जा रही हैं इतने में देखा कि श्री योगानन्द ब्रह्मचारी और श्री गोपाल ठाकुर माँ के दर्शन के लिये आये हैं। माँ ने शरणानन्द जी और इन दोनों को बता कर कहा—देखो यह त्रिवेणी है ? ऐसा कहकर माँ खूब हँसने लगीं। मणी ने भजन गाया। सब की प्रार्थना से 'माँ' ने सुन्दर कीर्तन कराया :—

सीताराम—सीताराम··· •••
रामा राम रामा राम••••••

कीर्तन के बाद माँ ने पद गाया :—

कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण,
हरि नाम गाये जा, प्रभु को रिझाये जा।
प्रेम हरि नाम–भाई लिये जा दिये जा॥

आज रात को बड़े तम्बू में स्त्रियों के अखण्ड कीर्तन की व्यवस्था हुई है। मातृ भक्त बहनों ने—माँ का तथा भगवान् कृष्ण का सुन्दर फोटो सजाया है। तम्बू में पुरुषों को अन्दर जाना मना था पीछे माँ की अनुमति से हम लोग कीर्तन सुनने गये। सब लोग बाहर से भी सुन्दर कीर्तन सुन सके इसलिये ध्वनि वर्धक यन्त्र (mice) की व्यवस्था की गई है। माँ ने मधुर कंठ से हाथ में खंजरी लेकर कीर्तन शुरू किया :—

कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण हे।
राम, राम, राम हे॥

माँ की भक्तों पर कितनी अपार कृपा है। असंख्य व्यक्तियों ने आज माँ के सुमधुर कंठ से नाम कीर्तन सुना। माँ ने कुम्भ मेला के असंख्य भक्तजनों पर अहैतुकी कृपा का वर्षण किया।

ता० २७—जनवरी १९४८ माघ कृष्णा १'२००४

गत रात्रि में जो अखण्ड कीर्तन शुरू हुआ था वह अभी भी चल रहा है। माँ अखण्ड कीर्तन में रात के २ बजे तक बैठी थीं। सारी रात कीर्तन खूब जोर से जमजमाह से चला था। आज प्रातः में 'माँ' फिर से कीर्तन में आकर बैठी हैं। माँ ने प्रथम "सीताराम" और पीछे "हरि बोल" कीर्तन शुरू किया। अहा ! क्या सुन्दर मधुर कंठ से दिव्य कीर्तन माँ कर रही हैं। विचारी कलम में क्या ताकत है—कि यह स्वर्गीय आनन्द का वर्णन कागज पर लिख सके। यह तो स्वानुभव का विषय है।—इसके बाद—"जपो माँ आनन्दमयी, गाओ माँ आनन्दमयी" का कीर्तन शुरू हुआ। प्रातः ६ बजे तक कीर्तन चला। ६॥ बजे के बाद हम सब लोगों का 'माँ' के साथ में—दो बड़े नावों में यमुना नदी में प्रवास शुरू हो गया। सद्भाग्य से मैं 'माँ' की नाव में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ ॐ माँ ॥

मातृ सत्संग

(४९)

श्री स्वामी भागवतानन्द गिरि

स्थान—प्रयाग त्रिवेणी तट। अर्ध कुम्भ मेला

ता० २६ जनवरी १९४८ पौष शुक्ल पूर्णिमा

प्रश्न—माँ, जगत् की चीज जगत् को कैसे दी जाती है ?

माँ—(स्वामी शरणानन्द जी के प्रति) पिताजी तुम बोलो।

स्वा० श०—माँ किसी पर नाराज नहीं होती हैं। जैसे माँ रहती हैं वैसे तुम रहने की कोशिश करो। यदि कोई खिलाने वाला आता है तो माँ खा लेती हैं। माँ तो कहीं भी प्रवचन—भाषण करने जाती नहीं हैं तब भी माँ के पास इतने सब लोग कहाँ से आते हैं—और क्यों आते हैं ? माँ को फिकर है सिर्फ अपनी जगह ढूंढ़ने की।

माँ—तुम ही माता हो—तुम ही पिता हो। माँ ने स्वामी शरणानन्दजी को अनेक फल दिया। डॉ० पन्नालाल ने प्रश्न किया, "यह इच्छा है कि—आवश्यकता ?

स्वा० श०—यह माँ की कृपा है।

माँ—कोई फल लेकर यहाँ आया था। लेकिन फल बिना दिये ही जा रहा था इसलिये—इस शरीर ने पिताजी के लिये जबरदस्ती फल उनसे ले लिया।

डॉ० पन्नालाल—माँ, तुम ऐसे हम लोगों को जबरदस्ती से कब अपने श्रीचरण कमलों में ले लोगी ?

स्वा० श०—जैसे तुम फल लेकर खड़े थे वैसे अपने अहंकार को लेकर माँ के सामने खड़े रहोगे तब। माँ के आदेश से मणी ने एक सुन्दर भजन गाया—

"प्रभु, तुम मेरे जनम मरण के साथी"

भजन होने के बाद डॉ० पन्नालाल ने प्रश्न किया,—"गंगा यमुना का तो दर्शन हो रहा है लेकिन सरस्वती कहाँ हैं ?

माँ—पिताजी—त्रिवेणी तो तुम्हारे पास ही हैं।

डॉ० प०—कहाँ है ? दीखती नहीं है ?

माँ—यह शरीर तो छोटी बच्ची है ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डा० प०—माँ कहती हैं कि—यह शरीर तो छोटी बच्ची है।

स्वा० श०—सब कोई बड़ा होना चाहता है—छोटा होना कोई चाहता नहीं है।

माँ बोलने जा रही हैं इतने में देखा कि श्री योगानन्द ब्रह्मचारी और श्री गोपाल ठाकुर माँ के दर्शन के लिये आये हैं। माँ ने शरणानन्द जी और इन दोनों को बता कर कहा—देखो यह त्रिवेणी है ? ऐसा कहकर माँ खूब हँसने लगीं। मणी ने भजन गाया। सब की प्रार्थना से 'माँ' ने सुन्दर कीर्तन कराया :—

सीताराम—सीताराम··· •••
रामा राम रामा राम•••····

कीर्तन के बाद माँ ने पद गाया :—

कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण,
हरि नाम गाये जा, प्रभु को रिझाये जा।
प्रेम हरि नाम-भाई लिये जा दिये जा ॥

आज रात को बड़े तम्बू में स्त्रियों के अखण्ड कीर्तन की व्यवस्था हुई है। मातृ भक्त बहनों ने—माँ का तथा भगवान् कृष्ण का सुन्दर फोटो सजाया है। तम्बू में पुरुषों को अन्दर जाना मना था पीछे माँ की अनुमति से हम लोग कीर्तन सुनने गये। सब लोग बाहर से भी सुन्दर कीर्तन सुन सके इसलिये ध्वनि वर्धक यन्त्र (mice) की व्यवस्था की गई है। माँ ने मधुर कंठ से हाथ में खंजरी लेकर कीर्तन शुरू किया :—

कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण हे।
राम, राम, राम हे ॥

माँ की भक्तों पर कितनी अपार कृपा है। असंख्य व्यक्तियों ने आज माँ के सुमधुर कंठ से नाम कीर्तन सुना। माँ ने कुम्भ मेला के असंख्य भक्तजनों पर अहैतुकी कृपा का वर्षण किया।

ता० २७—जनवरी १९४८ माघ कृष्णा १'२००४

गत रात्रि में जो अखण्ड कीर्तन शुरू हुआ था वह अभी भी चल रहा है। माँ अखण्ड कीर्तन में रात के २ बजे तक बैठी थीं। सारी रात कीर्तन खूब जोर से जमजमाह से चला था। आज प्रातः में 'माँ' फिर से कीर्तन में आकर बैठी हैं। माँ ने प्रथम "सीताराम" और पीछे "हरि बोल" कीर्तन शुरू किया। अहा ! क्या सुन्दर मधुर कंठ से दिव्य कीर्तन माँ कर रही हैं। विचारी कलम में क्या ताकत है—कि यह स्वर्गीय आनन्द का वर्णन कागज पर लिख सके। यह तो स्वानुभव का विषय है।—इसके बाद—"जपो माँ आनन्दमयी, गाओ माँ आनन्दमयी" का कीर्तन शुरू हुआ। प्रातः ६ बजे तक कीर्तन चला। ६॥ बजे के बाद हम सब लोगों का 'माँ' के साथ में—दो बड़े नावों में यमुना नदी में प्रवास शुरू हो गया। सद्भाग्य से मैं 'माँ' की नाव में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही था—इसलिये मुझको बहुत बड़ा आनन्द का अनुभव हो रहा था। माँ के आदेश से भजन शुरू हो गया। माँ भी बीच-बीच में नये-नये पद जोड़ने से सबको आनन्द बढ़ा रही थीं—

कलिमल नाशिनी जय गंगे।
पतित पावनी जय गंगे॥
देव देव महादेव, शिर परे जटा।

श्री गोपाल ठाकुर भी 'माँ' के साथ में थे। दोनों नावें संगम में पहुँच गयीं। श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भी अपने भक्तों के साथ त्रिवेणी संगम पर स्नान करने आये थे? वे 'माँ' को अपनी नाव में ले गये थे। स्नान बाद भक्त लोग 'माँ' को पुष्प मालायें अर्पण कर रहे हैं। कोई 'माँ' को प्रणाम कर रहे हैं। आसपास के हजारों लोगों को भी माँ अपने कल्याणमय स्वरूप का दर्शन करा रही हैं! सर्वत्र आनन्द आनन्द ही हो रहा है। वापस लौटते समय दोनों नावें साथ-साथ चल रही थीं। इस समय श्री विभु ब्रह्मचारी जी ने सुन्दर कीर्तन किया। कैम्प में आने के बाद प्रसाद वितरण हुआ। इसके वाद 'माँ' श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के मंडप में गयीं। वहाँ श्री भागवत की कथा हो रही थी। वहाँ से वापिस आने के वाद माँ विश्राम कर रही थीं, इतने में यू०पी० सरकार के पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी जनाव वलीमहमद साहेब आये उनके साथ निम्नलिखित कथावार्ता हुई।

वलीमहमद—मुझको कुछ शिक्षा दो। मुझको खूब शौक़ है सन्त महात्माओं के दर्शन का।

-माँ ने उस प्रश्न का उत्तर न देकर दूसरी बात सुनाई।

माँ—इस वर्ष में पाकिस्तान में दुर्गा पूजा इस शरीर की उपस्थिति में हुई। पिताजी, दुर्गापूजा में बहुत से मुसलमान लोग भी आते थे और भाग लेते थे।

डॉ० पन्नालाल—माताजी ढाका में शाहबाग में जहाँ रहती थीं वहाँ मुसलमानों की बड़ी कबर भी थी।

माँ—लेना माने देना और देना माने लेना।

वलीमहमद—मैं क्या दूं? तुम जो हुकम करोगी वह मैं दे दूंगा।

माँ—पिताजी—एक बात है। यहाँ इस शरीर के साथ क्या सम्बन्ध है वह तुम जानते हो?—यहाँ तो सब सत् भाव, सत् चिन्तन में मदद करता है। देना माने क्या? सत् कथा के लिये जो प्रकाश तुमको मिला है वह ठीक है। असली तत्त्व तो सर्वत्र एक ही है। कहीं किसी प्रकार का भी भेद नहीं है।

वलीमहमद—भगवत मार्ग का रास्ता भी दो नहीं है—एक ही है।

माँ—रास्ता में ही झगड़ा होता है। ध्येय पर पहुँचने के बाद झगड़ा नहीं है।

गुरुप्रिया दीदी—माताजी जब शाहबाग, ढाका में रहती थीं। वहाँ एक बड़े पीर की कबर है। वहाँ जाते ही माँ ने जैसे मुसलमान लोग नमाज पढ़ते हैं वैसे नमाज अपने आप हो गई। कुरान का भी शुद्ध अरबी भाषा में पाठ माँ के मुख से निकला था।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—उस समय कुरान का पाठ, नमाज, जो होना था वह अपने आप हो गया। यह शरीर तो छोटी बच्ची है। इसलिये ऐसा बोल लिया। बेगम प्यारीबानु इस शरीर को उनके घर में ले गई थी। इस शरीर के लिये अलग कमरा, नये बर्तन रसोई इत्यादि की व्यवस्था की थी। उनके पुत्र और पुत्री की शादी में भी इस शरीर को वह ले गयी थी।

इस समय डॉ० पन्नालाल ने 'श्री माँ आनन्दमयी, प्रथम भाग' में से पृष्ठ १४० पर—शाहजादी प्यारीबानु की माँ पर श्रद्धा"—पढ़ के सुना दिया।

माँ—प्यारीबानु के घर में हरि कीर्तन भी होता था। जब हरिकीर्तन उनके घर में होता था तब प्यारीबानु पर्दा के पीछे बैठकर कीर्तन सुनती थीं। कीर्तन सुनते-सुनते उनकी आँखों से अश्रुधारा बहती थी। प्यारीबानु ने अपने हाथ से श्री श्री माँ काली के गले में सुवर्ण की माला पहनाई थी।"

ऐसा सुन्दर मातृ-सत्सङ्ग हो रहा था इतने में एक वैरागी साधु माँ के दर्शन के लिये आया। साधु ने माँ से पूछा, "माताजी, आपका कौन सम्प्रदाय है ?"

माँ—यह शरीर तुम्हारे सम्प्रदाय का है।

साधु—मैं तो "श्री सम्प्रदाय" का हूँ। मैं तो अयोध्या वासी हूँ।

माँ—(साधु को) नमोनारायण !

साधु और वलीमहमद साहेब ने विदा ली।

× × × ×

शाम का समय है। माँ तम्बू में आकर बैठी हैं। आसपास मातृ भक्त लोग बैठे हैं।

प्र०—देवताओं के बारे में आपका क्या मत है ?

माँ—यह शरीर तो कुछ पढ़ा-लिखा नहीं है। इस शरीर को जैसा बजाओ वैसा सुनो। तुम भी सुनो और यह शरीर भी सुने।

प्र०—देवताओं के स्वरूप क्या सत्य हैं या सिर्फ मन की कल्पनायें हैं।

माँ—यह सब देवताओं के स्वरूपों को बनाने वाला कौन है ?

प्र०—जिन लोगों ने शास्त्रों की रचना की उन लोगों ने अपनी कल्पना के अनुसार लिख दिया।

माँ—एक बात है। भाव का भी रूप होता है। क्रोध का भी अलग रूप होता है। प्रेम का भी रूप होता है। श्रद्धा का भी रूप होता है। तुम लोग भगवान् को प्रेम स्वरूप, सत् स्वरूप, सच्चिदानन्द स्वरूप क्यों कह रहे हो ? अभाव और स्वभाव का भी रूप होता है। अभाव का यदि रूप न होता तो अभाव से तुम परेशान क्यों होते ? प्रेम स्वरूप से सुख मिलता है। यदि मनुष्य में दुःख न होता तो वह पूर्ण होने की कोशिश क्यों करता ? पूर्ण रूप परमानन्द है।

(क्रमशः)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुकम्पा-धारा (पूर्वानुवृत्ति)

[श्री चरणकमलाश्रिता]

उन्नीसवाँ संयम-सप्ताह महाव्रत

२६ अक्टूबर से ४ दिसम्बर—

ऋषिकेश के महामण्डलेश्वर, श्री चैतन्य गिरि जी महाराज, ३१ अक्तूबर की शाम को पधारे। उन्होंने पहली नवम्बर से ४ नवम्बर तक जो प्रवचन किये उनका भी कुछ अंश विस्तार में देती हूँ :—

"संयम-सप्ताह, जिसमें आप लोग भाग ले रहे हैं। हम क्यों संयम-सप्ताह, भागवत सप्ताह, श्री रामायण का नवाह आदि कराते हैं—उससे लाभ क्या ? मिलता क्या ? देखने में तो आता नहीं। प्रत्यक्षवादी कहते हैं जो चीज छू सकें, देख सकें वह तो है। अध्यात्मवादी वे हैं जो इन्द्रियों से परे पर विश्वास रखते हैं—चाहे न दिखे फिर भी स्वीकार करते हैं—मानते हैं। स्थूल दृष्टिवालों का भौतिकवाद। सूक्ष्म दृष्टिवाले अतीन्द्रिय पदार्थों पर भी विश्वास रखते हैं। हम ईश्वर, देवता, स्वर्ग, मोक्षादि को मानते हैं। ऐसे तो एक अंधा, जो देख नहीं सकता, कह सकता है रूप है ही नहीं—बहरा सुन नहीं सकता तो इसका यह अर्थ नहीं कि पदार्थ नहीं। कई पदार्थ इन्द्रियों के विषय हो सकते हैं कई नहीं हो सकते। उनकी सत्ता सिद्ध की जा सकती है। हरी-हरी घास खेत में दिख रही है—गाय-बैल खाने को दौड़ेंगे—इतनी बुद्धि उनके भी है। तो हम में और पशु में अन्तर क्या ? आहार, निद्रा, भय, मैथुन यह तो पशु, पक्षी भी करते हैं। मनुष्य की बुद्धि की विशेषता यह है कि अतीन्द्रिय चीजों पर भी विश्वास रखे। भौतिकवादी कहते हैं भगवान् ने सुन्दर-सुन्दर खाने की चीजें तथा अन्य वस्तुएँ बनाईं उनको छोड़ते हैं—माघ स्नान करके, तपस्या करके अपने को कष्ट देते हैं—हम रजाई में आराम से घुसे हैं—कहते हैं स्वर्ग मिलेगा ! आगे का क्या विश्वास—मिले न मिले। संसार के प्रत्यक्ष सुख छोड़कर कष्ट उठाते हैं—इससे तो हम अच्छे ! परन्तु हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत सोच समझकर यह बात रखी। उनका कहना यह है कि पहले इसका मूल समझो। पहले शरीर और जीवात्मा का विचार करो। जिसको लोग "मैं" कहते हैं उनसे पूछा जाय "मैं" का अर्थ क्या ? भौतिकवादी कहेंगे जो बैठा है वह "मैं"। ऐसी बात नहीं है—जब सब अपने को "मैं" कह रहे हैं तो सबका 'मैं" एक हुआ पर शरीर तो अनन्त हैं तो एक ही नाम सबका कैसे ? यदि एक ही नाम दो के, या अधिक के, हों तो उसमें कुछ विशेषण लगाना पड़ता है। (जिसमें लोग समझ सकें किससे अभिप्राय है) घट नाम घट का नहीं है, उसकी आकृति का है तथा जाति को लेकर है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहले जन्म होता है नाम पीछे रखा जाता है। तुम जो कहते हो मेरा शरीर तो तुम शरीर कैसे? यदि "मेरा शरीर" कहो तो इसका अर्थ है आप स्वामी हैं व शरीर आपकी सम्पत्ति है—इससे सिद्ध होता है कि शरीर "मैं" नहीं है। कभी शरीर को "मैं" व कभी "मेरा" कहते हैं तो यह सन्देह की बात हो जाती है। जब तक संशय न हो विचार नहीं होता। ऋषियों ने यह बहुत खोजा और इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि "मैं" वह वस्तु है जो कभी बदलती नहीं—और सब शरीरों में एक है। एक दूसरी बात कहते हैं—हम सोते हैं—शरीर कमरे में अकेला सोया पड़ा है और उसको स्वप्न आया कि वह हाथ में कोई चीज पकड़ कर भाग रहा है। शरीर तो निश्चेष्ट खाट पर पड़ा है—इससे सिद्ध हुआ कि स्वप्न का शरीर अलग है—जब जागता है तो कहता है सपने में खूब दौड़ा। "मैं" सपने में भी रहा पर शरीर खाट पर पड़ा रहा। शरीर जैसे दो (या कई) कपड़े रखता है ऐसे ही "मैं" भी दो कपड़े रखता है—एक स्वप्न में पहन लेता है। भगवान् ने गीता में शरीर को वस्त्र कहा। जीवात्मा जीर्ण शरीर त्याग कर नया शरीर धारण कर लेता है तो शरीर से अलग हुआ न? जिस तरह पक्षी किसी वृक्ष पर घोंसला बना कर रहता है यह जीव भी इसी तरह शरीर में रहता है। मान लो कोई वृक्ष को काटने लगे तो पक्षी फिर मोह न करके कहीं और घर बना लेता है। ऐसे ही जीवात्मा जब देखता है शरीर रहने योग्य, (रोगादि के कारण) नहीं रहा तो बदल देता है। "मैं" वास्तव में एक नित्य वस्तु है। जो जाग रहा है वह कहता है "मैं सो गया था।" "मैं" एक ऐसी चीज है जो बदलती नहीं। अन्न जल लेने से शरीर में नये परमाणु बनते हैं व पुराने निकलते रहते हैं। एक सप्ताह में सब निकल जाते हैं। (अर्थात् शरीर में बराबर Changes होते रहते हैं।)

"मैं" शब्द के तीन अर्थ हैं। मुख्य, गौण, प्रसिद्ध। वास्तव में "मैं" का प्रयोग आत्मा में होना चाहिये, शरीर में नहीं। जैसे किसी को Taxi की आवश्यकता हो तो वह "ए Taxi" कह कर आवाज देगा। (Taxi तो जानदार चीज नहीं पर ड्राइवर से सम्बन्धित है) शरीर में भी "मैं" का प्रयोग इसलिये कर देते हैं कि "मैं" से शरीर का सम्बन्ध है। कोई मनुष्य घी से जल गया तो कहते हैं "घी से जल गया।" पर घी तो नहीं जलाता अग्नि जलाती है। ऐसे ही "मैं" और शरीर का भेद अविवेक रहते नहीं कर सकते। "मैं" शरीर को छोड़कर चला जता है, कहीं और जन्म ग्रहण कर लेता है। ८४ लाख योनियों में भटकता रहता है। जीव तो अविनाशी है। जन्मता मरता शरीर है। सात्त्विक काम करने वाले हैं वे ऊर्ध्व गति पाते हैं। जो तमोगुणी होते हैं वे कीट, पतंग, पशु, पक्षी, वृक्षादि होते हैं और रजोगुणी मध्य में रहते हैं। हीरा को यदि कोई पत्थर समझ ले तो इससे उसका मूल्य कम नहीं होता पर वह उस हीरे से लाभ नहीं उठा सकता। हमारे ऐसा कहने से कि ईश्वर नहीं है भगवान् का कुछ बनता बिगड़ता नहीं। भौतिक-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वादी का जन्म-मरण होता ही रहेगा। अध्यात्मवादी एक जन्म में कष्ट उठाकर हमेशा के लिये छुट्टी पा लेते हैं। भौतिकवाद बचपन का वाद है। जैसे बच्चा खेल-कूद में सुख मानता है—स्कूल जाना नहीं चाहता। यह नहीं समझता कि बिना पढ़े आगे सुख नहीं पा सकता।

अध्यात्मवाद से मनुष्य सदा के लिए जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। (भगवान् ने गीता में कहा जो मुझे स्मरण करता है वह जन्म् मरण से छूट जाता है।) जो मार्ग, जो साधन, हमको हमारे लक्ष्य तक पहुँचा दे वह ठीक है और जो नहीं पहुँचा सकता वह ठीक नहीं। हमको देखना यह है कि हमारा लक्ष्य क्या है। जब तक लक्ष्य न ठीक हो तबतक साधन का निश्चय भी नहीं हो सकता कि कौन सा ठीक है। जैसे स्टेशन पर पूछें तो बताना पड़ेगा कि कहाँ जायँगे। पहले हम यह देखें कि हम चाहते क्या हैं? प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि हम सदा सुखी रहें। मुझे कोई दुःख कभी न मिले। इससे यह अर्थ निकला कि वह नित्य सुख चाहता है—दुःख का सम्पर्क उसमें नहीं होना चाहिये। हमारी सब प्रवृत्तियाँ, चाहे जो करें, इसी के लिये हो रही हैं। यदि भौतिकवादी यह प्रतिज्ञा करें कि हम निर्दुःख नित्य सुख दिला सकते हैं तो वैसा करो, पर भौतिक वादी यह विश्वास दिला दें। यदि दावे के साथ यह नहीं कह सकते तो फिर अध्यात्मवाद। संसार की चीजों से, (विषयों से) आज तक किसी को निर्दुःख सुख नहीं मिला।

मनुष्य को स्वभाव से ही इच्छा रहती है मुझे कोई दुःख कभी भी न आए—मैं सदा सुखी रहूँ। यह इच्छा भौतिकवाद से पूरी नहीं हो सकती, अध्यात्मवाद से होती है। अध्यात्मवाद का कहना है कि एक सत्य बुद्धि होती है जो, (कभी धोखा नहीं दे सकती) सर्वदा एक सी रहती है। एक मनुष्य बुद्धि वह कभी धोखा खा सकती है।

भौतिकवादी कहते हैं शरीर पंचभूतों से बन जाता है व स्वाभाविक रीति से काम करता रहता है जब कोई खराबी आ जाती है तो नष्ट हो जाता है, (घड़ी चलते-चलते रुक गई, मरम्मत कराई बन गई, नहीं बनी तो फेंक दो। इसका यह मतलब तो नहीं कि उसके अन्दर कोई बैठा है। (रामायण की सती मोहवाली कथा सुनाई जो श्रीराम जी की मनुष्यों की भाँति विरह लीला देख कर उनको हुआ था। उसको तो शायद सभी भाई-बहन जानते होंगे।) इसका अर्थ है जो भगवत् दृष्टि है वह असलियत को देखती है व मानुषी दृष्टि ऊपर का देखती है। जो पहले ऋषि हो गये हैं उनको धर्म-अधर्म का फल साक्षात् दिखाई देता था। भौतिकवाद में ऐसा है कि जैसे विष के बारे में पहले किसी पर प्रयोग करके देखेंगे तब कहेंगे, विष है। पर अध्यात्मवादी देखते ही जान जायंगे कि यह विष है—अलग रख दो।

यमराज के सामने नचिकेता ने यही प्रश्न किया हे अन्तक, मैं पूछता हूँ कुछ लोग कहते हैं शरीर के मरने के बाद कुछ शेष नहीं रहता—कुछ कहते हैं जीवात्मा रहता है तो कौन सी बात ठीक है?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक आदमी का अखबार में छपा था कि उसने पैसे के लालच से अपने भतीजे को मार कर पैसा हड़प लिया। वह देहली में पैदा हुआ व स्कूल जाने लगा। अचानक एक दिन रास्ते में पिछले जन्म के चाचा को देख लिया तो पत्थर मारने व चिल्लाने लगा इसने मुझे विष देकर मारा था। हल्ले से पुलिस आ गई। पता लगाया गया तो ठीक निकला। इससे व और भी ऐसी घटनाओं से सिद्ध हुआ कि जन्मान्तर है। कोई सुखी कोई दुःखी क्यों? जो बच्चा अभी ही पैदा हुआ—जन्म से ही अंधा या लंगड़ा है तो इस बच्चे ने इस जन्म में क्या पाप किया या दूसरा बच्चा स्वस्थ सुन्दर है तो क्यों हुआ? इससे मानना पड़ेगा पिछले जन्म में ऐसा कर्म बना। एक गरीब बच्चा किसी ने, जो लखपति है, गोद ले लिया व बहुत आराम से रहा तो उस बच्चे ने इस जन्म में क्या पुण्य किया? ऐसे ही किसी ने बहुत पाप किया व मर गया—या बहुत पुण्य किया व मर गया तो पाप पुण्य का फल कहाँ गया? इससे अगला जन्म मानना पड़ेगा।

कर्मों को छाँट कर कुछ अलग रख दिये जाते हैं जो संचित कहलाते हैं। कुछ का फल देने का समय प्रस्तुत होने से वह प्रारब्ध कर्म्म। जाति, शरीर, वायु, समय, भोग-विषय। कुत्तों (पशुओं) में भी पाप-पुण्य का फल देखा जाता है। एक कुत्ता गद्दे पर बैठता है, मोटर में हवा खाता है, बढ़िया स्वादिष्ठ भोजन करता है और एक कुत्ता है, सड़क पर भूखा घूम रहा है व डंडे खाता है। तो यह विषमता क्यों? एक घोड़ा महाराजा का है, बढ़िया भोजन मिलता है, मालिश होती है, हर प्रकार से सेवा होती है व एक घोड़ा बोझ ढोता है व चाबुक खाता है। भौतिकवादियों के पास इसका क्या उत्तर है? अध्यात्मवादी उत्तर देते हैं कि पिछले कर्म्मों का फल है। संसार एक चक्र के समान है इसलिये उसका आदि या अन्त नहीं। थोड़ा बहुत सुख जो मनुष्य को मिलता है वह पुण्य का फल एवं दुःख पाप का फल। पशु शरीर व मनुष्य शरीर जरायुज कहे जाते हैं। जो अण्डे से उत्पन्न होते हैं वे अण्डज कहे जाते हैं। जूँ आदि पसीने से होते हैं।

चोरी, व्यभिचारवाला वृक्ष होता है, (सबसे परतंत्र एवं निकृष्ट योनि वृक्ष की है। काटो तो भी कुछ कर नहीं सकता) जो झूठ बोलता है या अधिक बोलता है वह पशु होता है (वह बोल नहीं सकता।) तीन प्रकार के मानस अपराध होते हैं। किसी का अनिष्ट चिन्तन करना, पर धन चिन्तन आदि तो उसको ऐसे मनुष्य का शरीर मिलता है जिसमें चिन्तन-शक्ति नहीं होती। इन सब बातों से भी सिद्ध होता है कि जन्मान्तर है। यदि हम इन्द्रियों पर विश्वास करें तो धोखा खाएँ, (जैसे सूर्य देखने से एक छोटा गोला दिखता है पर वह पृथ्वी से भी लाखों गुना बड़ा है। पृथ्वी देखने में समतल लगती है पर वास्तव में गोलाकार है।)

यह जो मनुष्य की इच्छा होती है कि नित्य सुख प्राप्त हो। हर एक यह भी चाहता है कि जितना हूँ उससे बड़ा हो जाऊँ। इससे सिद्ध हुआ कि सबसे बड़ा होना चाहता है तो सबसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बड़ा भगवान् है। जैसे नदी हमेशा समुद्र की ओर भागती है। वह समुद्र की ओर इसलिये जाती है कि वह आई समुद्र से। अग्नि का प्रकाश (या लपट) ऊपर को इसलिये जाता है कि वह सूर्य्य से आया।

जब भगवान् की इच्छा हुई एक से बहुत हो जायँ। हो गए व लीला करने लगे। जो शरीर में चेतन तत्त्व है वह सारे ही शरीरों में आकाश की तरह परिपूर्ण है। आत्मा से ही शरीर चेतन है। मरने के बाद लकड़ी की तरह जला दिया जाता है। यह चेतना जिसके कारण है वही ब्रह्म है, (अर्थात् एक ही चेतन से सब शरीर चेतन हैं, यह जो आगे उन्नति की जीव को इच्छा होती है यह तभी पूरी होगी जब सबसे बड़ी चीज पा ले। उसके बाद उसकी सारी इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं। जो संसारी चीजों से तृप्त होना चाहेगा वह अनित्य होगा। परमात्मा के संसर्ग से जो तृप्ति होगी वह नित्य होगी। ज्ञान, इच्छा प्रयत्न। मनुष्य की इच्छा संसार की वस्तुओं से नहीं पूरी हो सकती। जब तक अध्यात्म का सहारा न हो। इन्द्रियों की प्रबलता को रोककर अध्यात्म की ओर बढ़ते हैं।

कल कहा था आनन्द, नित्यानन्द जिसकी खोज में प्राणी अनादि काल से भटक रहा है। बात क्या है कि जहाँ है वहाँ ढूंढ़ता नहीं और जहाँ नहीं है वहाँ ढूंढ़ता है तो कैसे मिले। आज तक किसी ने जल से घी नहीं प्राप्त किया। यह असम्भव है पर तब भी, (तुलसीदास जी कहते हैं) हम मान लेते हैं कि सम्भव हो सकता है या बालू से तेल निकल आए इसको भी मान लेते हैं। पर परमात्मा से विमुख रहकर कोई कहे कि सुख प्राप्त कर लिया तो हम नहीं मान सकते। यह असम्भव है। यह उपनिषद् का सिद्धान्त है कि आनन्द ब्रह्म का नाम है। यदि कहीं और दिखाई देता है तो प्रतिबिम्ब-आनन्द है। जैसे थाली में भोजन परोस कर रख दो व आइने में उसका प्रतिबिम्ब देखो तो उससे तृप्ति नहीं हो सकती। मनुष्य का जो वास्तविक सुख है—उसके बराबर कोई लाभ नहीं—वह कब मिलता है जब अद्वैत स्थिति हो जाती है—द्वैत का भाव मिट जाता है। जागता भी रहे और द्वैत का भान भी न रहे वह पूर्णानन्द होता है।

अद्वैत की जो स्थिति है वह कैसे हो। दुःख-सुख मन के आधीन हैं। मन से मानने से सुख अथवा दुःख होता है। यदि जीव को बंधन में डालता है तो मन, और छुड़ाता है तो भी मन, दो प्रकार के परस्पर विरोधी फल कैसे ? अनुपान बदलने से औषधि का असर (प्रभाव) भी बदल जाता है। विषयों में आसक्त हुआ मन बंधन में डाल देता है और आत्म-चिन्तन बंधन छुड़ा देता है। संसार बंधन चित्त ही है। मनुष्य पुरुषार्थ करके उसको शुद्ध कर ले। मनुष्य जैसा चिन्तन करता है वैसा ही बन जाता मैं। चित्त को ठीक कर लेना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अहं ब्रह्म इसका अर्थ क्या ? अहम् ही ब्रह्म है। विकल्प जब शान्त हो गए तो ब्रह्म। जब मन चंचल होता है तो जो जो वृत्ति उदय होती है वैसा बन जाता है। दो उपाय बताए हैं—चित्त का नाश करना अर्थात् चित्त-वृत्तियों का नाश करना है। चित्त यदि निरन्तर आत्माकार रहे तो वह मोक्ष की ओर ले जाता है। चित्त में संसारी संकल्पों का निरोध पर पवित्र संकल्पों से हानि नहीं। एक योग व दूसरा ज्ञान मार्ग है। योग वृत्ति का निरोध करता है, (यानी बाहर जाने से रोकता है।) ज्ञान से वस्तु के स्वरूप का निर्णय करना यह भी चित्त नाश का एक उपाय है। परिणाम एक ही होता है। किसी के लिये योग साधन असाध्य तो किसी के लिये ज्ञान। तत्त्व निश्चय——यानी वस्तु के स्वरूप का यथार्थ निर्णय करना। यह निर्णय हो जाने से मन आप ही ठीक हो जाता है। यदि मन यह निश्चय कर लेता है कि इससे लाभ होगा तो उसके पाने का प्रयत्न करता है और हानि समझने से बचने का प्रयत्न करेगा। दोनों तरह ही प्रयत्न करेगा। संसारी पदार्थों तथा आत्मा के स्वरूप का विचार करने से निर्णय हो जाता है तो दुःख क्लेश अपने आप हट जाते हैं। किसी शहर में एक स्त्री भाई की शादी में गई। सहेली से गहने माँग के ले गई। वहाँ सबने देखा। किसी चोर ने भी देख लिया। जब वह स्त्री काम में लगी थी तो मौका पाकर चुरा लिये। स्त्री ने आभूषण का डिब्बा न पाकर रोना पीटना शुरू कर दिया। शादी का सारा हर्ष उसके लिये शोक में बदल गया व पछताने लगी कि इससे तो अच्छा था न आती। जब घर लौटी तो पति ने कहा माँग के क्यों ले गई। अब संकोच एवं भय से सहेली से मिलने नहीं गई। जब बहुत दिन हो गए तो सहेली खुद पहुँची व पूछा क्यों नहीं आई। उस स्त्री ने सब उसे बताया व कहा महीने में थोड़ा-थोड़ा देती रहूँगी। सहेली ने कहा कोई बात नहीं वह सब बनावटी आभूषण थे—उसकी चिन्ता की क्या बात। पचास या सौ रुपये के थे वह हम तुमसे नहीं लेंगे। अब वह स्त्री सुखी हो गई क्योंकि उसको यथार्थ बात का ज्ञान हो गया। मनुष्य यदि अपने को जान सके कि मैं यह हूँ तो वह किस वस्तु की व किसके लिये इच्छा करेगा ? पदार्थों की इच्छा किस लिये ? एक इच्छा सुख प्राप्ति के लिये एक दुःख निवृत्ति के लिये। संसारी पदार्थ न सुख का हेतु है न दुःख का। क्योंकि वस्तु में न सुख है न दुःख। अपनी भावना जैसी होती है वैसा भासता है। चन्द्रमा का उदय होना यात्री के लिये सुखदायी और चोर के लिये दुःखदायी हो जाता है। द्वैत को क्या भला व क्या बुरा कहें। कुछ हो तो वह सुख-दुःख का हेतु हो। जब कुछ है ही नहीं तो वह क्या हेतु हो सकता है ? जो मन वाणी से कहा जाता है वह कल्पित, मिथ्या है। वेदान्त में जो मिथ्या शब्द का प्रयोग करते हैं। भूत, वर्तमान, भविष्य में जो रहता है वह सत्य है। एक वस्तु ऐसी है जो तीनों कालों में से किसी काल में होती है, किसी में नहीं, तो वह मिथ्या कही जाती है। जैसे स्वप्न के पदार्थ हैं ऐसे ही जाग्रत के भी हैं। स्वप्न के पदार्थ बहुत थोड़ी देर रहते

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं, व जाग्रत के कुछ देर रहते हैं पर हैं दोनों मिथ्या। सपने के पदार्थ सपने में सत्य प्रतीत होते हैं वह उस समय प्रयोजन भी सिद्ध करते हैं, पर जागने पर काम नहीं आते। स्वप्न में देखे शेर को जाग्रत की बन्दूक नहीं मार सकती।। इसी तरह जाग्रत का पदार्थ स्वप्न में काम नहीं आ सकता। स्वप्न में स्वप्न का पदार्थ काम करता है, जाग्रत में जाग्रत का तो दोनों ही बराबर—दोनों में कोई फर्क नहीं। कोई आदमी २ बजे रात में सपना देखे कि मैं बाजार में घूम रहा हूँ— जागने पर देखे कि मैं कमरे में खाट पर लेटा हूँ। दूसरा है ही नहीं। आँख पर अंगुली दबाकर देखने से एक चीज की दो दिखाई देती हैं। अंगुली हटाने से फिर एक। दो दिखाई देने लगे—दो हो नहीं गए। श्रुति इसको मानती है कि दूसरा कभी हुआ ही नहीं। इस आत्मा में अपने से भिन्न कुछ नहीं। उल्लू के लिये अंधकार व मनुष्यों के लिये प्रकाश है। मनुष्यों की रचना ऐसी है कि उन्हें दिन में प्रकाश दिखता है। उल्लू को रात में व कुछ जीवों को—जैसे बिल्ली—दिन व रात दोनों में प्रकाश दिखता है। मन ही जगत् को हमारे सामने खड़ा करता है। मन यदि रस्सी को साँप कह देता है तो भय लगता है और साँप को रस्सी समझा दे तो भय-रहित कर दे। मन पर निर्भर करता है, जैसा दिखा दे। आत्म-सत्ता शुद्ध है—उसमें कभी कोई विकार नहीं। जब मनुष्य को रस्सी में साँप लगा तो सर्प उसमें आया व भ्रान्ति मिट जाने से चला गया। वास्तव में, सर्प उसमें आया न गया। जब मनुष्य यह जान लेता है जो सब शरीरों में एक रस से विराजमान है। (आत्मा का काम प्रकाश करना।)

(श्री चैतन्यगिरि जी महाराज के प्रवचन उपनिषद पर थे)

———

असंगता

एक सन्त नदी के किनारे पर भजन करता था तब एक भगत ने कहा—स्वामी जी, जिस स्थान में आप कहो आप के लिए कुटी बनवा दी जावेगी। तब सन्त ने एक पत्थर नदी में फेंका कि यहाँ कुटी बनाओ। तब भगत ने कहा—यहाँ तो बड़े वेग से जल का प्रवाह चल रहा है यहाँ कैसे कुटिया ठहरेगी; तब सन्त ने कहा—काल का प्रवाह तो इससे भी अधिक जोर से चल रहा है और स्थान में कुटिया कैसे ठहरेगी ? जहाँ भी कुटिया बनाओ वहाँ ही काल से नाश हो जावेगी। याते हम कुटिया नहीं बनवाते। असंगरूपी शस्त्र से मोहरूपी संसार वृक्ष का मूल काट डालो।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कैलास-मानसरोवर-प्रदक्षिणा

श्री "दत्त"

(पूर्वानुवृत्ति)

निवारण न कर सकने पर मैं टीला पर चढ़कर मन्दिर के द्वार पर आ उपस्थित हुआ किन्तु बन्द द्वार पर लगे हुए बड़े ताले पर दृष्टि पड़ते ही मन उद्विग्न हो गया। बाहर से ही भीतर में झाँककर दर्शन करने के हेतु द्वार के किसी स्थान में छिद्र भी नहीं था। आखिर मन्दिर की प्रदक्षिणा कर मन मनाया और वहाँ से आगे के लिये चल पड़ा।

यहाँ से अब हल्की उतराई शुरू होती है। चारों ओर की सुषमा रम्य थी। मार्ग के दायीं ओर एक छोटा-सा मकान था। यहाँ से पंगु गाँव दिखाई पड़ता था जो करीब आधा मील की दूरी पर होगा। मैं जब करीब तीन फर्लांग मार्ग तय कर मार्ग के बायें भाग पर बने हुए एक बड़े जलाशय के समीप से गुजर रहा था तब देखा कि वहाँ पर दामुभाई और खाखी बाबा विश्राम कर रहे थे। उनसे सुना कि जलाशय का जल बड़ा ही स्वादिष्ठ है। तब मैं वहाँ पर रुका और छानकर थोड़े जलपान से तृप्ति लाभ की। ये दोनों तो यहाँ पर स्नानादि करनेवाले थे अतः मैंने अकेले ही आगे की यात्रा शुरू कर दी। यहाँ से कुछ दूरी तय करने पर मैं पंगु गाँव में प्रविष्ट हुआ। यात्री थानीधार (पंगु) की कठिन चढ़ाई तय कर यहाँ आ पहुँचने पर पंगु-सा (लंगड़ा-जैसा) हो जाता है अर्थात् यहाँ पर आते ही उसे चाय-पान, भोजनादि से क्षुधा शान्त करने की तीव्र इच्छा हो जाती है। और बाद में विश्राम लेने का जी हो जाता है। इससे स्यात् इस गाँव का नाम पंगु पड़ा होगा ऐसा मुझे लगा। पंगु गाँव में चौंदास के भोटिया लोगों की बस्ती है।[१] यहाँ पर सरकारी आयुर्वेद औषधालय, कपड़े एवं अनाज तेल गुड़ इत्यादि की दुकानें, हायर सेकेण्डरी स्कूल, ग्राम-पंचायत, मिलन-सभा (धर्मशाला), वगैरह हैं। यहाँ के चौंदास के भोटिये लोग ऊनी के आसन, गलीचे, कम्बल, शाल इत्यादि बनाते हैं। ग्राम उद्योग की सरकारी दुकान भी है।

मैं पंगु की कठिन चढ़ाई चढ़कर पंगु पहुँचने पर पंगु (लंगड़ा) नहीं हुआ था अतः मुझे यहाँ पर ठहरने की आवश्यकता नहीं थी। इसीलिए बिना रुके आगे निकल गया। यहाँ से फिर

१—भोटिये लोग भारत के निवासी हिन्दू धर्मी हैं और हिन्दी-तिब्बती मिश्रित भाषा बोलते हैं। उनकी नागरी लिपि है। ये भोटिये लोग तिब्बत को हूण देश और तिब्बतियों को हुणिया कहते हैं। बद्रीनाथ की ओर के माना के भोटिये 'मरच्छा', जोशीमठ की ओर के नीती के भोटिये तोलीया (तोलचा) और जोहार के 'शौका' कहलाते हैं। कुछ लोग शौका को रावत भी कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हल्की उतराई शुरू हुई। पंगु समुद्र की सतह से ६६०० फुट ऊँचाई पर है और अब यहाँ से करीब डेढ़ मील की उतराई है। गाँव के समीप में अखरोट के कुछ पेड़ दिखाई पड़े। यहाँ से चारों ओर का दृश्य इतना तो लुभावना था कि मैं मार्ग पर ही खड़ा रह गया जब कि दृष्टि दूर-दूर के हरे-भरे पहाड़ों के सीढ़ीवाले लहलहाते हुए खेतों पर चढ़-उतर करने लगी। धरित्री का सुन्दर रेशमी हरी साड़ी में छिपा रूप और अधिक निखर उठा था। बीच-बीच में समीर इन धान्यपुंजों वाले खेतों पर से प्रवहमान होता था तब तो ऐसा ही दृश्य खड़ा कर देता था मानो हरे रंग के तरंगोंवाला समुद्र उमड़ रहा हो। मेरे लिए यह ठंडा मधुर सा सुगन्धित पहाड़ी समीर उत्साहवर्धक एवम् प्रेरणाप्रद था। यहाँ से सामने के पहाड़ पर अवस्थित 'सोसा' नामक गाँव स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। वहाँ शीघ्र ही पहुँचने के लिए मेरा मन छटपटाने लगा अतः यहाँ पर अधिक समय तक न रुककर मैंने पुनः अपने पैर आगे बढ़ाये। भगवान् के नाम का चिंतन करता हुआ जब मैं उतराई समाप्त कर नीचे के 'जुंगतीगढ़' नामक एक निर्झर के पास पहुँचा तो इतने में आकाश में उड़ रहे वायुयान की घरघराहट सुनाई पड़ी। पहाड़ों के नीरव वातावरण में इस प्रकार की यान्त्रिक आवाज बड़ी ही कर्कश लगती है। उसमें भी शहरी जीव के लिये तो असह्य हो जाता है। और भारत सीमा पर की तनातनी के समय में तो वह अत्यन्त भयंकर लगता है। ऐसे समय पर मन में कितने ही प्रकार की शंका-कुशंकायें घर करने लगती हैं कि कहीं वह विदेशी गुप्तचरों का वायुयान तो नहीं होगा।[१] पहाड़ों के निवासी भोले-भाले लोगों को वायुयान देखकर

१—विश्व में जैसे-जैसे एक राष्ट्र की अन्य राष्ट्र पर आक्रमण प्रवृत्तियाँ बढ़ती जाती हैं वैसे ही वैसे कभी दिन में तो कभी रात्रि में एक दूसरे के आकाश में कई मील ऊँचे वायुयान या ऐसे ही कुछ यान लोगों की दृष्टि पर पड़ते रहते हैं। कई बार तो ऐसे विचित्र से द्रुतगामी गगनयान की समाचार पत्रों में सनसनीदार खबर छपती रहती है जिसको लोग उड़नतश्तरी कहते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि पृथिवी के समीप के कुछ ग्रहों में निवास करनेवाले लोग विज्ञान एवं तकनीकी में पृथिवी के लोगों से कई गुने शक्तिशाली हैं। वे अक्सर पृथिवी पर सांकेतिक भाषा में संदेश भेजा करते हैं किन्तु अभी तक उन्हें पृथिवी के वैज्ञानिक लोग समझ नहीं पा सके हैं। उड़नतश्तरियों में बैठकर पृथिवी के विज्ञान और तकनीकी रहस्य को प्राप्त करने के लिये वे लोग यहाँ पर आते रहते हैं। इस विषय में तो कितने ही ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। हाल ही में इंगलैंड के दक्षिण-पूर्वी लंकाशायर में पहरा दे रहे मि० हाम्रो और मि० पर्सनेज नाम के दो पुलिसमैनों ने अपने इलाके के अध्यक्ष प्रमुख पुलिस कप्तान मि० एण्ड्रूज को बताया कि उन्होंने १०० फुट से अधिक व्यासवाली एक उड़नतश्तरी देखी है। मि० होउ ने अपनी दैनन्दिनी में लिखा है कि १० अगस्त सन् १९६७ को १२-३० प्रातःकाल आकाश में बहुत ऊँचाई पर एक वस्तु देखी गई जो गोलाकार थी और पूर्व की ओर तेजी से उड़कर जा रही थी। यह कोई यान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS.

बड़ा आश्चर्य होता है। आवाज सुनते ही लोग अपने-अपने घरों में से बाहर निकल आते हैं और एक हाथ आँखों पर ओट दे और दूसरा हाथ कमर पर ठहराते हुए टेढ़े होकर आवाज की दिशा में खोजने लगते हैं। वायुयान दिखाई पड़ने पर लोग आनन्द-विभोर होकर कूदने और तालियाँ पीटने लगते हैं। अन्यान्य लोगों को भी बुलाने लगते हैं। पहाड़ी लोग वायुयान को "बड़ी चिड़िया" के नाम से पहचानते हैं। यहाँ जुंगतीगढ़ के समीप भी मुझे लोगों का उपर्युक्त वर्णित दृश्य देखने को मिला। वायुयान को देखते ही मैंने थैले में से दूरवीक्षण-यंत्र (Binocular) निकाला और उस ओर दृष्टि दौड़ाई। मालूम पड़ा कि वह V आकृति का था और पीछे के भाग पर लाल रंग के दीये थे। मन ने कहा कि वह भारतीय सीमा रक्षा दल का यान है क्योंकि विदेशी वायुयान को दिन में सीमा के इतनी भीतर घुसना असंभव सा है। दस मिनट पर्यन्त वह इधर-उधर घूमघाम कर आखिर में दक्षिण दिशा में अदृश्य हो गया। उस समय मेरी घड़ी में नौ बजा था।

जुंगतीगढ़ नामक निर्झर काष्ठ से बना पुल के नीचे से होकर बहता था। पुल के इस पार दक्षिण हाथ पर समीप में एक दो छोटे घर थे जिनमें भोटिये लोग निवास कर रहे थे। भोटिये लोगों के बारे में यहाँ पर संक्षेप में कुछ कहना आवश्यक समझता हूँ। भोटिये लोग हिमालय में भारतीय उत्तरी सीमा के निवासी हैं। वे क्षत्रिय जाति के हैं और हिन्दू धर्म पालन करते हैं। अधिकांश लोग हिन्दी भाषा में बातचीत कर लेते हैं। वे व्यापारी हैं और प्रति वर्ष गर्मी के दिनों में तिब्बत की मण्डियों में (बाजारों में) पहुँचकर भारत के कपड़ा, अनाज, तेल, गुड़, शक्कर, चाय, बर्तन, सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्रियाँ इत्यादि बेचते हैं। जब ये लोग शीतकाल में तिब्बत से अपने घर (भारत) को वापस लौटते हैं तब साथ में तिब्बती ऊन, नमक, कस्तूरी, चमड़े, चँवर, सुहागा इत्यादि ले आते हैं। भोटिये लोग शरीर के मजबूत और स्वभाव के उद्यमी होते हैं और मांस, मद्य इत्यादि का भी आहार करते हैं। पुरुषों की अपेक्षा भोटिया स्त्रियाँ अधिक पुरुषार्थी होती हैं। उनका महत्त्व भी अत्यधिक है। वे अपने सीढ़ी वाले खेतों में परिश्रम करती हुई देखने में आती हैं। घर में भी फालतू समय में वे हाथों में तकला लेकर ऊन कातना, गलीचा और आसन बनाना, ऊनी के वस्त्र गूँथना इत्यादि कार्य करती रहती हैं। पीठ पर बोझ होने पर भी और मुख से बातचीत करने पर भी वे अपने हाथों से कुछ-न-कुछ उपयोगी कार्य करती रहती हैं। उनके देह के आभूषणों में चाँदी के रुपये, अठन्नी, चवन्नी इत्यादि जड़े हुए बड़े-बड़े हार और गले, हाथ, पैर और कटि में पहनने के लिए चाँदी के कड़े, गलेबन्द, कटिबन्द, कान और नाक के फूल इत्यादि हैं। तिब्बती स्त्रियों की तरह वे भी

या पुच्छल तारा नहीं था। मि० पर्सनेज ने भी इसे देखा। उसने कहा कि मैं उड़नतश्तरियों में विश्वास नहीं कर पाता, लेकिन अब तो उसे मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लम्बे जूते पहनती हैं। गर्मियों में पुरुष लोग जब तिब्बत में व्यापार के लिए चले जाते हैं तब घर का और खेती का सारा कार्य स्त्रियाँ ही संभालती हैं। पुरुष व्यापार करते हैं जब कि उपार्जित धन की सुरक्षा स्त्रियों की जिम्मेदारी पर रहती है। बिना स्त्रियों के परामर्श किये पुरुष किसी विशेष प्रकार के व्यापारादि करने के लिए आगे नहीं बढ़ता। परिवार के सभी सदस्य एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। स्त्रियाँ देह से मजबूत, उद्यमी, स्वतंत्र और आनन्दी स्वभाव की होती हैं।

जब मैं जुंगतीगढ़ के समीप कुछ समय तक विश्राम करता हुआ चारों ओर के मनमोहक सृष्टि सौन्दर्य देख-देखकर हर्षित हो रहा था तब वहाँ पर कुछ भोटिया स्त्रियाँ भी खड़ी थीं। वे वायुयान देखने के लिये अपने-अपने घर से बाहर आयी थीं। मैं वहाँ से प्रस्थान कर रहा था तब उन्होंने मुझे श्रद्धाभक्ति व्यक्त करते हुए "नमो नारायण" शब्द उच्चारण करते हुए प्रणाम किया जिससे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। अपने को सुशिक्षित मानने वाले शहरों के अभिमानी लोग जो साधु महात्मा को देखकर भगवन्नाम लेने में और अपना मस्तक झुकाने में लज्जा का अनुभव करते हैं, उनसे तो पहाड़ों के ये भोले-भाले अशिक्षित प्राणी कई गुने अच्छे हैं। उनकी किंचित्मात्र भी विद्या महान् है क्योंकि उसमें विनय छिपा हुआ है। हमारे शास्त्रों में भी इस ओर संकेत किया है, "विद्या विनयेन शोभते"।

जुंगतीगढ़ का पुल पारकर मैं आगे बढ़ रहा था। सहसा पीछे से कुत्ते के भौंकने की आवाज सुनकर मैंने मुड़कर देखा तो एक छोटा-सा सुन्दर पिल्ला भूकता हुआ मेरे पीछे-पीछे आ रहा था। उसे शान्त करने के हेतु मैं जैसे ही चुटकियाँ बजाता गया और सिटी की आवाज करने लगा, वैसे ही वैसे वह जोरशोर से भूकने लगा। इतने में एक भोटिया स्त्री दौड़ती हुई आई और पिल्ला को पकड़ कर पुचकारती हुई घर की ओर ले जाने लगी। फिर भी वह मुड़-मुड़कर देखता हुआ भूकता ही था मानो वह अपने मालिक का नमक अदा कर रहा हो। मैंने हिमालय की यात्रा में अनुभव किया था कि जहाँ-जहाँ भोटिये लोगों की बस्ती मिलती है वहाँ के प्रत्येक घर में एक-दो पालतू कुत्ते तो होते ही हैं क्योंकि ये ईमानदार प्राणी रूखी-सूखी रोटी का टुकड़ा खाकर भी अपने मालिक के पशुधन की अहर्निश रक्षा करते रहते हैं? ये बड़े खूंखार होते हैं। इसलिये यात्री को तो भोटिये के वस्ती वाले गाँवों में प्रवेश करते समय बहुत ही सावधान रहना चाहिये।

कुछ दूरी तय करने पर वहाँ से चढ़ाई शुरू हुई। यह पौने दो मील की चढ़ाई तय करने के बाद ही सोसा गाँव आता है। मैं श्वास के साथ-साथ ही मंत्र जप करता हुआ धीमे-धीमे चढ़ाई चढ़ने लगा। मार्ग कच्चा तो था ही, कई जगह पर तीक्ष्ण धार वाले पत्थरों से बिछा हुआ था जो नंगे पाँव चलने वालों के लिये तो कंटकपथ-सा था। आश्चर्य है कि ग्राम-सुधार समिति का इस ओर क्यों ध्यान नहीं जाता होगा। करीब एक मील चढ़ाई चढ़ने पर मार्ग पूर्वपिक्षा अच्छा आया जिससे चलने की गति कुछ तीव्र हुई। यहाँ से मार्ग के दोनों ओर के हरे-भरे खेत चढ़ाई के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परिश्रम से उत्तेजित यात्री की चित्तवृत्ति को शान्त कर देते हैं। सुदूर की सुन्दर पहाड़ पंक्ति, नीचे का रम्य प्रदेश इत्यादि यात्री की जलती आँखों को शीतलता देते हैं। प्राकृतिक चिकित्सकों का मत है कि ऐसे हरे-भरे प्रदेश में रहने से आँखों की बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। इसका मैंने भी अनुभव किया है। चढ़ाई चढ़ते समय एक मोड़ के समीप जब मैं कुछ रुका तो समीप के खेतों में कार्य कर रही भोटिया स्त्रियाँ लम्बे स्वर से 'नारायण-नारायण'' के शब्द उचार करने लगीं। मैंने भी उनकी श्रद्धाभक्ति का मूल्यांकन करते हुए हाथ से आशीर्वाद देते हुए नारायण-नारायण शब्द का वार-बार उच्चार किया। वायु के हल्के से झोंके ने पेड़-पौधों को झकझोरा। वातावरण में आनन्द छा गया। कैलास के प्रसिद्ध सन्त दिवंगत आत्मा श्री नारायण स्वामी जी का इस भोट प्रदेश में अच्छा प्रभाव होने से यहाँ के आवाल वृद्ध स्त्री-पुरुष सभी लोग साधु-महात्माओं को देखकर नारायण शब्द का उच्चारण करते हैं। ये सब शुभ लक्षण हैं, इस प्रदेश की उन्नति के आभास हैं। ऐसा मुझे लगा। इस प्रकार से प्रकृति से आनन्द पाता और उसका वितरण करता हुआ मैं चढ़ाई चढ़कर 'सोसा' गाँव में आ पहुंचा। उस समय मेरी घड़ी में ९-३५ हुआ था।

मार्ग के दक्षिण भाग में वृक्षघटा के नीचे टूटी-फूटी दो-तीन झोपड़ियाँ खड़ी थीं। उसके समीप में गाँव के छोटे-छोटे छात्र-छात्रायें बैठकर अंक रट रहे थे। उत्तर भारत के शिक्षा विभाग एवं 'सोसा ग्राम सुधार समिति' द्वारा पूर्णरूपेण उपेक्षित इस प्रकार की ग्राम्यशाला, जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैं पहली बार देख रहा था। एक बड़ा लड़का सबके मध्य में खड़ा रहकर चिल्लाता हुआ अंक बोल रहा था और अन्य छात्र-छात्राएँ तदनुसार रट रहे थे। ये सब बच्चे गीली और गन्दी-सी भूमि पर बैठे हुए थे। बड़े लड़के से पूंछने पर पता चला कि उत्तर भारत सरकार ने अभी तक इस गाँव में शाला नहीं बनाई है अतः इस प्रकार से वृक्षघटा के नीचे छात्रों को पढ़ाया जाता है। शाला की शिक्षक स्त्री है। वह एक-दो मास की छुट्टी लेकर तीर्थयात्रा के लिए गई है। आजकल में उसके आने की संभावना है। लड़के की बात सुनकर मुझे हम लोगों के साथ अस्कोट की धर्मशाला में रहे हुए इसी गाँव के वे चार तीर्थयात्री याद आ गये जो हिमालय के चारों धाम की पैदल यात्रा समाप्त कर अपने गाँव की ओर वापस लौट रहे थे। मैंने उक्त लड़के को शुभ समाचार सुनाया कि हम लोगों के पीछे ही सोसा के श्री विशाल सिंह और उनके घर के लोग आ रहे हैं। उन यात्रियों में एक सफेद वस्त्र पहनी हुई एक महिला भी है जो शिक्षित सी लगती है। मेरी वात सुनते ही वह लड़का हर्ष से उछलता हुआ बोल पड़ा "उनका ही नाम कमली वाई है जो इस शाला की शिक्षिका हैं।" इस प्रकार से कुछ समय पर्यन्त उसके साथ वातचीत करने के वाद मैं इन लड़कों की पढ़ाई पद्धति देखने लगा। मैंने देखा कि उक्त बड़ा लड़का हाथ में एक सोटी लेकर हवा में बिंजता हुआ जिस प्रकार से छात्रों को रटा रहा था वैसे ही तोते के सदृश वे सब भय से रट रहे थे। ये देख मुझे अपार दुःख हुआ। छात्रों को गणित, विज्ञान, इतिहास,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूगोल इत्यादि रटाने की अपेक्षा यदि उन्हें इन सब पाठ्यक्रम को अच्छी तरह से समझाया जाय तो वे भविष्य में इन्हें भूलेंगे नहीं। इस प्रकार से अभ्यास करने पर वे मेधावी होंगे और उच्च-स्तरीय शिक्षा प्राप्त कर अनुसंधान कार्य में समर्थ सिद्ध होंगे। भारत सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा अध्यापकों को इस महत्त्वपूर्ण विषय की ओर सतत ध्यान देने के लिए आदेश करना चाहिये।

छात्रों के गन्दे देह एवं वस्त्र और 'मारकर मुसलमान बनाने की' इस जबरदस्ती शिक्षा-पद्धति को देखने से मुझे इन लोगों पर दया आ गई लेकिन इस समय मेरे पास में उन्हें कुछ मिठाई खिलाने के सिवाय और कोई शक्ति नहीं थी। अतः जेब से एक रुपये का नोट निकालकर उस लड़के को देते हुए मैंने कहा कि इस धन की मिठाई खरीद कर उसे समान रूप से सभी छात्रों में वितरित कर दिया जाय। यह सुनते ही सभी छात्र बड़े ही प्रसन्न हो गये और आभार व्यक्त करने लगे। यह देख दान के अभिमान से अपने को अलिप्त रखने के लिए मैंने वहाँ पर अधिक समय ठहरना अनुचित समझा। अतः वहाँ से खिसक कर कुछ दूर के वृक्षों के झुरमुट की छाया में विश्राम के हेतु बैठ गया। वहाँ से सामने वाले पहाड़ पर का पंगु गाँव दीख पड़ता था। नीचे की ओर उपत्यका में दृष्टि फेंकने पर वहाँ जुंगतीगढ़ और उसके समीपवर्ती घर भी दिखाई दे रहे थे। दूरवीक्षणयन्त्र से देखने पर तो ये सब निकटतम प्रतीत हुए। पंगु गाँव से कुछ दूर के उस जलाशय की ओर यन्त्र रखने पर देखा कि वहाँ पर राजदेव जी, जयन्ती भाई वगैरह जल पी रहे थे। उस समय मेरी घड़ी में ९-५० बज चुका था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हमारे यात्रा संघ के ये लोग अभी तक पंगु भी नहीं पहुँच पाये हैं। आज चारों ओर का दृश्य अपूर्व सा था। दूरवीक्षण यन्त्र से तो सारा दृश्य जीवन्त सा दिखाई पड़ता था। अब यहाँ से उठकर मैं सोसा गाँव में प्रवेश करते हुए गाँव के चिकित्सालय में आ पहुँचा। वर्तमान समय में इस चिकित्सालय को डा० तिवारी जी चला रहे हैं। पहाड़ी गाँव के चिकित्सालयों में भरती किये गये नये-नये चिकित्सक अधिकांश में 'अंधन में कनवा राजा' ही सिद्ध होते हैं। क्योंकि वहाँ पर उनसे प्रतियोगिता करने वाले कोई नहीं होते हैं। किन्तु यदि वे 'नीम हकीम खतरे जान' सिद्ध हो गये तो उनका शीघ्र ही मैदानी इलाकों में स्थानान्तरण हो जाता है। सुना था कि सोसा के चिकित्सालय को श्री नारायण स्वामी जी का एक मद्रासी भक्त, कर्नल श्री रमण राव, ने अपनी सुपुत्री स्व० शान्तादेवी के स्मरणार्थ जन-कल्याण के हेतु बनवाया है। इसलिये इसका नाम "शान्ता मेडिकल हाल" रक्खा गया है। इस समय उसका संचालन उत्तर भारत का स्वास्थ्य विभाग कर रहा है।[1]

१—जर्मनी के हेम्बर्ग नगर में जुलाई ६६ में एक अत्यन्त आधुनिक ढंग का आठ मञ्जिले का अस्पताल खोला गया है जिसमें १६ विभिन्न वार्ड हैं और ५०२ रोगियों की व्यवस्था है। प्रत्येक रोगी के प्रत्येक पलंग का मूल्य ही ५२००० हजार (१३ हजार डालर) है। इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डा० तिवारी से इधर-उधर कुछ बातचीत करने के उपरान्त मैं वहाँ से विदा हुआ और कल्याण सिंह भोटिये की दुकान पर आया। आज वहाँ पर उसकी स्त्री दुकान का सब कार्यभार सम्भाल रही थी। सोसा गाँव में तीन-चार अच्छी-अच्छी दुकानें हैं जहाँ पर अनाज, पापड़, अन्यान्य सब चीजें मिलती हैं। मैंने देखा कि सभी दुकानों में आलू से भरी बोरियाँ रक्खी हुई हैं। इस विषय में दुकानदार से पूछने पर पता चला कि इस पहाड़ी प्रदेश के समीपवर्ती गाँवों में आलू की बड़े परिमाण में खेती होती है। यहाँ के आलू शीघ्र पक जाते हैं एवं स्वादिष्ठ होते हैं इसलिए मैदानी इलाकों में इसकी अधिक माँग रहती है। स सा में चाय की होटल, सभा (धर्मशाला), ग्रामोद्योग-भवन इत्यादि हैं। यहाँ के लोग खेतीबारी, गृह-उद्योग और व्यापार पर निर्भर रहते हैं। कुछ भोटिये व्यापारी प्रतिवर्ष तिब्बत में व्यापार के लिए पहुँच जाते हैं। इन व्यापारियों की तिब्बत के लिये प्रथम यात्रा जून में शुरू होती है और दूसरी यात्रा सितम्बर में होती है।[1] सोसा के लोग अधिक भक्तिभाव वाले देखे गये हैं, साधु-महात्मा के प्रति यहाँ के लोगों में बड़ी श्रद्धा-भक्ति है जिसका कारण है यहाँ से कुछ दूर पर स्थित श्री नारायण स्वामी का नारायण आश्रम जो यहाँ से पूर्व दिशा में करीब तीन मील दूर एक सुन्दर हरे-भरे करीब ९००० फीट की ऊँचाई वाले पहाड़ पर अवस्थित है।

(क्रमशः)

हेम्बर्ग नामक पलंग में सभी आधुनिक सुविधायें हैं, जैसे कि नर्सों को बुलाने के लिए रेडियो, माइकोफोन, उपचार के लिये नये आधुनिक यन्त्र और उपकरण इत्यादि। रेडियो ऐक्टिव किरणों की सहायता से बन्द कमरे में उपचार हो रहे रोगी की तबीयत की जाँच डाक्टर टेलिबीजन सेट पर भी करते हैं। इस अस्पताल में रोगियों के लिये भोजन बनाने का तरीका वही है जो आधुनिक यात्री विमान में है। यहाँ की सफाई का भी एक विशेष तरीका है जिससे यहाँ पर न तो मेहतर है न झाड़ू इत्यादि की आवश्यकता। इस आदर्श अस्पताल के निर्माण में ६५ लाख डालर खर्च हुआ है।

१—भोटिये व्यापारी की तिब्बत की यात्राएँ वर्ष में करीब दो होती हैं, जून में प्रथम और सितम्बर में द्वितीय। आने-जाने का यात्रा का काल इस प्रकार से है।

१—अप्रैल—मई—तिब्बत की ओर यात्रा। या गरब्यांग तक यात्रा।

२—मई—जून—दूसरी यात्रा।

३—जून—जुलाई—धनी व्यापारी लोगों की, भिखमंगों की तिब्बत की ओर यात्रा।

४—मध्य सितम्बर—नीचे की ओर प्रथम यात्रा। धारचुला तक यात्रा।

५—अक्टूबर—सपरिवार नीचे की ओर यात्रा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"बम्बई में श्री श्री माँ का ७४ वाँ जन्मोत्सव"

(श्री चरण कमलाश्रिता)

इस वर्ष यह शुभ महोत्सव बम्बई के भक्तों द्वारा विले पार्ले में, श्री बी० के० शाह के निवास-स्थान पर बड़े समारोह से मनाया गया। उनके सुन्दर उपवन में माँ की कुटिया तो पहले से ही बनी हुई थी जिसमें पहले भी माँ कई बार ठहर चुकी थीं। सुरम्य वाटिका के मध्य सत्संग का वड़ा सा पण्डाल बनाया गया था जिसमें सामने महात्माओं के बैठने का स्थान अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया हुआ था तथा पीछे की ओर सुन्दर वृक्षों, पौधों एवं पुष्पलताओं की हरी-भरी स्वाभाविक सजावट भी नयनाभिराम थी।

उस शान्त वातावरण में महामण्डलेश्वरों तथा अन्य महात्माओं के श्री मुख से झरित अमृतवर्षा की सुधाधारा प्रवाहित होती तथा सुन्दर भावपूर्ण पदों, भजनों, रामायण, गीता, चण्डी, आदि के पवित्र मधुर स्वर गूंजते तथा श्रोताओं के मन बरबस तल्लीन हो जाते थे। उसी सुधावृष्टि से आनन्द-सागर उमड़ कर संसारिक-चिन्ताओं रूपी कूड़ा-कर्कट को मानो बहा ले जाता तथा उसके स्थान में अनमोल रत्न प्रदान कर जाता। सहस्रों नर, नारी, बालक, युवा, वृद्ध, सब ही इस स्वर्ण-अवसर से अकथनीय लाभ प्राप्त कर कृतार्थ हो रहे थे। वृन्दावन से आई हुई विख्यात रास-मण्डली की अत्यन्त मनोहर भावपूर्ण लीलाएँ भी देखते ही बनती थीं तथा मन को आनन्द से भर देती थीं।

इस वर्ष जन्म महोत्सव केवल ३ दिन का ही पड़ा, (२ मई से ५ मई तक) इतने थोड़े से समय में भी सब कार्य्य सुन्दर ढंग से हुए। २ मई की रात में भोर ४ बजे तक कीर्तन भजन आदि चलता रहा फिर प्रातःकाल लगभग ६ बजे तक माँ की एक बड़ी फोटो की षोडशोपचार से पूजा हुई। ३ मई की १०८ कुमारियों का भोजन पूजन आदि हुआ।

४ मई की रात में, (माँ की पुण्य जन्म तिथि) पण्डाल के मञ्च को पुष्प लड़ियों तथा विविध प्रकार के पुष्पों एवं पत्रों से अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया गया। दीवारें खिड़की, आदि फूल के ही प्रतीत होते थे। एक ओर माँ का तख्त लगाकर उसको भी सुन्दर कलात्मक ढंग से सजाया गया एवं दूसरी ओर सब महात्माओं के बैठने के लिये आसन सुन्दर ढंग से लगाए गए थे। माँ के तख्त के सामने पूजन की सब सामग्री तथा मञ्च के मध्य भाग में नाना प्रकार के भोग बड़े थालों में सजाकर रखे गए थे। ४ बजे के लगभग, (बंगाल के हिसाब से ३ बजे) ब्राह्ममुहूर्त की सुन्दरवेला में महात्माओं के साथ माँ पण्डाल में पधारीं तथा तख्त पर, श्री अवधूत जी आदि महात्माओं के आग्रह से, विराजीं। पूजा आरम्भ हुई तो लेटकर समाधिस्थ-सी हो गईं। दीदी माँ भी एक कुर्सी पर माँ के सिरहाने बैठीं रहीं। ब्रह्मचारी श्री निर्वाणानन्द ने माँ की पूजा आरम्भ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की तथा उन्होंने जब माँ के दिव्य चरणकमलों पर से चादर तनिक ऊपर को सरकाई तो सचमुच ही माँ के चरणतल उस समय स्वच्छ सरोवर में दो अरुण-कमल की भाँति प्रस्फुटित हो उठे। उन्होंने चरणकमलों के नीचे एक गहरा पात्र रखकर एक-एक करके पञ्चामृत से स्नान कराया, पुष्पाञ्जलि आदि अर्पित की। अत्यन्त सुन्दर विधि तथा मंत्रों द्वारा, प्रातःकाल लगभग ६ बजे तक पूजा चलती रही फिर शंखध्वनि के साथ सुन्दर थालों तथा प्रदीपदानों में सजी हुई आरती हुई। जिन भाई बहनों ने निर्जला व्रत रखा था उन्होंने माँ के श्री चरणों में पुष्पाञ्जलि चढ़ाई। उसके बाद उपस्थित सभी भाई बहनों को माँ के चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पण करने का अवसर दिया गया तथा सबको पुष्प-फलादि प्रसाद तथा रूमालों में बँधी हुई मेवा प्रसाद; महायज्ञ की भस्म, रोरी आदि प्रसाद दिया गया। सब अत्यन्त सुन्दर रीति से हुआ। रात्रि कैसे बीत गई पता ही न चला। फ्रांस से भी एक दम्पत्ति इस शुभ-अवसर पर योगदान करने आए थे। वे दोनों भी तन्मय होकर पूजा देख रहे थे। प्रातःकाल जब मैं पण्डाल से जाने लगी तो उन बहिन से मैंने पूछा कि वे क्या ३ बजे से आकर बैठीं तो उन्होंने मुस्कुरा कर उत्तर दिया कि वे रात्रि ११ बजे से ही बराबर वहाँ बैठी हुई थीं। मैंने मन ही मन सोचा यह लोग धन्य हैं जो अभ्यास न होते हुए, तथा भाषा भी न समझते हुए, इस प्रकार सारी रात श्रद्धावश बैठे रहे। (इन बहिन से एक बार पहले भी माँ के ही पास मिलना हुआ था।)

५ ता० की रात को 'नाम-यज्ञ' के अधिवास के उपरान्त रात भर स्त्रियों का कीर्तन, (महामंत्र का) हुआ। पण्डाल में एक ओर पुष्पों तथा पत्रों से सजा कर स्तूपाकार एक सुन्दर मञ्च बनाया गया था जिसके चारों ओर दर्शनीय तस्वीरें लगाई गई थीं तथा सुन्दर अल्पना लगाया गया था। इस मञ्च के ही चारों ओर घूम-घूमकर कीर्तन हुआ। किसी बहिन ने हारमोनियम गले से बांधा तो किसी ने पखावज—किसी ने मंजीरे लिये किसी ने करताल। कोई ताली से ही ताल दे रही थीं—इस प्रकार सब आनन्द विभोर हो कीर्तन कर रही थीं—बीच-बीच में कोई बहिन दोनों बाँहें ऊपर उठा कर नृत्य मुद्रा से नृत्य सा करती चलतीं—कोई पैरों को ताल के साथ चलाती हुई घूमतीं—इस प्रकार बहनों ने आनन्द मग्न हो कीर्तन किया। प्रातःकाल से सायंकाल तक पुरुषों ने उसी प्रकार मञ्च के चारों ओर घूम-घूम कर अतिशय आनन्द में मत्त होकर कीर्तन किया। कभी-कभी माता जी भी बीच में पधार कर, १-२ चक्कर मञ्च के चारों ओर लगा कर, सब का आनन्द एवं उत्साह और भी बढ़ा जाती थीं। माँ की कुटिया में किसी बहिन ने पूजा करके माँ को बनारसी साड़ी पहनाई तथा फूलों का मुकुट लगाया सो एक बार माँ उसी प्रकार बाहर निकल कर कीर्तन में एक चक्कर मञ्च का लगा गईं, (उस समय माँ साक्षात् श्री कृष्ण ही लग रही थीं।) सब भाई आनन्दविभोर हो सूर्यास्त तक कीर्तन करते रहे। कीर्तन की समाप्ति सदा की भाँति सुन्दर पदों के गायन तथा दही की हाण्डी तोड़ कर हुई। सब के माथे पर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उस दही से टीका लगाया गया। उत्सव के बीच अखण्ड जप भी चला। ५ ता० को पूर्णाहुति तथा भण्डारा हुआ। इस पुण्य महोत्सव में शाह परिवार तथा बम्बई के मातृ-भक्तों ने जो तन, मन, धन से उत्साहपूर्वक सेवा की वह सराहनीय है। माँ तथा महात्माओं की सेवा का यह स्वर्ण अवसर पाकर मानों वे फूले नहीं समाते थे।

रात में आधा घण्टा जो मातृ-सत्सङ्ग का समय था वह सबको ही बहुत प्रिय था। उस समय कुछ भाई तथा बहिन अपने प्रश्न तथा शंकाएँ माँ के सन्मुख रखते थे। माँ तो हमेशा ही कहती हैं जैसा बजाओगे वैसा सुनोगे। माँ यह भी प्रायः ही कहती हैं कि भगवान् की कृपा का तो हर समय वर्षण हो रहा है, पात्र को सीधा रखने से भर जाता है और उल्टा होने से बह जाता है। इस सम्बन्ध में किसी भाई ने प्रश्न किया, "माँ पात्र सीधा कैसे हो?" माँ ने कहा, "सत्सङ्ग, सद्ग्रन्थ-पाठ, ध्यान, भजन करते-करते पात्र सीधा हो जाता है।" किसी भाई ने माँ से पूछा कि हम लोगों का बार-बार माँ के पास आने को दिल क्यों करता है व आते हैं तो पूर्ति क्यों नहीं होती। माँ ने सहज भाव से कहा, "इस शरीर ने कहा न कि इस शरीर का आत्मा ही समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का आत्मा है, तो अपने पास अपना आते हैं। और अगर सचमुच इच्छा हो तो भगवान् बिना पूर्ति करे रह नहीं सकते।" किसी और एक भाई ने प्रश्न किया कि फल की वजह से ही तो कर्म में रुचि होती है यदि फल की आसक्ति त्याग दें तो कर्म में रुचि कैसे रहे? इस पर माँ ने कहा, "भगवत् प्राप्ति रूपी रुचि तो रहेगी ही वह दुनिया का फल नहीं है।"

एक दिन किसी भाई ने माँ से प्रश्न किया कि कितने ही देवी, देवता, महापुरुष हुए हैं उनसे आपकी मुलाकात होती है या नहीं? या वे आप में ही समाए हुए हैं। माँ ने कहा, "तुम जो कहो वही है। भगवान् का प्रणव-स्वरूप, वृक्ष, लता, देवी, देवता, अवतार जो कहो और भगवान् स्वयं अपने में अपने प्रकाश के लिये—सन्त विग्रह रूप में रहे हैं। विश्व जगत् में जो सब है देखो एक किस्म नहीं है—वृक्ष की २ पत्ती भी एक सी नहीं। भगवान् में सब, व भगवान् सबमें—वही है। आना, जाना, दर्शन, अदर्शन, ज्ञात, अज्ञात जो कुछ है और रास्ता क्रम भी अलग-अलग रहा। अनन्त में एक—एक में अनन्त। महासूत्र जो रहा है सर्वत्र वही है। एकमात्र तत्त्व वही है। आने-जाने का सवाल है भी और नहीं भी है। तुम जो कहो वही है। अनन्त प्रकार है। नित्य प्रकाश—जाना भी नहीं आना भी नहीं। तुम जिस स्थान से पूछोगे उसी प्रकार उत्तर पाओगे।"

किसी ने पूछा कि जब तक गुरु प्राप्त न हों तब तक ध्यान जप कैसे करें? माँ ने कहा, "अपनी रुचि के अनुसार करे। पहले जागरण होने दो फिर अपने आप सब हो जायगा। जो भगवान् की प्राप्ति के लिये नाम लेगा वह जरूर काम करेगा। वृक्ष और बीज में फर्क क्या?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाहर दृष्टि से फर्क है, बीज से वृक्ष उत्पन्न हुआ। किसी-किसी पत्ती में भी बीज रहता है—सारे अङ्ग में बीज है। जब नाम में तुम्हारी स्थिति आ जायगी तो गुरु प्रकाश हो जायगा। सर्व तत्त्व पाना हो तो नाम स्वयं ही कृपा करेगा। प्राप्त करने की कोशिश करो। बीच में खड़े होकर फल नहीं देखना चाहिये—जितनी देर फल देखोगे इतनी देर आगे क्यों नहीं बढ़ोगे ?"

मन्त्र में निष्ठा रखना। ख्याल करना सबका गुरु हमारा गुरु, हमारा गुरु सबका गुरु। जहाँ जाने से निष्ठा बढ़े वहाँ जाना चाहिये, जहाँ जाने से बाधा हो वहाँ नहीं जाना चाहिये।

—

"क्रियाशक्ति कौन—तुम्हीं हो।
शक्ति कौन ?—स्वयम्।"

—माता आनन्दमयी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Just as there is a veil of ignorance for the individual,
So there is also a door to Knowledge.

Mātri Vāni

God is complete. Thus for full revelation one has to go to Him. Only because of the notion of God's absence is there sorrow in the world. Where God is manifest there are no 'two'—sorrow has no place.

* * *

Go forth to realize God—try at least. This is the genuine madman.† Madman (*pagol*) means *pawa gol, peye gele*†† achieved; signifying unlimited enlightenment. When one becomes obsessed by this madness, the madness after the world of duality takes flight. Some people are crazy over another's body. By this sort of insanity, falling a prey to infatuation (*moha*) and delusion (*māyā*), one ruins one's body. Turning into a maniac after God will not spoil one's body.

* * *

If, instead of being consecrated to God's work, divine power is employed for worldly ends, it is wasted. By using spiritual energy for worldly pursuits, the current of this energy will be broken. When by sustained *sādhana* one has been blessed with power, it is not right to squander it.

* * *

† Madman in the sense of otherworldly, visionary, seer. Siva for instance is also called "*Pagla*" (madman).

†† A play upon words that cannot be translated. Being mad after something implies intense concentration and one-pointedness and therefore achievement is bound to follow,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Everything is God's *vibhūti*,† His *māyā*,†† His *līlā*, His very own play. To spend for worldly purposes what one has received spiritually in the course of that play is not correct.

* * *

Mahāmāyā is one thing and *vishaya māyā*, the delusion of sense objects—sense enjoyment—quite another. For you, a pilgrim to the Eternal, it is detrimental not to tread the path to Him. Having left aside sense objects, do not remain entangled in supernormal powers. Supernormal powers are but a stage. They may be beneficial, they may also be harmful. But through them you will not attain to the Supreme, the Ultimate. Having obtained power it must not be dissipated. Aspire to Self-realization. Otherwise there will be obstacles—decline.

* * *

Using power is a very different matter from coming about spontaneously, of its own. If power is used deliberately, the 'I' remains and consequently a downfall may result from it. Whereas in the case of a spontaneous occurrence this is not so.

* * *

Infatuation (*moha*) causes entanglement while the love of God (*prema*) leads to Self-revelation. Having become involved in *moha*, weeping and regret is bound to follow.

* * *

He who is the Supreme Friend never deceives. From the wordly point of view, a son may be disowned, but that Friend can never be given up.

---

† *Vibhuti* The one Supreme From revealed in all objects of the senses.

†† The Supreme Divine Power by which the One conceals Itself and appears as the many.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

About Sri Anandamayi Ma*

Dr. Bithika Mukerji, M.A., D. Phil.

June 1966. Satsang Hall of the Sri Anandamayi Ashram in Kishenpur, Dehradun. Kirtan is just over. It is the time for conversation with Mataji. The hall is quite crowded with the inmates of the Ashram, guests from out side who have come to spend some time with Mataji, and visitors from the town. An old gentleman who is occupying a front seat asks permission to put a question to Mataji. She smilingly nods assent.

"What have you achieved by your *sādhanā* ?" he asks.

"Here the question of achievement or *sādhanā* does not arise. I am what I have always been."

The gentleman consults a paper and then says :

"What is your message to the world ?"

"What message can one give who has not achieved or learnt anything ?"

The gentleman does not share the general appreciation of this prompt rejoinder. He is in earnest.

"Ma, I have travelled a long distance to see you. When I go back, my friends will ask : 'What is she like ? What did she say ?' and then what am I to tell them ? I want to understand your message !"

"Very well, tell them 'I have a small daughter ; she prattles of whatever occurs to her.' You said, 'When others ask', therefore, I said 'I am your child', but actually you and I are one, aren't we ? There is only one all-pervading *Ātmā*, naught else except the ONE. You yourself are a barrier unto yourself in the form of *samskāras*. The destiny of

* Reprinted from "The Mountain Path," vol. XI 3, July 1968.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

finish my educational career before I think of doing anything else," and : "Education is not important. She told me : 'This education will help you to earn material wealth only. You must strive for spiritual wealth'." Or : "Mataji so strongly advises against the breaking up of a home : it is no use arguing that my difficulties can be solved only by going away. She always exhorts me to have patience and forgive again and again." And "She has told me that no duty is binding for one who goes forth in quest of God."

Some will assert that she upholds the ideal of social service, others that she advocates renunciation of the world for the sake of God, and each person will be correct.

It must be understood that all these teachings are the variations of just one theme : The supreme duty of every human being is to strive for the realization of THAT WHICH IS. She knows no compromise in this. All other obligations, namely towards family, country, humanity have, their places in the hierarchy of human values but they are all subsumed under the supreme duty towards God :* "To aspire for the realization of Truth is alone worthy of man." "It is man's duty to bear in mind that he exists for God alone—for His service and for the realization of Him."

But it cannot be said that Mataji recommends renunciation of the world. To the oftrepeated question : "Should I renounce the world because this would be helpful to a life of *sādhana*," she has variously replied : "The time has not come for you to do so since the question arises in your mind whether you should or not."

"The call of the Divine must be felt as a compulsion. A man who hears this call leaves all behind even as a dry leaf falls from its branch."

---

* Quoted from "*Matri Vani*", a collection of Mataji's replies to letters.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"If renunciation does not purge one clean of every sense of duty and obligation it is merely of a flight into another world."

"A man does not debate whether he should escape from a holocaust."

Mataji generally maintains that so long as duties are meaningful they should be carried out meticulously and as a service to God.

She repeats this again and again to statesmen, businessmen, intellectuals, ignorant, rich, poor, old and young. "The Ashram of the householder is a field of service and every service should be performed as a worship of God".

*"Abide by your duty. To live in the home that he has created for himself is surely fitting for a householder. Do not, however, neglect the search for your real Home. Only when this has been found has one truly come home."

"There are various modes of living : one is the Ashram of the householder; another to do service, regarding whomever one serves as a manifestation of the Supreme Being; a third way is to fix Self-realization as the one and only goal and advance towards it with uninterrupted speed and determination. In keeping with his inclination and bent of mind everyone chooses one of these modes of living. God Himself will take care of everything that concerns a man who puts his whole trust in Him."

To children Mataji sometimes says something like this: "You are my friends, aren't you? Will you do something for this friend of yours? (1) As soon as you wake up in the morning bow down to God and pray to Him to make you a good boy or girl. Say: 'Lord, I don't know where you are. Grant that I may find you.' At night, do *pranāma* again and if you have done anything wrong, ask God to let you do

* "Matri Vani."

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

better the next day. (2) Try to obey your parents and elders. (3) Study well. (4) Always speak the truth. (5) Laugh and play, run and jump to your heart's content and if you can do the first four things you may be naughty and mischievous as well."

To a busy housewife she said: "You have no time during the day but the nights are your own. It does not matter when or how you remember God. Divine Grace is all-pervasive. Everyone should constantly endeavour to be in readiness to receive this ever-present Grace."

A religious life does not mean a life of idleness. What is required is to live constantly in the presence of God. Nobody need neglect any duty to practise *sādhana*. Admittedly, there are conditions that are not conducive to a religious atmosphere. But Mataji's counsel in general would be to make the best of the existing circumstances. It is only she who can devise ways and means out of seemingly unsurmountable difficulties.

Mataji is rather strict about the quality and purity of food for persons engaged in spiritual discipline. The general rules of orthodoxy are maintained in her ashrams because this seems a desirable arrangement for all concerned. She sometimes says: "You have come here for the purpose of serious *sādhana*. Everyone lives within an aura of his own creation. The comingling of natures is not conducive to progress on this path." Such advice is for the inmates of the ashrams and for other serious minded devotees. She does not seek to change the customs ordinarily followed by people.

* * * *

Mataji was born in 1896 in the village of Kheora, now in East Pakistan. Her parents, devout Brahmins, named her Nirmala Sundari.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

By all accounts she was an extremely obedient, helpful and radiantly happy child. Her mother does not recall that Nirmala Sundari ever expressed a wish of her own. From her infancy she exercised unusual attraction on all who met her. For a short time only she was a pupil of the local village school. She was ever ready to help with the chores, not only at home but at all the neighbouring houses. Mataji has always approved of physical work. She herself was untiringly engaged in household work till the years 1923-24. She was able even to combine the life of a hard-working housewife with that of the ascetic engaged in rigorous *sādhana*.

Before completing her thirteenth year, Mataji was married to Ramani Mohan Chakravarti, known as 'Bholanath'. In accordance with village customs, she stayed with husband's family for the first few years after marriage. When she was about 18 years old, she went to keep house for Bholanath at his place of employment.

The question of leading a conventional married life just did not arise for this unusual couple. Mataji has said: "My parents told me that I should respect and obey Bholanath and look upon him as my guardian. Consequently I gave him the respect and obedience due to my father. He was always like a father to me." Bholanath, by all accounts, was a remarkable man himself. When the time came for them to stay together, the young husband found that he had a most extraordinary wife to look after. She was gentle, hard-working and of a joyous nature, but without a trace of worldly feelings and desires. Her innocence and unquestioning trust in him made him the devoted guardian he was to her throughout his life. Mataji has a delightful sense of humour. The anecdotes of her life with her relatives by marriage and also with Bholanath are full of penetrating observations. About her marriage Mataji has once said: "In the beginning Bholanath used to say: 'You are very immature and childlike........ It will be all right when you

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

grow up........,' but it seems I never grew up !" More seriously: "Bholanath's restraint and sense of dignity were always exemplary. All the years I was with him I did not have even an inkling of the desires which assail mankind. It is now that I hear unending tales of troubles and transgressions."

Mataji was never taught any spiritual practices, neither did she engage in the accepted sense of the term. However, during the years she spent in Bajitpur and Dacca (roughly from 1918-1926), she spontaneously went not only through the variegated *sādhanas* indicated in the Hindu Scriptures but also those of other faiths. The effects of these practices manifested on her body. She would be in exalted states of *bhāva* or *samādhi* or her body would assume various yogic postures. She has no previous knowledge of such matters. She watched herself go through the innumerable paths of *sādhana* as she watched herself performing household work. She refers to this period as "The play of *sādhana*". She has said........"As a rule there is a veil that separates man from his own self. This veil has to be worn of by practising *sādhana*. But here, there was no veil, it was drawn only in order to be removed again. Therefore, what else should this be called but play ?" What she has related about this phase of her life would fill a volume, yet she says that she has not disclosed even one hundredth part of the entire experience. The minutest details of each line of approach were revealed to her in their true significance.

Mataji did not need or ask for publicity. In fact, she tried her best to avoid it. In the beginning a few of Bholanath's friends would come and talk to her about religious topics. All knowledge of rituals, spiritual exercises and also philosophical evaluations of such matters came unhesitatingly, clearly and convincingly from this untutored village maiden. These friends brought others and gradually crowds began to assemble round Mataji's radiant personality,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

seeking advice on spiritual things as well as on their own problems.

Mataji herself did not go out of her way to talk to anyone. If Bholanath asked her to speak to people she would do so, not otherwise. Throughout his lifetime Mataji never did anything without his consent. Bholanath occupied a peculiar position. He looked upon Mataji as his guru and spiritual preceptor and also received from her the untiring service of which she alone is capable. After his death in 1938 at the age of 56, other devotees have tried to serve Mataji and make all arrangements for her.

* * *

It is difficult, indeed impossible to understand Mataji because her actions and words reveal nothing about her. Usually action gives a clue to the mental make-up of a human being. Mataji's actions arise out of the people around her. For herself no action whatever is necessary. Even bodily requirements such as food, rest, sleep and so forth do not influence her behaviour and may remain suspended for any length of time. During earlier days this was a more frequent phenomenon. Once she did not eat or even drink water for 13 days. On the 14th day, she broke this remarkable spell of abstinence with the remark : "I just wanted to see how it would be to remain without water. I find that even the need for water it becoming extinct. But for the comfort and convenience of people a semblance of normal behaviour must be kept up."

Other similar features make it impossible for ordinary judgement to be meaningful in her case. To the question : "If you have no mission to fulfil or message to give, why do you tell us to worship God ?"; Mataji replied : "If you do not ask, I have nothing to say. But if you ask and it is my "*kheyāla*" then I shall certainly tell you about the better way of life."

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mataji herself has had no Guru and she does not give formal initiation to anyone. The hundreds of people flocking round her are not bound to her even by this intangible tie. The secret of her attraction she somtimes explains in this way: "It is natural for people's hearts to go out to a child. My body is aged but actually I am a small child and as such receive affection from all. Although this little girl cannot do anything for anybody, people out of the goodness of their hearts love her nevertheless.'" or alternatively: "All children and unmarried people are my friends, and married people are my fathers and mothers and so I am dear to all. Is it not natural to love one's friend and child?"

Mataji has no chosen attendants. Her companions, travels, places of residence are fortuitous. One is as good as the other. One of Mataji's favourite expressions, repeated by her again and again is: "जो हो जाय" (*jo ho jay*): Whatever comes to pass is equally welcome". Nobody can presume to say that he or she is indispensable to Mataji or specially favoured by her. Out of the throng that surrounds her, there may be one or two who understand the immeasurability of the personality that gives of herself freely and unstintingly to all who have need of her and yet remains so remote. Her compassion for suffering humanity is unbounded. Her days are more than full with assuaging the sorrows of the bereft, unlucky and afflicted. Mataji has no mission to fulfil in the world because no lack in her requires fulfilment. This self-sufficiency makes her personality absolutely enigmatic. From this point of view her closest companion of over 40 years' standing is as distantly placed as the stranger at the fringe of the crowd. She passes through the multitudes mostly as an on-looker. She has no fault to find with anything or anybody but if approaced in perplexity she will give guidance and hope and advice as only she can.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

All those who have seen Mataji will however subscribe to one general opinion about her: In Mataji's proximity there is no room for pessimism, despair or depression. The divine presence seem to permeate the atmosphere. The razor's edge path appears easy to traverse. The heart is buoyed on a wave of joyousness unimaginable before. It seems a miracle to be born a human being to whom the Kingdom of Heaven has been promised. Mataji's mere presence awakens in every man, woman and child a sense of destiny which is ANANDA.

———

"He who makes you turn towards the One Beloved, he, verily, is a real and true friend."

—*Mata Anandamayi.*

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Man and His Goal—The Light of Viveka*

The first question which the seeker must inquire into is what is his ultimate destination, his hidden want; for no traveller can chalk out a plan for his journey unless he knows or believes where he is to go.

Attachment to the changeful objects of desire and yearning for Reality are the two opposite components of a man's being.

As no massing of clouds can obliterate the sun, but can only hide the sun from our eyes for a while, even so no motley of fleeting desires can kill our inherent and real want—they can only cover it up temporarily. Just as the dawn of the sun dissipates the clouds in no time, so does the awakening of the inner want and aspiration of man free him from all fleeting desires.

Man's innermost thirst for Truth or God can never be satisfied with any compound beings, objects or circumstances. The most pleasing set of objects or circumstances by themselves are like a well-decorated house where you may be without a friend, a lonely soul. Devoid of faith in the Divine, man is like a body without soul; an ornamented body a well-decorated house, a beautiful garden, but a lone resident therein.

The Infinite, which is our goal, is the Eternal whose Light and Love give light and life to all passing things.

The very fact that nothing is able to destroy the natural yearning of man for love and joy shows that the Lord of Love and Joy is ever calling man to his hidden heritage.

Before the fulfilment of our inner want, we run after the world but the world eludes us. On the fulfilment of our

---

* Reprinted from the book : "A Saint's call to Mankind", Published by the Manav Sewa Sangh, Vrindaban.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

inner want, the world will run after us but not we after the world.

The realization of one's want enables one to set up one's goal. Thereafter a divine discontent carries one forward.

Man must carefully think over and determine what is his goal. The goal can only be that which is of his inmost nature, and therefore attainable. When the goal is set up the means come of themselves.

Our daily affairs and necessities do not constitute our life; they are merely bubbles in the sea of life. The secret of rising above objects and circumstances is to regard them all as the means to an end and never the end. If our gaze is fixed on the goal, we will make the best use of all these, which will only help us in attaining the goal. We should remember that no one, no object and no circumstance is to be blamed for our helpless state, but that imperfection is the very nature of transitory life, which includes our body and the world. Yearning or our real want is for that which is immutable : the Divine Eternal.

As the thirsty man drinks water eagerly, so *sādhana* comes naturally to one whose goal is established. When the *sādhaka* has set up his goal once for all and does all work for the sake of the goal, all his work becomes worship. The light of *viveka* (discrimination) illumines his path and indeed *viveka* becomes the captain of his soul until the goal is reached.

Viveka is the light of Wisdom that is rooted in man and marks him out from the sub-human creation. It is not the same thing as the intellect, but is that from which the intellect derives its force. The intellect is a mechanism of nature, whereas *viveka* is the supra-mental light illuminating it. As the sun is the source of the electric or the candle light so is *viveka* the source from which the intellect and the senses derive their light and power. *Viveka* is the light of

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Truth whose ray is imbedded in the innermost shrine of the heart of man and which leads pilgrim man to the realization of his being an image of the Divine.

Viveka enlightens us that man is not the human skeleton, but consciousness focussed in the human body. What he is—Consciousness—is the hidden target of discovery for the individual. But it should be discernible to each thinking man that he is not the body, even though normally he may be all too body-conscious. Each man calls the body *his* body, not himself; and there are many men who are ready to lay down their bodies to protect something they value higher—honour of self, family, country, etc.— or who would rather be released from their body if faced with an incurable and agonizing malady in the body. What, then, does man find himself to be ? A being or consciousness who is discontented with his incompleteness – reflected in his unceasing desires—and is impelled by an urge for fulfilment, perfection or liberation, being endowed with *viveka* which guides him onward all along, this is what man actually finds himself to be. It follows therefore, that man's life must be a process of *sādhana* : a conscious aspiration and ceaseless effort to emerge from want to fulfilment, from imperfection to perfection, from bondage to liberation. *Sādhana*-less living is living by instinct, the life of the sub-human; or it is the life of the liberated man who has fulfilled himself through the school of human life—not of the normal man. Man as he is, is an entity of conscious *sādhana*. Unconscious gifts one finds even in many trees, but they do not equate with man for they lack the self-awareness of *viveka*. Non-possession is the attribute of many animals, but none calls them *sannyāsis*. So, it is *viveka* or self-awareness which marks out man as the highest of God's creation, verily made in the image of God.

Mystics, saints and sages of all lands and ages have offered their testimony that, eventually, man must inevitably

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

realize his kinship or unity with the True, the Good and the Beautiful—the Divine, or by whatever name we may call the ultimate Reality. His transitional identification with the outer appearances imposed upon him by age-long habit then disappears. In other words, the manhood of man consists in a process of his integration into completeness which is a mark of divinity.

True integration of man's personality is not possible without control of the senses, transmutation of selfishness into selfless service and of fissiparous thoughts into contemplation of God or yearning for Truth. These are labeled as the paths of *yoga* – *karma*, *bhakti* and *jñāna* respectively.

The part enacted by an actor on the stage is not his own true nature. The states of wakefulness, dream and deep sleep are the state of the physical, the subtle and the causal bodies of man. The true man is beyond these three states of the object world.

Knowledge is one; but we experience it at different levels—one through the senses, a second through the mind and a third direct by oneself. This threefold knowledge may be considered relatively progressive knowledge. But all these three states of knowledge are illumined by one Supreme Consciousness. As the sun is the sole source of light to the eye and of electricity, so is the Divine the sole repository of all knowledge and consciousness. *Viveka* is the light of the Divine.

As the clouds born of the heat of the sun itself hide the sun for a while, even so the knowledge at the level of the senses beclouds the intellect and the knowledge at the level of the intellect hides true supramental knowledge. *Viveka* pertains to that level of man's consciousness whose light enables him to see the fleeting phenomena of the body, the mind and all things and states as on the screen: the non-Self.

Truth, being self-aware and sure of itself, is infinitely patient. Just as salt does not beat the drum of its own

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

flavour but brings out goodness in everything that it contacts, so does Truth impart light and life to everything. *Viveka* is the light of Truth.

Man rightly calls his body his body, his mind his mind, and so on. But he does not pause to inquire who *he* is As soon as he dissociates himself from the body, the mind and their environment, he will stand by himself and know himself. Ask any man if he is the same person who was studying at the same school with another who is now in entirely different circumstances. One might be highly placed, while another might be a beggar. The circumstances of the two are now widely different, but both know themselves to be the same as they were as school-mates. Thus any change in their bodily circumstances and environment does not affect their awareness of what they are. This shows that man by himself is distinct from his surroundings.

The enquiry 'Who am I ?' arises in the mind of a man when he finds himself bound in limitations but swelling with an inner urge to cut asunder the bonds of environment and states of mind. The false 'I' is but a yearning for its real content. Put otherwise, it is like a thief who elopes the moment the master 'I' dawns on man's consciousness.

Aham-vritti (false I, egoism) is the disease, while *Aham-sphurti* (emergence of the true I) is its cure. The latter consumes the former and what remains then is effortless awareness, which is Self-realization.

An investigation into the contents of the false 'I' will reveal that the *swarūpa* (real nature) of the real 'I' is the hidden want and aspiration of the ego, even though dissipated in numerous reflections of desire.

The enquiry 'Who am I ?' or yearning after God arises in a man only after he has repaid the debts of society by selfless service. Man identified with the body is an embodiment of the calls of society, Deeper down he is a longing for the Divine,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Desire is born in man because he identifies himself with the body. The cessation of desire for the fleeting robs the passing I-sense of its main prop. It then survives for a time on the desire for the Eternal which consumes what remains of him till he resurrects into divinity. As the concept 'I am His devotee' or 'I am a seeker after Truth'—i. e. *one* all-consuming aspiration—replaces a medley of desires, God or Truth does not take long to own the aspiring soul. Aspiration is directed to one, desire to a multitude of objects.

All the various rules of conduct prescribed by different religious are meant only to rid man of his body-consciousness through right action, of the subtle body by right thinking, of the causal body by detachment, etc. With the dissolution of body-consciousness, Self-realization dawns by itself. It is only until man has not realized his true Self that the aspirant engages in various efforts to unwind the false identification with which he has bound himself. The dawn of *viveka* and the ending of body-consciousness constitute a simultaneous process. The elimination of 'I am the body' concept is the gift of *viveka*; the false belief. 'I am the body' is created by the lack of discrimination (*aviveka*). The sunrise of true knowledge (*jñāna*) dispels in a flash the age-long nightmare of darkness. *Viveka* is not a matter of practice, it is the fruit of all practices.

As the eye can see every object but no one can see his own eye, so One who knows everything and is self-luminous is the Self or Divine—who cannot be percieved by the intellect or seen by the eye. Even as the light of the candle merges in the light of the sun, so does the knowledge of the senses merge in the knowledge of the Self.

Viveka is the self-sufficient torch-bearer of truth; for it is the light of Truth itself. Thus, when *viveka* is ablaze there is effortless awareness, supreme *jñāna*. Effort pertains to the 'I' and lasts only as long as it has not consumed the

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'I' itself. All *sādhana* is meant to lead to *sādhana*-lessness. Realization dawns when the 'I' has set. The 'I' is motion; *jñāna* is the stillness of the Self. Just as where light is, darkness is not, so in stillness there is no motion and no effort.

Viveka is the true *guru*. Just as the fragrance emitted by the flower is in fact latent in the seed as well as in the tree, but it is given to the flower to emanate it by virtue of its perfection, so is Truth or God, though omnipresent, revealed to man by Flowers of the race : saints and sages. The *guru*—saint or sage—accordingly is *viveka* itself personified. The person who remains indifferent to his *viveka* remains indifferent to the *guru* and the scriptures as well, just as one who closes his eyes to the light cannot derive light even from the sun. Man can escape the *guru*, the leaders and laws of society or government; but he cannot escape his own *viveka*.

In fact, as in all sweetmeats the sweetness is of the sugar, so is all that appears true and beautiful a reflection of *viveka*.

As the pure water of a flowing river, enclosed in a pit, breeds various germs, so does universal love, encased in a body, object or environment degenerate into *moha*. The ego is the limiting agency.

Viveka is the splitter of the ego, which is the atom of the spiritual world. The splitting of the ego is the key to *moksha* and the realization of Truth. Truth is the substratum that is eternal and knows no change; untruth is that which floats on the screen, an influx of ever-changing appearances. The latter feeds on desires; the former is what remains on the cessation of desires.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

In Search of the Mother

SWAMI BHAGAVATANANDA GIRI

(*Translated from Hindi*)

For the first time I was blessed by Mataji's *darśana* on January 6th, 1942. Mataji was then staying in Gujerat, on the banks of the holy river Narmada in Yogashram at the so called 'Vyasa Kshetra'. My good luck brought me there. I feel that gracious Ma attracted me by her divine power to give shelter at her lotus feet to this erring individual.

From the very first moment I felt great love and veneration for Mataji. Two months later I left home, family, friends and society to seek refuge at her feet for the rest of my life. While staying with Mataji, I was vouchsafed many beautiful inner experiences. In her presence I felt an abiding deep peace and overwhelming bliss. Inspite of this there was some uneasiness in my mind. I was perplexed as to who or what Mataji actually was. Some people said she was God Himself, others that she was Devi, yet others that she was Krishna, and so forth. Unable to solve the riddle, I once took heart and asked Mataji in private: 'Ma, who actually are you? People have varying opinions about this, but unless I have first-hand experience, I am not ready to accept any of them." Mataji gave me a beautiful reply—"Whatever you think me to be that I am." This however did not allay my doubts. Therefore, in November 1942, I once said to Ma: "Before deciding finally to remain with you for good, I should like to go on a pilgrimage through the length and breadth of India and get acquainted with the greatest saints and sages, so that later I should not be able to feel I might have made better spiritual progress elsewhere. If you grant me permission I want to try and fulfil this wish of mine."

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mataji said : "Most gladly. And if you find a place that seems congenial to you, remain there; if you feel inclined to take initiation from a competent Guru, you may do so.".

Thus, after several conversations of this kind with Mataji, I set out on my pilgrimage. Apart from visiting many holy places, I spent about three weeks at the Ashram of Swami Ramdas at Kerala, another three weeks at the Ashram of Sri Ramana Maharshi and had *derśana* of Sri Aurobindo in February 1943 at Pondicherry. Proceeding from there to Jaganath Puri. and Calcutta, I reached Sri Rabindranath Tagore's Santiniketan in March 1943. From Puri I had written a letter to Mataji and her reply came to me at Santiniketan. At that time Mataji was in retreat in a place which was kept secret. Only one or two devotees knew where she was. Sri Hariram Joshi would redirect Ma's correspondance from Lucknow. Thus the letter I received from her bore a date but no address. It contained nothing of special importance. After replying to it I went to sleep. Suddenly I felt a powerful urge to go to Mataji. It was as if she were calling me to her. I got up at once and decided to leave by the next train. But oh ! What hard luck ! Where was I to find her ? I had not the faintest idea where Mataji was hiding. There was no indication in her letter. My mind was in great agitation. I felt I must go to Mataji without delay, but how, and in which direction was I to start ? At last I had a brilliant idea. I looked at the post mark and found 'Sagar City' stamped on the letter. I immediately went to the Post Office to consult the 'Postal Guide'. To my dismay I found that there were five or six places in India that were called "Sagar City." In which of them was Mataji ? How could I possibly come to know this ? In my despair I sought advice from the students of Santiniketan. One of them, who was a friend of mine, said : "Go to Sagar City in the Central Provinces, Ma may possibly be there." Of course, nothing could be said for certain. At any rate, I

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

decided to leave at once. My hosts were rather taken aback at my running away without even spending a night, while I had come with the intention of staying for a whole week. However, nothing could keep me and after taking leave from them, I proceeded on my search. On the way it occurred to me that since I had to pass through Varanasi, it might be wise to stop there and try to collect some information from Ma's devotees. At that time the Varanasi Ashram did not exist as yet. Whenever she came to Varanasi in those days, Mataji would stay in a hut in the garden of the late Sri Nirmal Kumar Chatterji's residence. I therefore paid him a visit but could not get any information as to Mataji's whereabouts. Mataji changes her programme so suddenly, there is no knowing where she may go within an hour. Consequently one can never be sure where one may find Mataji and when. I met some other devotees at Varanasi as well—in vain. Someone said that Sagar City in the Central Provinces might be the right one. So I continued my journey to that place. In the meantime I was getting more and more inpatient to be with Mataji at long last. I reached Sagar City at 2 A.M. and went to a *dharmaśāla* near the station for the night. My mind was busy devising ways and means how to find Mataji. After completing my morning prayers, I started out on my quest. I had brought a photo of Mataji with me, as it might possibly help to get a clue of where she was hiding. I knew that only Gurupriya Devi and Abhaya were with her. I thought Abhaya would most probably go to the market in the morning to buy vegetables. So I went there first of all looking for him everywhere—without any result. Walking on, I came to the Post Office. "Let me at least make sure whether the postmark on my letter is from here", I thought. When the postmaster had confirmed this, I asked him whether any letters were arriving addressed to Sri Anandamayi Ma. But he said : "This is a branch post office, you will have to go to the main P. O. to find out." Near the post

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

office there was a pharmacy. I went in and inquired whether they had seen a young man called Abhaya, giving a detailed description of his looks. However, the shopkeeper was unable to help me. The idea came to me to look for a Bengali family, they might possibly know where Mataji was staying. In my eagerness I entered a Bengali home without even asking permission. As a result the master of the house gave me a good scolding. I felt ashamed of my rude behaviour. Those people knew nothing about Mataji. I became more and more worried. How was I to get to my destination? As I strolled on, I discovered the name of a Bengali lawyer written on a board. I stepped into his office and asked him, whether by any chance he knew anything about Anandamayi Ma. "I have heard her name many times but I have never had the good fortune of her *darśana* so far," he said. "Do you mean to say that she has come to Sagar City?" I replied, "she must be staying somewhere here, but I do not know her address". I then requested the lawyer to introduce me to the Post Master of the main post office so that I might possibly get her address from him. The lawyer very kindly guided me to the Post Master who took pity on me and looked through the whole mail, but could not find a single letter addressed to Mataji. All my efforts had thus proved fruitless. I thought: "Whatever I have tried has been in vain. Now only one thing remains: to pray to Ma to let me find her." So I trudged on, praying fervently: "Merciful Mother, compassionate Mother, let me find you, let me reach your holy feet." I became to absorbed and one-pointed that the difference between trees and stones, between living beings and lifeless things vanished. Everything had become alive for me. I began to talk to the trees and stones: "Dear tree, have you not seen Ma walk on this road? And you stone, surely you have seen her, do tell me where she is!" In this manner I took a solitary path, crying for Ma at every step. Later I learnt that at that very time

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mataji had called my name : "Kanti, Kanti !" two or three times and had been laughing. Gurupriya Didi had asked : "Do you mean the Gujerati Kanti ?" and Mataji had affirmed this. This is how Mataji's strange *līlā* was being enacted.

Walking on and on in deep despair, I came to a temple of Rama at about midday. I approached the priest, showed him Mataji's photo and asked him whether she had not by any chance visited this temple. "Yes," he said, "about a fortnight ago this Mataji came here with another woman and a young man with long hair. She stayed for a little while, but where she went from here I do not know." Hearing this, I was thrilled—at least I knew now that this Sagar City was the right one. Yet a fortnight was a long time for Mataji who changes her programme from moment to moment. So, after all, it seemed to me that I had not come any nearer to my destination. What was I to do next ? It now occurred to me to inquire at the Railway Station. For if Mataji had left for some other place she must have left from there. And her personality is such that she is bound to attract attention wherever she goes. I therefore went to the Station Master and showed him Mataji's picture. However, he said he had not seen her. All I could do was to request him to send word to me at the *dharmasāla* in case he should come across Mataji. He promised to do so.

It was about 1 p.m. now. I had not eaten anything that day, neither did I feel like eating. Would I be able to trace Mataji ? I felt dejected and was wondering whether Mataji was in Sagar at all and whether it was not futile to continue my search. The money I had brought with me was also getting exhausted. How much longer could I go on in this manner ? My thoughts were all in a turmoil. Once again I was moving towards the bazar. Full of despair I sat down in a tea shop and had a glass of milk. My eyes fell on the board of a motor company just opposite. It suddenly struck me that Mataji might perhaps be in a village

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

in the neighbourhood rather than in Sagar itself. The buses of this Company were running up to a distance of hundred miles. It might be possible to get some information from the bus drivers. I thus saw the manager of the Company and related my pitiful tale to him. I also showed him Mataji's photo and requested him to ask his drivers to send word to me immediately in case they came to know that Mataji was in a village or any other place. He agreed to talk to his drivers and to do whatever was in his power to help me. I now reflected that I had tried every possible means to locate Mataji and that nothing further could be done. So I went back to the *dharmaśāla* to have a rest. How extraordinary Ma's *līlā* is! At about 4 p.m. someone came and called my name. He said: "A Mataji of your description in the company of another woman and a young boy is staying in a forest called Chitora about 9 miles from here. Of course I cannot be absolutely sure that she is the Mataji you are looking for." I thanked him and asked him to arrange for a conveyance to take me there. As soon as I heard of the forest I at once felt it must be Mataji and none else who was staying there. I was beside myself with joy at the prospect of being with her soon. How merciful, how compassionate Ma was! With "Jai Ma!" on my lips I picked up my luggage and hastened to the bus stand. The bus did not start at once. I was so impatient I could hardly bear to wait any longer. Every minute seemed an eternity to me. I wished I could fly instead of riding in a bus. At last the bus started. Stopping after about nine miles' run in a forest, the driver said to me: "Your Mataji lives in the house that is visible over there. You have to get down here." I jumped on to the road. There was jungle all round. Only one small cottage could be seen. No village nearby. By the side of a small rivulet in the shade of trees a single, solitary house. I felt as if submerged in happiness—now I was going to find Mataji. In

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

a few minutes I would reach her lotus feet. The place was completely calm and quiet. Not a sound could be heard from anywhere. Peace and stillness. I slowly approached the house and entered. There was no one in the room. At once my heart fell. However, I continued to explore and found Abhaya sleeping in the next room. My hopes rose again. Not finding Mataji inside the cottage, I began to look for her outside. At some distance I saw Mataji walking towards the house with Didi. When my eyes discovered Mataji, I became entirely drowned in an ocean of bliss. At once I fell at her feet. Didi was amazed to see me. "How did you manage to come here ?" She asked. "Only today Mataji was calling your name three times. And now you have actually turned up yourself !" Mataji laughed heartily. Then she sat down and I buried my head in her lap and shed profuse tears of joy. Didi and Abhaya were curious to know how I could have come without knowing Mataji's address. But I was speechless with happiness. Seeing my condition, Mataji put her hand on my head to calm me and said : "He who seeks, finds."

———

"To know the Mother means to find the Mother, to become the Mother."

—Mata Anandamayee

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Nāda Yogi Swami Haridas

'SAROJ'

"न नादेन बिना गीतं, न नादेन बिना स्वरः ।
न नादेन बिना नृतं, तस्मान्नादात्मरं जगत ।
न नादेन बिना ज्ञानं, न नादेन बिना शिवः ।
नादरूपपरंज्योतिः, नादरूप स्वयं हरिः ॥"

"There is no song without *nāda*, no melody and no dance movement without *nāda*, hence the universe is replete with *nāda*. There is no knowledge without *nāda*; even Siva is not without *nāda*. *Nāda* is the final beatitude of the Supreme Light, the Lord Himself is *nāda*."

Such was the *nāda* worship of Swami Haridas. Being permeated by *nāda*, he accomplished his *sangīta sādhana* (worship by music) at the feet of his chosen deity Radha Krishna in Nidhiban, Vrindaban. Consumed by exclusive devotion for Sri Krishna and Radha, Haridas took to music for the pleasure of his Lord Kunjbehari (Krishṇa). Music to him was simply an expression of Krishna *bhakti* and applicable to life merely for the adoration of Beharilalji (Kṛishṇa) whose love lures made Haridas drunk with ecstasy.

Swami Haridas was a sole adorer of Sri Krishna who for him was the only *Puruṣa*, while all other men and women were His *gopis*, the humble attendants of the Lord Ghanashyāma. Filled with the *rasāswāda* (delight) of divine love for Radha Krishna, Haridas would sing out his heart for the attainment of ecstatic heights in classical melody. Music was to him a sublime means for his identification with the celestial couple Shyāmā-Shyāma (Radha Krishna).

Swami Haridas was born on *Bhadrupada Shukla Ashtami* in 1537, in a small village known as Rajpur near Vrindaban, the place where Sri Krishna's *rāsa lilā* had been

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

enacted. Haridas' father, Sri Gangadhara and his mother Smt. Chitra Devi, Brahmins by caste, were rich in religious experience. Haridas, in the prime of his youth, felt inspired to take to renunciation. The germs of *vairāgya* (dispassion) had already been in him right from his infancy. His urge to give up worldly life was so vital that no earthly allurements could stop him from adopting *sannyāsa* in the year 1562, at the age of twenty-five. Swami Asudhirdeva, his religious preceptor, enunciated him in Krishnabhakti of *Nimbārka Sampradāya* that led to his life-long dedication at Lord Krishna's feet amidst the groves of Vrinda plants in Nidhiban, Vrindaban.

Swami Haridas, an ascetic of the highest order, was consecrated to *sātvik sangīt* in the theory of Indian music. He adopted *Dhrupada* and *Dhamar gayaki* to this effect and championed the spread of the *sātvika* element in music. The concept of *sātvika sangīta* as opposed to *rajasika* music was innovated by Haridas to derive devotional delight of intense sublimity. His spiritual practices of music gradually elevated him to the level of Oneness with the whole of creation. This sort of empathetic state enabled Haridas to see and feel in living beings and in insensate things an over-seeing power of *Brahma*, the supreme Spirit permeating the whole universe. This experience of oneness made Swamiji's tunes so captivating that all people around him would feel bewitched for long. Such was the overwhelming and enthralling effect of his waves of melody both on animate and inanimate beings.

The *Dhrupad* style requires high concentration in music; *swara sādhana* (song as *sādhana*) comes to the fore in this mode of music. Actually, *prāṇayama*, one of the exercises in yoga, furnishes the basis for *Dhrupad* style. Haridas was an exalted maestro of *Dhrupad* who had passed long days and nights in the endeavour to achieve proficiency in it. It is said that Lord Krishna had appeared in person

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

to His dedicated disciple Haridas to grant him perfection in *Dhrupad* style, since it is pledged by the Lord to incarnate Himself where His devotees sing His glories :

नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदयेन च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

In this way Swami Haridas sang the glories of the celestial couple Radha Krishna from the core of his heart, touching divine dimensions in the musical firmament.

The music-sage Swami Haridas treated music as the basis of the fundamental unity of sound and light. He conceived of music as an entity of two different aspects, namely the sound form and the visual form, as he made out fully well the fundamental psychic values of all the chief *rāgas*, such as Bhairava, Hindol, etc., and to apply them to the requirements of a particular emotional situation or interpretation.

It goes without saying that each *rāga* has its peculiar psychic form corresponding to its sonant body over which the presiding deity rules. This *arādhya devata* (image form) dwells in the super-consciousness of the elevated singer and can be invoked to descend on earth through the genuine prayers of a singer who is aided by a definite symphonic formula peculiar to such melody.

Swami Haridas was well versed in spiritual exercises through music; besides this, he was blessed by the Lord Himself. He had, therefore, the insight of seeing a particular *rāga-swarūpa* (sound form) face to face. For example, his song :

जुगल नाम सों नमैं, जपत कुंज बिहारी ।
अवलोकत रहैं केलि, सखी सुख के अधिकारी ॥

made him see in visible form the divine couple Radha Krishna, making fretful attempts amidst *gopis*. In a similar manner he was endowed with the power of invoking

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Varuna Devata (the god of water) at the performance of *megha rāga* (cloud *rāga*) and *Agni*, the god of fire, by *dipak* (light) *rāga*. To cap it all, *rāgas* used to play and trip about him full of grace and charm, affording inward calm to this unassuming singer saint.

This concept of invoking the presiding deity or the spirit of divinity by means of a *dhyāna* formula accounts for Haridasji's saintliness and *nāda* worship. It is an evocative scheme of incessant concentrated prayer that led to the birth of his divine music.

Among Haridasji's disciples are the names of such noted singers as Tansen, Baiju Bawara and Gopala Nayaka. It is said that Akbar had expressed the desire to hear Tansen's Guru. At his disciple's request Swami Haridas sang and made Akbar spell-bound by his unique performance of music and his mystical achievements.

The fifth day of *Margashirsha Shukla* is sacred to the followers of Swami Haridas and to numerous devotees of Lord Krishna, as on this day Haridasji achieved self-realization and got the '*Sri vigraha*, the supreme image of Banke Beharilalji that is installed in the famous Behariji temple of Vrindaban at present.

Swami Haridas started a music tradition of his own. Some of his followers are well-known *achāryas* (instructors), such as Sri Vitthala Vipul Devaji, Swami Rasikadevaji, Swami Lalita Krishoredevaji and Swami Lalita Mohinidevaji whose compositions have copiously contributed to and enriched the *Braja Sahitya* and classical music tradition of India. Those singers have, like Swami Haridas, mostly concentrated on the eternal *līlā* of Radha Krishna.

Swami Haridas entered the all-pervading spirit of the celestial couple Radha Krishna finally on the eve of *Sharad Purnima* in the year 1632 at the ripe age of ninety-five.

Each year, the sacred earth of Vrindaban and Mathura, which is called '*Brajabhumi*', becomes resonant with the

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

breath-taking performances of artistes of national fame. These musicians experience an inward gratification after paying their homage to Swami Haridas in musical language.

Thousand of salutations to this sage singer of Braja bhumi who embodied the essence of Indian classical music and represented a rich tradition in devotional songs.

"Who is the Kriya Shakti? Thou thyself. And who is the Shakti? He, the One."

—Mata Anandamayee

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Sacred Places of Kashmir, Jammu and Ladhak

A Devotee

(Continued from the April issue.)

KSHIR BHAWANI

The ancient shrine of Kshir Bhawāni or Rājnia Devi, as the local people call the goddess, is situated near a sacred spring at Tulmul, which is two kilometers north of Srinagar. The spring itself is regarded as an emblem of the goddess. It is called Kshir Bhawāni because she is as sweet and tasty as 'Kshir' (a delicious preparation of milk). The goddess and her shrine are mentioned in Kalhana's Rājatarangini. The Rajniā Kavacha (the holy psalm in praise of the goddess) is found in the Sanskrit scripture called Rudrayāmala Tantra, which also proves the antiquity of the sacred shrine.

A big religious fair is held before the shrine of Kshir Bhawāni on the eigth and the fifteenth day of the bright half of Jyaishtha which corresponds with May-June of the English Calendar. The pilgrims offer milk, rice, sugar, honey etc. to the goddess by throwing these into the water of the sacred spring. The colour of the water changes several times during the day.

There is a legend that the image of the goddess which existed at that place was originally worshipped by Rāvana in Ceylon (Lankā). The image was brought to this place in Kashmir by Hanumān after Rāvana was killed by Sri Rāma

* The Nilamata, verse 1302.

** Rājni in Sanskrit means queen. The goddess is also called Mahārājni which means 'the great empress.'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

We are told that when Swāmi Vivekānanda visited the sacred shrine of Kshir Bhawāni during his stay in Kashmir, his heart became full of sorrow at the sight of the broken temples and images all around the place. He thought within himself; "Had I been living at that time, I would have never allowed the ruffians to destroy the temples and desecrate the shrines. I would have protected them at the cost of my life". When he was thinking thus he heard a heavenly voice saying; "Son, if the followers of another faith enter my shrine and desecrate it, what does it matter? What is that to you? Am I protecting you or are you protecting me?" Vivekānanda pondered within himself. "If only I could build a nice temple here!" Again he heard the same heavenly voice: 'Son, I wish I can create innumerable temples and towers. At this very moment a seven-storeyed golden temple may be constructed, so you need not worry." After this incident Vivekānanda's outlook on life underwent a thorough change and from that day he felt as if he were a child in the lap of the divine Mother.*

न तातो न माता न बन्धुर्न नप्ता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता ।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥**

[O Bhawani ! Thou art my refuge, thou art my refuge thou alone art my refuge, and not my father, not my mother, not my friend, neither grandson, nor son, nor daughter, nor servant, nor husband, nor wife, neither learning, nor profession.]

* See Punyatirtha Bharat by Swami Divyatmananda.
** Bhawanyashtakam by Shankaracharya, verse–1.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

LIKAR

तस्स पदे नमस्सित्वा सम्बुद्धस्य सिरीमतो ।
सद्धम्मञ्च पूजेत्वा कत्वा सङ्घस्य चाञ्जलिम् ॥*

[I reverently bow at the sacred foot of Sambuddha. I observe the perfect religion and I pay homage to the Sangha (the Buddhist Church) with folded hands.]

Likar village is situated at a distance of about thirty kilometers west-north-west as the crow flies from Leh, the head-quarters of the Ladhak area of Kashmir. Leh can be reached by road or air from Srinagar.

There is an ancient Buddhist monastery at Likar. Images of the Buddhas are worshipped in the monastery. On all ceremonial occasions people in large numbers assemble offering prayers and receiving the blessing of the Lāmā of the monastery.

LODUV

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥**

(We comprehend that supreme Being. We meditate on that great God Mahādeva. May that Rudra protect us.)

Loduv is situated at a distance of about five kilometers south-east of Pampur and about twenty-six kilometers south-east of Srinagar.

The ruins of the ancient temple of Rudreshwara are in the middle of a sacred tank at Loduv. The tank is fed by the waters of two adjacent springs. There is a Shiva-Linga even today by the side of the springs which the pilgrims visit.

---

* Dhammapadaṭṭhakathā. A Buddha, who attained all-round, perfect wisdom.

** Krishna Yajurveda, Taittiriya Āranyaka, X-1.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The shrine of Rudreshwara was praised by Kalhana in the following verses of that Rājatarangini.

अद्यापि विक्षरत्क्षीरार्णवकान्तिच्छटाच्छलात् ।
यो भाताव सुधासूतिसितश्वेतास्मनिर्गतः ॥
उपमन्योरुदन्याया दारिद्रचोपद्रवाहतः ।
रुद्रो रुद्रेश्वरो नाम्ना श्रीमान्कश्मीरभूषणम् ॥
जगत्सौन्दर्यसारं सस्वर्णमलसारकः ।
शान्तावसादप्रासादोद्धारश्च विहितस्तया ॥*

[She : Radda Devi, wife of Jayasimha, 1128-1149 A. D., erected the illustrious shrine of Rudra called Rudreshwara, which has a golden Āmalaka and which is the ornament of Kashmir and the quintessence of the world's beauty. Made of white stone bright as the moon, it shines forth at this day even as if it were Rudra when he removed Upamanyu's sufferings from thirst by making flow forth the radiant expanse of the milk-ocean.]

DEVSAR

प्रल्हाद प्रभुरस्ति चेत् तव हरिः सर्वत्र मे दर्शय ।
स्तम्भे चैनमिति ब्रुवन्तमसुरं तत्राविरासिद्धरिः ॥
वक्षस्तस्य विदारयन्निजनखैर्वात्सल्यमावेदयन्नार्तत्राणपरायणः ।
स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥*

The moment the demon said to Prahlāda, "Prahlāda! If your Lord Hari is every-where, then show him to me in this pillar", Hari appeared there. Being affectionate to Prahlāda like a father to his child, He, who always saves the afflicted, pierced the chest of the demon with His nails. I take refuge in that God Nārāyana.)

* The Rājatarangini, eighth Taranga, verse 3389. Translation by M. A. Stein.

* Ārtatrānaparāyana Nārāyanāshtadashakam-Vrihatstotraratnākarah.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Devsar is situated on the sacred river Veshau, about ten kilometers west of Kulgam, which is about twenty-five kilometers south-west of Ananta Nāg. The village lies on the Kazigund-Kulgam Bus routs from Srinagar. The distance is nearly eighty kilometers. The ancient name of Devsar is Devasaras which means the lake of the gods.

There is a noted shrine of the goddess Tripura-Sundari at Devsar by the side of a grove of pine trees about a kilometer from the main road. At a little distance from this temple, there is a spring called Nrisimha Rājā which is regarded as sacred to Lord Narasimha from very ancient times. It is believed that there was a shrine of Nrisimha at this spot.

Lord Nārāyana incarnated in the form of Narasimha (man-lion) in order to kill Hiranyakashipu, the king of the demons, a fierce enemy of the gods, and save Hiranyakashipu's son Prahlāda, who, unlike his father was a great devotee of Hari. There is a legend about Hiranyakashipu in the Mahabharata, which is given below.

Once the four sons of Brahmā, called Sanaka, Sanandan, Sanātana and Sanatkumāra, went to Vaikuntha to see Lord Nārāyana. Jaya and Vijaya, the two gate-keepers of Vaikuntha, whipped the sages and prevented them from entering the shrine of the Lord. The sages became very angry at the behaviour of the gate-keepers and cursed them. Due to this curse Jaya and Vijaya were born on earth as demons, as sons of the great sage Kashyapa and his wife Diti. Kashyapa named them Hiranyakashipu and Hiranyāksha. Both of them committed terrible atrocities against gods, sages and men. They were fierce enemies of Lord Nārāyana. Hiranyakashipu had a very pious wife called Kayādhu. They had a son called Prahlada unlike Hiranyakashipu, Prahlāda was very righteous and greatly devoted to Nārāyana. Hiranyakashipu ordered Prahlāde to abstain from worshipping Nārāyana. He engaged two tutors called

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Shanda and Amarka to dissuade Prahlada from worshipping Hari but Prahlada's devotion went on increasing. Failing to convert Prahlada by peaceful means, Hiranyakashipu began to persecute him, giving him posion, burning him in fire and drowing him in the sea, but Prahlāda always remained unhurt due to the Lord's grace. Being frustrated in all his attempts, Hiranyakashipu once asked Prahlāda where is your Lord Hari ? Prahlāda said, "He is everywhere." Hiranyakashipu said, "Then show him to me in this pillar." The moment Hiranyakashipu uttered these words the Lord came out of the pillar in the form of a terrible Man-Lion and pierced the chest of the demon with his nails. Prahlada was saved gods and sages rejoiced.

In olden days there was a temple of Shri Nrisimha at this place but no ruins are visible on the surface. Now there is a shrine of Bharaba instead. Previously annual sacrifices were performed at this spot.

At a distance of about two kilometers from the temple of the goddess Tripurasundari, in the adjoining locality called Khana Barani, there is a holy spring sacred to Shiva. Pilgrims assemble on the day of the annual worship. Near Devsar there is a beautiful shrine of Vishnu which is also visited by the people.

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥*

[O Vishnu ! Make me free from arrogance, control my mind, pacify my hankering after illusory objects of enjoyment; create compassion for all beings in me and save me from this sea of becoming.]

---

* Shatpadistotram by Shankaracharya, verse-1.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

LOKABHAVANA

उदयस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नमाम्यहं रामवल्लभाम्॥

(I bow to Sita, beloved of Rama, who does all good and removes all miseries and who is the cause of creation, preservation and destruction of this world.)

Lokabhavana, the ancient name of which is Lokapunya, is situated about eight kilometers south-west of Achabal. It is near Larikpur in Bring pargana, nearly sixty kilometers from Srinagar.

There is a beautiful spring at Lokabhavana which is regarded as sacred to Sitā Devi, wife of Shri Rāma. It is in the hamlet called Gagar Tahunda.

King Lalitāditya of Kashmir built a town at Lokabhavana. There is a reference about this in Kalhana's Rājatarangini.

लोकपुण्ये पुरं कृत्वा नानोपकरणावलीम्।
प्रतिपादितवाञ्जिष्णुर्ग्रामैः साकं स विष्णवे॥*

(After constructing at Lokapuṇya a town, which was provided with the requisite accessories, the victorious king made it, together with other villages, an offering to Vishnu.)

The Nilamata refers to the sanctity of the spot in the following verse which shows it was held sacred even long before Lalitāditya.

लोकपुण्यं हि तं नाम सर्वपापहरं परम्।
कपोतके नरः स्नात्वा गोप्रदानफलं लभेत्॥†

(Its name is Lokapunya which removes all sins and which is very sacred. By bathing in Kapotaka one derives the benefits of making a gift of cows.)

* Fourth Taranga, verse 193.
† The Nilamata, verse 1292.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

MAMAL

शिवं शान्तं शुद्धं प्रकटमकलङ्कं श्रुतिनुतं
महेशानं शम्भुं सकलसुरसंसेव्यचरणम् ।
गिरीशं गौरीशं भवभयहरं निष्कलमजं
महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥*

[I bow to the great god Shiva, who is peaceful and pure, who is manifested and unblemished who is the supreme ruler of all, who is Shambhu (cause of good), whose feet are worshipped by all the gods and who relieves the sorrows and pains of those who are devoted to him.]

Mamal village is in Pahalgam which is about ninety-seven kilometers east of Srinagar. The ancient name of Mamal is Mamalaka. Pahalgam is on the way to the sacred shrine of Amarnāth.

At Mamal, on the right bank of the sacred Lidar, there is an ancient temple in ruins. It was dedicated to Shiva called Mammeshwara. In front of the temple there is a tank fed by a sacred spring. This holy spot is visited even to-day by the pilgrims on their way to the cave-shrine of Amarnāth. Most of them do not know when and by whom the temple, the ruins of which they see here, was constructed.

There is a reference about the temple of Mammeshwara in the Rājatarangini where Kalhana says that the temple was adorned by a golden Āmalaka by King Jayasimha, who ruled in Kashmir from 1128 A.D. to 1149 A.D.

मम्मेस्वरं स सौवर्णामलसारं चकार यः ।
सोमतीर्थं तथःतोयोद्यानमुद्दय्योतिसान्तिकम् ॥*

[He furnished the shrine of Shiva Mammeshwara with a golden Āmalaka and embellished the surroundings of Some-tirtha by bringing water there and laying out a garden.]

---

* The Rajatarangini, eighth Taranga, verse 3360.
* The Rājatarangini, eighth Taranga, verse 3360.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

MANASBAL

Manasbal is a very sacred lake on the northern side of the Jhelum river (ancient Vitasta) situated about twenty kilometers north-west of Srinagar. It is about three kilometers long and about one hundred meters wide. It contains deep azure blue waters with pink lilies floating on its surface. It is connected with the sacred Vitastā by a short canal. Its name is in analogy with the sacred lake in the Kailash mountain. It is the loveliest of all the lakes of Kashmir.

At Andarkot, two kilometers from Sumbal village at the entrance of Manasbal, there was the ancient capital of king Jayapida (753-784 A.D.), who was the grandson of the famous king Lalitāditya. The place was called Jayapura in those days. There are ruins of Buddhist Viharas (temples) and the temple of Keshava built by Jayapida. It is mentioned in Kalhana's Rājatarangini that Sri Krishna appeared to the king in a dream and asked him to raise a fort in the lake near the town and name it Dwārāvati. A temple of Sri Krishna was therefore constructed at this place by Jayapida. In Kalhana's time the temple was called Abhyantar Kottā of which Andarkot seems to be a corruption.

तत्पुरे चतुरात्मा च शेषशायी च केशवः ।
विष्णुलोकं स्थितिं त्यक्त्वा बध्नाति सन्निधिम् ॥*

In his town of Jayapura, Keshava, in his quadruple form and reclining on the divine serpent Shesha, has taken up his abode abandoning his residence in the region of Vishnu.]

———

* The Rajatarangini, fourth Taranga, verse 508

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Matri Līlā

(*March 15th—June 15th 1969.*)

In the last issue of Ananda Varta we already reported that Mataji arrived in Varanasi from Naimisharanya on March 18th, in time for *Navaratri* which started on the 19th. The yearly celebration of Vasanti Puja, the Durga Puja in spring, has always been a special feature of the Varanasi Ashram. In 1945, when only a small portion of the Ashram had been constructed, Mataji together with Sri Chakrapaniji and Sri Prabhudatt Brahmachariji and others were present at the first celebration. On that occasion special puja for Rama had been performed on Ramnaomi day, similar to the one described below.

This year the puja started on March 24th (*Sashti*) in the Chandi Mandap. The traditional *vigraha* of Durga, Lakshmi and Saraswati etc. was small but extremely beautiful and alive and charmed everyone. Mataji was present almost throughout the ceremonies on those four days. She even daily attended the *Mangal Arati* at 5 a.m., which is not at all usual with her. Mataji was in a wonderful mood and of her own *kheyala* sang in great ecstasy more than once. Every evening after the *ārati*, a Bengali singer used to recite from the Ramayana for about three hours in the courtyard in front of the Chandi Mandap. His rendering was greatly appreciated and attracted a large audience. Mataji remained present daily for the whole of this programme as well.

Quite unexpectedly the grand-daughter of one of Mataji's oldest devotees arrived from Calcutta. At her request a special *puja* to celebrate Sri Rama's birth anniversary was performed on March 27th, Ram Naomi day. This function took place in Sri Gopalji's temple called 'Ananda Jyoti Mandir'. Sri Narayan Swami cut a papaya fruit in half and

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

after removing its seeds, placed a *Narayana Sheela* into it. Wrapping the closed fruit into a silk cloth, he kept it in Gopal Mandir near Mataji. At exactly midday, which is the time of Sri Rama's birth, Narayan Swamiji produced the *Narayana Sheela* from inside the papaya, to the blowing of conch shells, and put it in Mataji's lap. Under great rejoicing, the *Narayana Sheela*, representing Sri Rama, was bathed in curds and turmeric and offered durbagrass. Mataji then put a mark of curd and turmeric on the forehead of each one present. Mataji was all inspiration. For nearly an hour she sang Rama Nama with raised hands, swinging from side to side like the boy she had seen last summer at Kishenpur and also heard him sing: "*Nartan pāyā, ao pyāre, bolo Rāma nāma....*" People felt as if Kaushalya Ma and the newly born Rama were actually among them and deemed themselves singularly blessed to have been able to witness this blissful occasion. The next day Mataji sang again before the goddess was taken to the Ganga for immersion.

Mataji remained at Varanasi until April 10th. She would give *darśana* every evening on the open terrace on the first floor of Ananda Jyotir Mandir. Dr. Gourinath Shastri, Vice-Chancellor of the Sanskrit University used to deliver interesting as well as learned lectures on the Srimad Bhagavata every evening. Sometimes there were also questions and answers.

On April 10th, Mataji and Didima with a small party left for Ranchi, where Didima's Sannyāsa Utsava was observed on April 13th. Mataji had not visited Ranchi for several years. Many devotees arrived from far and near and the residents of Ranchi daily collected in large numbers throughout Mataji's stay. Didima's puja was performed by Swami Bhagavatananda Giri in the morning of the 13th to the accompaniment of kirtan and bhajans that were sustained all day whenever there was no other satsang. At midday a feast was given to *sannyāsis* and to all present. A

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

renowned Swami of the Ramakrishna Mission had been invited to talk on *sannyāsa* in the afternoon. At night Mataji sang and also replied to questions.

On April 15th, Mataji all of a sudden decided to go to Calcutta for a day only. She left by the night train, reaching Calcutta the next morning. Only two persons were allowed to accompany her. It was her express wish to keep her visit strictly confidential. Nobody was therefore informed of Mataji's arrival. From Howrah Station Mataji proceeded straight to her Ashram at Agarpara. Since her arrival was completely unexpected, she was alone and able to rest for a couple of hours. A few people of Calcutta were now given the good news that Mataji had come. Those devotees had been waiting (some of them for four or five years) for Mataji to grace their newly-built houses with her presence before occupying them with their families. Like a whirlwind Mataji rushed by car to those various places one after another—eleven in number !—and also went to two hospitals to see some sick devotees who had been sorely longing for Mataji's darsana. At the end she paid short visits to the houses of Prof. Tripurari Chakravorty and Sri Ganga Charan Das Gupta. Sri Das Gupta is now full 100 years old. He and his whole family are deeply devoted to Mataji. From there Mataji motored to Howrah Station to catch the evening mail to Varanasi, where she alighted the next morning after two nights in the train and a very hectic day in between.

On April 19th, the festival of *Akshaya Tritiya*, the first anniversary of Ananda Jyotir Mandir was celebrated in great style by a special puja, performed by Brahmachari Nirvananda, in the course of which Sri Gopalji was bathed in milk. Mataji was present from beginning to end. The temple was beautifully adorned with flowers and coloured lights. Kirtan was kept up all the time. Mataji herself distributed the *prasāda*.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

On April 25th Mataji left for Bombay reaching there on the 26th afternoon. She was met at Dadar Station and taken straight to her pagoda at Sri B. K. Shah's residence at Vile Parle. From May 2nd to 5th Mataji's birthday was celebrated there itself. All arrangements were quite first class. The atmosphere was full of joy and happiness and everything proceeded without a hitch not withstanding the enormous attendance. The whole space between Mataji's cottage and the main house was taken up by a pandal which looked very picturesque with some of the trees of the garden serving as pillars. The dais was decorated in Kathiawar style in a really exquisite artistic mannner. The guests from outside who had flocked in great numbers even from considerable distances, including Madras, were accommodated mainly in two school buildings in the close neighbourhood. Several devotees hailing from foreign countries such as France, Germany and U.S.A. also took part in the whole of celebrations.

As customary in our Ashram, uninterrupted *japa* was kept up day and night; one hundred *Durga Saptah shatis* were recited by some Pandits in a special room, ending with a fire sacrifice. One morning there was Kumari Puja and a feast and presents given to 108 little girls including a few boys, Mataji taking a very active part in this item of the programme as she always does. It goes without saying that the lepers of Bombay were not forgotten on Matajis birthday. A feast was arranged for them at their own place. And first and foremost there was of course the main programme in the pandal, which continued from early morning until 10 p. m. or later, with Kirtan in the intervals. The Rasa lila was performed in the morning in the hall of a school in the vicinity. The stage was elevated and very spacious. Mataji would be present daily for a whole hour sitting on one side of the stage and Sri Hari babaji on the other. So one could enjoy very good *darśana* of Mataji & Sri Haribabaji as well as the

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

extremely well done dramatic performances simultaneously. After the *Lilā* Mataji would give *darśana* in the pandal. In the afternoon and evening several well-known Mahatmas delivered talks. The day ended with *Matri Satsang*, when Mataji either replied to questions or there was music by renowned artists, with a song by Mataji as the climax. Arati was performed daily both at midday and at night after the *satsang*.

On May 4th music continued all night until the *Tithi* Puja began at 4 a.m. of May 5th. That night the very spacious pandal was not large enough but people sat all over the garden and the verandas and everything as always proceeded with great dignity and solemnity, Mataji lying on a couch in deep *Samādhi* until noon, when she was taken to her room. After the puja at about 6 a.m. everyone was allowed to ascend the dais to offer his pranama & flowers at Mataji's feet while Mataji lay in awe-inspiring silence and complete immobility. The queue of people seemed unending and it took about two hours until the curtains of the dais could be drawn and Mataji left herself.

For the late afternoon of the same day Mataji had accepted an invitation to Sannyasa Ashram Vile Parle. Mahamandaleshwara Sri Maheshwarananda showed her round the various temples of the Ashram. This was followed by *satsang* in the large open hall. Several Mahatmas gave short talks and at the end Mataji sang for a short while. Her *bhāva* had not quite worn off and she looked unearthly beautiful and incredibly young on the day she completed her 73rd year. On returning from Sannyasa Ashram, we found the preparations for the *Nama yajña* of *Mahāmāntra* to be performed the next day by our Delhi Kirtan party in full swing. After the usual evening satsang, *adhivāsa* began and Mataji was of course present throughout and at about midnight started the women's kirtan before retiring to her room. She came out again an hour or so later and stayed for a little while

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

with the women who were singing kirtan all night, circumambulating round the traditional circular altar. When at 4-30 a.m. Sri Haribabaji arrived for his daily morning kirtan, Mataji was present once more, and after the men had taken over the *Mahāmantra*, Mataji distributed *prasāda* to the women. The *Nāma yajña* ended at sunset on May 6th. Mataji always sings for the *Purnāhuti*.

Originally Mataji was to leave for Poona immediately after the birthday celebrations But she actually remained in Bombay until the 20th of May. Thus Bombay devotees were amply rewarded for their generosity and splendid selfless service to all, by Mataji's presence among them for full 25 days.

The birthday celebrations had been terminated, but as long as Mataji stayed on, the Rasalila (which was shifted to the pandal and changed into "Sri Chaitanya Mahaprabhu Lila"), Sri Haribabaji's satsang at 4 p. m. & evening session from 8--10 p. m. continued in Mataji's gracious presence. Almost daily Mataji replied with great vivacity to very interesting questions after 9 p m. and one can well imagine that large numbers of people came daily from all over Bombay. Mataji's cottage was besieged practically all day, and half the night by those clamouring for *darsana* and private. However during the later half of her sojourn Mataji was taken for a drive to the sea shore or some other solitary place every evening for an hour and a half. This was the only daily holiday she had from the multitude. At midday, after the Rasalila, Mataji would sit on the veranda of her cottage and everyone could line up and offer his individual *pranāma* to Mataji and thus had the chance of a short word with her, or to ask for a private interview and receive her blessing. As a rule she would immediately after grant a number of short interviews in her room.

On two occasions the evening *satsang* was held in the centre of Bombay, once at the house of Sri Thakorebhai

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Patel and once on the lawn of Sri Mafatlal's house at the Cumballa Hill. Both evenings were extremely well arranged and proved a great success.

One morning Mataji visited the Ashram of Swami Akhandanandaji of Vrindaban.

One evening, Ex-Minister Sri Gulzarilal Nanda suddenly appeared in the audience of the evening gathering. Mataji sent one of our sadhus to request him to give a talk, which he did very successfully after a good deal of hesitation.

Another evening a well-known christian saint, who has lived in India for 37 years, Mother Anna Huberta, hailing originally from Germany, attended the evening satsang. The next morning she, together with an English Reverend Father of the Catholic Church and two nuns had a long private with Mataji. Anna Huberta was deeply impressed and delighted. The next evening 15 of her young novices (who are being trained to work in the slums without converting people) attended our evening meeting and listened with great interest to Mataji's replies. The day before Mataji left for Poona Sri Kamubaba, a famous Mohammedan saint, came to see Mataji. An informal meeting was held in front of her cottage and Mataji requested him to reply to questions.

A few days before Mataji left, some Bengali and Gujerati devotees' sons received their sacred threads in her presence.

On May 20th early morning Mataji and Sri Haribabji motored to Poona. A large mumber of Mataji's party had gone ahead by train the day before, others followed by bus. Mataji had not spent the summer there since 1961. Then the Ashram was new and very small. This time also it could accommodate only a few of Mataji's companions, the rest staying in various houses in the vicinity. Poona is of course more restful than Bombay, but there also Mataji is kept extremely busy.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Early in the morning Mataji usually takes a brisk walk in the open grounds adjoining the Ashram. At 10 a.m. she attends the Rasalila for 1½ hours and then gives *darśana* for some time. At 4 p. m. and again at 7-30 or 8 p. m. she comes for Sri Haribaba's *satsang* and after that usually sits on the veranda of the Ashram with a smaller group. A large pandal has been erected in the Ashram compound, where the Rasalila and the *satsang* are held. In the late afternoon Mataji almost daily goes for a drive, sometimes to a lake, or up to Kharakvasla gate or some other place, where she takes a walk. Sometimes she drives to the Poona University which is near the Ashram. One day she and Haribaba visited Alandi, the *samādhi* of Saint Dhyaneswar, the author of the world famous "Dhyaneswari" (a commentary on the Bhagavad Gita). This place is 16 miles distance from Poona. Another day they went to a Siva Temple at Bhageshwar at the other end of Poona. Mataji also accepted invitations to residences of various devotees.

One day the famous singer Srimati Hirabai Barodekar came to see Mataji and delighted everyone by her inspired singing. Sri Dilip Kumar Roy came several times. Once he gave a recital of his beautiful songs and another day he recited his poetry. Swami Akhandanandaji paid a visit to Poona and talked in our Ashram about *Bhakti* on three successive nights. On four nights films of Mataji and Sri Haribabaji were also shown.

Mataji is expected to remain in Poona until July 15th and then go to a place near Pandarpur for a few days. She will probably reach Ahmedabad on the 27th where Guru Purnima is to be celebrated on July 29th. Before going to Ahmedabad, she is expected to return to Poona againf or a few days, to be present at the opening ceremony of a new cottage that is being constructed for Mataji's use in the Ashram grounds.. After Ahmedabad she is likely to visit Bhavanagar and Bhopal inthe first week of August before proceeding to Vrindaban where the *Jhulan* and *Janmasthāmi* festivals are expected to be celebrated this year.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Statement about ownership and other particulars about newspaper

ANANDA VARTA

FROM IV

(*See* Rule 8)

1.	Place of Publication :	Varanasi
2.	Periodicity of its Publication	Quarterly
3.	Printer's Name : Nationality— Address :	K. Bose Indian, Mata Anandamayee Ashram Bhadaini, Varanasi
4.	Publisher's Name : Nationality Address :	K. Bose Indian Mata Anandamayee Ashram Bhadaini, Varanasi
5.	Editor's Name Nationality Address :	K. Bose Indian Mata Anandamayee Ashram Bhadaini, Varanasi
6.	Names and addresses of individuals who own newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent. of the total capital.	Shree Shree Anandamayee Sangha (Regtd) Bhadaini, Varanasi

I, K. Bose, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Date 31st March, 1969.

(Sd) K. Bose
Signature of Publisher

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SHREE SHREE ANANDAMAYEE SANGHA

LIST OF PUBLICATIONS

Hindi

Matri Darshan—"Bhaiji"	3.00
Sad Vani "	1.00
Sri Sri Ma Anandamayee—Gurupriya Devi :— Vol. I to XV	40.50
Ma Anandamayee—Dr. Pannalal	3.00
Akhanda Mahayajña—Gurupriya Devi	2.50
Kirtan Rasa Swarūpa	6.00
Sankirtan, Stav, Aratī	0.50
Amar Vani	6.00

Bengali

Matri Darshan—"Bhaiji"	3.00
Sad Vāni—"Bhaiji"	1.50
Mātri Vāni	0.75
Sri Sri Ma Anandamayee—Gurupriya Devi :— Vol. I–XII	30.50
Ma Anandamayee Upadeshamrita Sangraha	1.50
Akhanda Mahāyajña " "	2.50
Kirtan Rasa Swarūpa	6.00
Suno Bali Maer Kotha—Sailesh Brahmachari	1.25
Mātri Lila Sankirtan	0.31
Anandamayee Ma—Ganga Samiran	2.50
Namavali— "	0.50
Amar Vani	10.00

Gujarati

Mātri Darshan—"Bhaiji"	1.50
Ma Anandamayee Ke Sannidhyame, Part I —Br. Kantibhai	1.00
Amrit Vani—Br. Dattatreyanand	2.00
Ma Anandamayee—Nonubhai Dave	1.25

English

Mother As Revealed to Me—"Bhaiji"	4.00
Mātri Vāni (Sayings)	1.50, Special edition 2.50
Words of Sri Anandamayee Ma	3·00, " " 5.00
Mother as seen by her devotees	5·50, " " 6.50

Photos etc.

Photos—various sizes	0.50 to 15.00
Lockets	1.50
Album	2.50

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीश्री आनन्दमयी संघ

ॐ मा

मातृ शरणं

Registered with the Registrar of Newspapers for India under No. N. 4726/57

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ānanda VĀRTĀ

HINDI & ENGLISH

श्री श्री आनन्दमयी संघ

ॐ मा

मातृ शरणं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Vol. XVI October 196[illegible] No. [illegible]

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्यात्म-साहित्य की अनुपम कृति

श्री श्री माँ आनन्दमयी के अमूल्य उपदेशों का अपूर्व संग्रह

* अमर-वाणी *

व्याख्याकार—म० म० डॉ० श्री गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्०

• विभिन्न जिज्ञासु भक्तों के विभिन्न प्रकार के संशयों के समाधान के लिए, विभिन्न स्थान और समय पर जो उपदेश श्री श्री माँ के श्रीमुख से प्रकट हुए थे, उन सबका यथासंभव परिवर्त्तनहीन अवस्था में इस संग्रह में लिपिबद्ध किया गया है।

• श्री श्री माँ के श्रीमुख की वाणी स्वभावतः अत्यन्त सरल और सहज भाषा में होती है, किन्तु कुछ स्थलों पर साधारण पाठकों के लिए भाव समझना कठिन हो जाता है। ऐसे सभी कठिन स्थलों को श्रद्धेय महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज जी ने अपनी व्याख्या के द्वारा सरलीकृत किया है।

• श्री श्री माँ की यह वाणी वास्तव में मातृभक्तों के निकट महावाक्य के सदृश गुरुत्वसम्पन्न है। उनके श्रीमुख से निकले सभी उपदेश महावाक्यों के समान परम आप्तवचन हैं जिसमें शास्त्रों के ही निगूढ़ सिद्धान्त हैं।

* ४० पौण्ड का उत्तम कागज * माँ के दो नयनाभिराम चित्र *

* आकर्षक गेटअप और साजसज्जा से युक्त *

पृष्ठ-संख्या : ३६६ मूल्य : ६) रुपये

श्री श्री आनन्दमयी संघ

भदैनी, वाराणसी—१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२०वाँ संयम सप्ताह महाव्रत

आनन्द के साथ सूचित किया जाता है कि श्री श्री आनन्दमयी संघ के प्रयत्न से संयम सप्ताह महाव्रत का २०वाँ अनुष्ठान आगामी १७ नवम्बर से २३ नवम्बर तक श्री श्री माँ आनन्दमयी आश्रम, वृन्दावन में सम्पन्न होगा। अपने को जानना, अपने को पाना, सर्व प्रकार से सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि के पालन द्वारा अपने आध्यात्मिक जीवन में उन्नति साधन की चेष्टा करना तथा सबकी आत्मोन्नति सम्पादन में सहायता देना ही संयम सप्ताह के उद्देश्य हैं।

इस समय श्री श्री माँ वृन्दावन में विराजमान रहेंगी, ऐसी आशा की जा रही है—

श्रीमान् दुर्गा सिंह
सभापति
श्री श्री आनन्दमयी संघ

१ अक्तूबर, १९६९ ई०

विशेष द्रष्टव्य—

जो लोग इस उत्सव में सम्मिलित होना चाहते हैं व जिनको पृथक तम्बू की आवश्यकता हो वे कम से कम १५ दिन पहले आगमन की सूचना नीचे के पते पर देने की कृपा करें।

स्वामी परमानन्दजी
श्री श्री माँ आनन्दमयी आश्रम
पो० वृन्दावन
जिला—मथुरा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्यात्म-साहित्य की अनुपम कृति

श्री श्री माँ आनन्दमयी के अमूल्य उपदेशों का अपूर्व संग्रह

★ अमर-वाणी ★

व्याख्याकार—म० म० डॉ० श्री गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्०

• विभिन्न जिज्ञासु भक्तों के विभिन्न प्रकार के संशयों के समाधान के लिए, विभिन्न स्थान और समय पर जो उपदेश श्री श्री माँ के श्रीमुख से प्रकट हुए थे, उन सबका यथासंभव परिवर्त्तनहीन अवस्था में इस संग्रह में लिपिबद्ध किया गया है।

• श्री श्री माँ के श्रीमुख की वाणी स्वभावतः अत्यन्त सरल और सहज भाषा में होती है, किन्तु कुछ स्थलों पर साधारण पाठकों के लिए भाव समझना कठिन हो जाता है। ऐसे सभी कठिन स्थलों को श्रद्धेय महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज जी ने अपनी व्याख्या के द्वारा सरलीकृत किया है।

• श्री श्री माँ की यह वाणी वास्तव में मातृभक्तों के निकट महावाक्य के सदृश गुरुत्वसम्पन्न है। उनके श्रीमुख से निकले सभी उपदेश महावाक्यों के समान परम आप्तवचन हैं जिसमें शास्त्रों के ही निगूढ़ सिद्धान्त हैं।

★ ४० पौण्ड का उत्तम कागज ★ माँ के दो नयनाभिराम चित्र ★

★ आकर्षक गेटअप और साजसज्जा से युक्त ★

पृष्ठ-संख्या : ३६६ मूल्य : ६) रुपये

श्री श्री आनन्दमयी संघ

भदैनी, वाराणसी—१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२०वाँ संयम सप्ताह महाव्रत

आनन्द के साथ सूचित किया जाता है कि श्री श्री आनन्दमयी संघ के प्रयत्न से संयम सप्ताह महाव्रत का २०वाँ अनुष्ठान आगामी १७ नवम्बर से २३ नवम्बर तक श्री श्री माँ आनन्दमयी आश्रम, वृन्दावन में सम्पन्न होगा। अपने को जानना, अपने को पाना, सर्व प्रकार से सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि के पालन द्वारा अपने आध्यात्मिक जीवन में उन्नति साधन की चेष्टा करना तथा सबकी आत्मोन्नति सम्पादन में सहायता देना ही संयम सप्ताह के उद्देश्य हैं।

इस समय श्री श्री माँ वृन्दावन में विराजमान रहेंगी, ऐसी आशा की जा रही है—

श्रीमान् दुर्गा सिंह
सभापति
श्री श्री आनन्दमयी संघ

१ अक्तूबर, १९६९ ई०

विशेष द्रष्टव्य—

जो लोग इस उत्सव में सम्मिलित होना चाहते हैं व जिनको पृथक तम्बू की आवश्यकता हो वे कम से कम १५ दिन पहले आगमन की सूचना नीचे के पते पर देने की कृपा करें।

स्वामी परमानन्दजी
श्री श्री माँ आनन्दमयी आश्रम
पो० वृन्दावन
जिला—मथुरा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Ānanda Vārtā

A quarterly journal dealing mainly with the divine life and teaching of Mata Anandamayee and with other religio-philosophical topics

❋

BOARD OF EDITORS

Mahamahopadhyaya Sri Gopinath Kaviraj, M. A., D. Litt.
Padma Vibhushan

Brahmachari Nirmalananda, M.A., Shastri.

Kumari Lalita Pathak, M. A.

Brahmacharini Atmananda.

Sri K. Bose,—*Managing Editor.*

❋

ANNUAL SUBSCRIPTION

India—(Postage free) Rs. 6/- only
Foreign—(By Sea Mail) Rs. 10/50 or 15 shillings or $ 2·00
" (By Airmail)—Rs. 25/- or £ 1-10-0 (Europe etc.)
" —Rs. 35/- or $ 5.50 (North & South America.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ĀNANDA VĀRTĀ

GENERAL RULE

1. The magazine is published in three separate edtions—(1) Hindi-English (2) Bengali-English (3) English. The magazine is published four times a year, in the months of January, April, July & October. The year begins from January.

2. Subscriptions are always payable in advance. Foreign subscriptions may be sent either by international Money orders or Postal orders.

3. Subscriptions to be sent to :—

The General Secretary, Shree Shree Anandamayee Sangha Bhadaini, Varanasi, (U. P.)

4. All correspondence regarding 'Ananda Varta' should mention without fail the subscription number and be addressed to :—

The Managing Editor, "Ananda Varta", Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhaidain, Varanasi, (U. P.)

5. Complaints about non-receipt of the magazine should be sent *within the month of publication.*

6. Any change of address should be intimated to the Managing Editor at the earliest possible opportunity.

7. Subscribers are requested not to dishonour any issue of the magazine sent by V. P. P., as this entails a loss to the Ashram fund. They may kindly inform us *beforehand* if they desire to discontinue subscribing to the magazine.

Published by Shri K. Bose, for
Shree Shree Anandamayee Sangha, Varanasi.
Printed at the Indian Press (Pte.) Ltd., Varanasi-Branch VARANASI.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CONTENTS

Hindi Section

1—मातृवाणी 147

2—श्री श्री माँ की अमर-वाणी—महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज कृत व्याख्या सहित 149

3—स्वरूप प्राप्ति का उपाय—महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज 153

4—मातृ-सत्संग—स्वामो भागवतानन्द गिरि 156

5—श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग—श्री अमूल्य कुमार दत्त गुप्त, एम० ए०, बी० एल० 161

6—उन्नीसवाँ संयम-सप्ताह महाव्रत—श्रीचरणकमलाश्रिता 168

7—लीलानुध्यान—महामण्डलेश्वर श्री १००८ स्वामी महेश्वरानन्द जी, संन्यास आश्रम, बम्बई 173

8—कैलास-मानसरोवर-प्रदक्षिणा—श्री दत्त 177

9—बापू स्मरण (पवित्र जन्मशती में) 186

——

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CONTENTS

English Section

1. Mātri Vānī 153
2. Sri Sri, Mataji's Amar Vani —(Reported by Brahmachari Virajananda) 155
3. Mātri Satsang—Swami Bhagavadanand Giri 158
4. Mataji and the Cosmic Elements —R.K. Banerjee ... 163
5. The Blissful Witness—Jainath Kaul, M.Sc. ... 172
6. The Upanisads and Life Divine— (E'ernal Religion)—Divya Darshi ... 175
7. The Heart and Soul of India —Elleen Jasnowski and Marion Booth ... 179
8. Sacred Places of Kashmir, Jammu & Ladakh—A Devotee 181
9. Matri Līlā 189

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

—Mataji with her mother

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Ānanda Vārtā

"अमर आत्मा—अमर पन्थी स्वयम्—अपनेमें आप।"

VOL. XVI] OCTOBER, 1969 [NO. 4

—मातृवाणी—

ध्यान करना चाहिये—जप करना चाहिये—कुछ न कुछ करो। भगवच्चिन्तन की चेष्टा करो। जन्म जन्मान्तर के संस्कार रूप आवरण रह गये हैं—आवरण हटाने की चेष्टा करो।

× × × ×

वासना कामना के साथ तुम्हारा ही सूक्ष्म शरीर। जैसे फूल की सुगन्ध जाती है और आती है। तुम्हारे ही जन्म और मृत्यु हैं। फिर जन्म-मृत्यु कुछ भी नहीं हैं। मृत्यु के बाद वासना कामना के साथ सूक्ष्म शरीर वायुभूत निराश्रय मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार जन्म लेता है। वासना-युक्त अहं अथवा अहंकार जाता है और आता है—आत्मा का जाने आने का प्रश्न नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण—कारण का कारण आत्मा है। उसका प्रकाश न होने तक आना जाना है। आत्मा स्वयं प्रकाश है। आना-जाना जीव का है। अपना प्रकाश करने के लिए केवल पर्दा हटाना है।

× × × ×

जब सिनेमा देखते हो तब निद्रा नहीं आती है। बाहर के भागों में मन आकृष्ट रहता है; निद्रा नहीं आती है। जाग्रत में परिश्रम होता है, निद्रा में विश्राम होता है। निद्रा में जीव अपने स्वरूप में जाता है किन्तु अज्ञानावृत अवस्था में जहाँ निरावरण स्वरूप का प्रकाश है वहाँ निद्रा का प्रश्न नहीं उठता। उस निरावरण स्वरूप स्थिति में क्रिया और गति जितनी ही अधिक होगी निद्रा की आवश्यकता उतनी ही कम होगी।

× × × ×

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूजा का उद्देश्य है—इष्ट का प्रकाश। अपने को पाना है आत्म प्रकाश के लिए—जिनकी पूजा करने पर अद्वैत-द्वैत का प्रश्न नहीं आता है उनकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् के लिए पूजा निष्काम पूजा है।

गीता में कहा गया है—अप्रिय सत्य नहीं कहना चाहिये। पृथ्वी के सब लोकों को तुम कहनेवाले कौन हो? तुम्हारी बात वे क्यों सुनेंगे। तुममें यदि ऐसी शक्ति हो कि तुम्हारे बोलने पर सब सुनेंगे तभी तुम्हें बोलना चाहिये। अन्यथा तुम्हारा मन क्षुब्ध होगा—साधना में व्याघात होगा।

× × × ×

ऐसी बहुत-सी क्रियाएँ हैं जिनमें मृत्यु होने पर दुर्गति होती है—सद्गति नहीं होती। अन्धकार से और अधिक अन्धकार में जाना पड़ता है।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्री माँ की अमर-वाणी

[महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कृत व्याख्या सहित]

(ब्रह्मचारी विरजानन्दजी से प्राप्त)

प्रश्न—विरह तत्त्व क्या है ?

माँ—यह जो संसार है, इस संसार में सदा एक न एक अभाव लगा ही तो रहता है। यह अभाव अर्थात् न पाना, न जानना इसमें दुःख देता है। क्योंकि दो को हम पाते नहीं, पाना चाहते हैं, पूर्ण करना चाहते हैं। फिर पाने पर क्या होता है ?—आनन्द होता है। लड़का खो गया था, पाकर आनन्द हुआ—दुनिया की दृष्टि में आनन्द हुआ, सन्तोष हुआ, तृप्ति हुई। इस पाने न पाने के मध्य में स्वभाव का आनन्द नहीं है, विरह भी नहीं है। तब किसका है ? अभाव का अभाव क्यों ? जिसको पाकर जो पूर्ण हुआ, जागतिक मनमानी गति का भी। यहाँ अभाव का रूप भी आ जायगा। लड़का नहीं था, दुःख था, हुआ—आनन्द हुआ। किन्तु यह तो रहेगा नहीं, फिर अभाव आ जायगा। दुनिया का यह जो आनन्द है, यह जो सुख और दुःख है, यह अभाव का है। जिसे पाने पर सब कुछ पाना—पाने न पाने का प्रश्न उठना ही नहीं है—वह जब तक नहीं, तब तक भगवत्प्राप्ति के अभाव का जागरण तो स्वाभाविक है।

स्वभाव का क्या होता है ? भगवान् को पाने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है। साकार सगुण रूप में जो भगवान् का प्रकाश हुआ, यहाँ क्या होता है ?—मिलन। भगवान् प्राप्त नहीं होते हैं, ऐसा पहले प्रतीत होता है। साधन करते-करते भगवान् स्वयं प्रकट हुए—साधक को पूर्ण आनन्द हुआ वह तृप्त हुआ। इसीलिए कहते हैं चीनी खाना चाहते हैं, चीनी होना नहीं चाहते।

इसके बाद क्या हुआ ?—भगवान् को पाने के लिए साधना करते-करते जब भगवान् ने दर्शन दिये, भगवान् ने कहा क्या चाहते हो ? वर ग्रहण करो। साधक ने कहा—जभी आपके दर्शन करना चाहूँ, दर्शन दें। तथास्तु कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। साधक खूब आनन्द में है, इच्छा होते ही भगवान् दर्शन देते हैं, अब दुःख नहीं है। एक दिन साधक ने कहा—अब तुम जाओ मत, सदा ही मेरे पास रहो। तथास्तु—भगवान् रहने लगे। रात दिन भगवान् पास में हैं, साधक आनन्द में विभोर है। इससे क्या हुआ, साधक ने एक दिन सोचा, भगवान् जब आते नहीं थे, तब उनके लिए जो छटपटाहट थी, वह तो अब नहीं है, वही तो बहुत अच्छा था। भगवान् से बोला, तुम्हारे अभाव (विरह) में वह जो मेरी व्याकुलता थी, वह फिर मुझे दो। तथास्तु—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस प्रसङ्ग में एक बात है—भगवान् को पाकर भगवान् क्या हैं उसका तो प्रकाश हो गया। पाये बिना जो व्याकुलता थी वह एक प्रकार का विरह था, और पाकर जो विरह है वह असली विरह है। पाना हुआ है कि नहीं—उनका अभाव फिर पाना। दुनिया का जो मिलन और विरह है वह अभाव का है। और भगवान् के साथ मिलन होकर जो विरह है वह स्वभाव का है। पाना माने हो जाना। होकर भी अलग, स्वयं स्वरूप में प्रकाशित होना। इसीलिए विरह के स्थान को ऊँचा कहते हैं, क्योंकि पूर्णाङ्ग प्रकाश हो गया है न। तुम लौट आये उसी अभाव को लेकर, किन्तु उन्हें पाकर। इसीलिए कहते हैं सेवक दास नित्यदास, नित्य प्रकाश, नित्य लीला, यहाँ मृत्यु कहाँ है ?

जीव नित्य कृष्णदास है, इसका तात्पर्य क्या है ? जीव बद्ध है, इसका तो भगवान् के साथ बन्धन हो गया है। नित्य के साथ बन्धन हो गया है इसलिए नित्यदास है। भगवान् का जहाँ प्रकाश है वहाँ माया कहाँ ? योग माया क्या है ? अपनी माया अपने में ही आश्रित।

प्रश्न—इस मिलन का परिणाम क्या है। क्या फिर मिलन नहीं होगा ?

माँ—यह जो मिलने के बाद विरह में भगवान् नहीं है यह स्वरूपतः भगवान् हैं, है। एक बार पाकर फिर नहीं है, ऐसा हो नहीं सकता। इसलिए विरह मिलन एक ही बात हैं। आत्माराम आत्मा का प्रकाश एक बार होने पर फिर स्मरण विस्मरण की बात क्या ? विरहरूप में नित्य प्रकाश। विरह नहीं है इस प्रकार नित्य उपस्थित। विरह रूप में जो मिलन है वह उसी रूप में मिलन है। तुम मेरे पास नहीं हो इस रूप में नित्य उपस्थित।

(इटावा १६-९-५०)

व्याख्या

मिलन और विरह तत्त्व

प्रश्नकर्ता के प्रश्न का उत्तर देने के सिलसिले में माँ ने मिलन और विरह तत्त्व के सम्बन्ध में बहुत बातें बतलाई हैं। सांसारिक दृष्टि में जो मिलन और विरह हैं वे पारमार्थिक दृष्टि में जो मिलन और विरह हैं उनसे भिन्न हैं। श्री श्री माँ की उक्ति में एक अभाव की दृष्टि है और दूसरी स्वभाव की दृष्टि है। मिलन और विरह तत्त्व यदि समझना हो तो एक प्रशान्त स्थिति की ओर लक्ष्य रखना उचित है। इस स्थिति में सृष्टि नहीं है, संहार नहीं है यह नित्यस्थिति स्वयं प्रकाश है। सृष्टि और संहार, मिलन और विरह इसी महाप्रकाश के ऊपर प्रतिष्ठित है। मां ने जिसे अभाव की दृष्टि कहा है वह जागतिक दृष्टि है। उसमें मिलन है, विच्छेद भी है। मिलन में सुख, विच्छेद में दुःख होता है। किन्तु माँ ने जिसे स्वभाव की दृष्टि कहा है वहाँ भी मिलन विरह हैं। प्राप्ति में मिलन, अप्राप्ति में विरह। इसमें अवान्तर विभाग है, क्योंकि प्राप्ति में भी अप्राप्ति है एवं अप्राप्ति में भी प्राप्ति है। प्राचीन वैष्णव कवि ने अपने पद में कहा है—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"दुहूँ कोड़े दुहूँ कांदे विच्छेद भाविया।" प्रणयी और प्रणयिनी परस्पर आलिङ्गन में बँधे हैं, किन्तु यह जो गाढ मिलन है इसमें भी विच्छेद का आभास देखकर उनका हृदय रो उठता है। इसलिए कहना पड़ता है कि नित्य मिलन में नित्य विरह छिपा रहता है। इसलिए नित्य मिलन में विरह की वेदना तीव्र वेग में जाग उठती है। पक्षान्तर में नित्य विरह में भी नित्य मिलन खूब स्पष्ट रूप में भाग्यवान् भक्तों को अनुभूत होता है। इसीलिए विरह में भी एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है। इसी को विरहानन्द कहते हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ने एक दिन विरह के आनन्द को लक्ष्य कर कहा था—

विरह सुमधुर हलो दूर केनो रे।
मिलन दावानले गेलो ज्वले येनो रे॥
आकाशे चाहिताम गाहिताम एकाकी।
मनेर यत कथा छिलो सेथा लेखा कि॥

इत्यादि। इस तरह अन्तर्दृष्टि के खुल जाने पर एक ओर जैसे मिलन में विरह का अनुभव होता है और दूसरी ओर विरह में भी मिलन का आनन्द फूट उठता है। असल वात यह है कि सब में ही सब है किन्तु उसका अनुभव करने का सौभाग्य तथा सामर्थ्य सबको नहीं है। वास्तविक प्रेमी वही है जिसको नित्य प्रेम के मध्य मिलन में भी विरह दिखलाई देता है एवं विरह में भी मिलन का अभाव नहीं रहता। भक्त श्रेष्ठ मीराबाई का नित्य विरह था। मीरा ने अपने जीवन-व्यापी विरह के मध्य गंभीर मिलन का जो आस्वाद प्राप्त किया है वह साधारण भक्तों को प्राप्त नहीं हो सकता। अभाव में भी वही, स्वभाव में भी वही—यही परमा स्थिति है। लीला के मध्य अभाव और स्वभाव संचरण करते हैं। किन्तु उस गंभीर सत्ता का अनुभव मिलनकाल में जैसे रहता है विरह में भी उससे कम नहीं रहता है। भगवत् राज्य अति मधुर है। वहाँ दुःख भी सुख के रूप में परिणत होता है, इसलिए वहाँ विरह के मध्य में मिलन की हँसी फूट उठती है। एवं मिलन में हृदय में अनन्त काल का चिर विरह छिपा रहता है। दोनों का ही आस्वादन होता है। इसलिए मिलन में जो प्राप्ति होती है उसकी अपेक्षा गहरी प्राप्ति होती है विरह में।

हमने जो यह विरह की बात कही है यह लीला की बात है। जिस स्थिति में दो नहीं हैं एक ही एक प्रशान्त निस्तब्धता के साथ विराजमान है वह परम शान्ति स्वरूप जो मिलन और विरह के अतीत है। वह लीलातीत है। किन्तु अपना स्वयं आस्वादन के लिए जब लीला होती है तब एक ही दो रूपों में प्रकट होता है। इन दो का जो मिलन है वही जागतिक परिभाषा में मिलन नाम से कहा जाता है एवं इन दो का जो विच्छेद वह जागतिक परिभाषा में विरह कहा जाता है।

अखण्ड सत्ता के महा प्रकाश के ऊपर लीला भूमि में नित्य यही मिलन-विरह का खेल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चलता है। इसका भाग्यवान् पुरुष ही अनुभव कर सकते हैं। जो आनन्द स्वरूप है वहाँ मिलन में भी जैसा आनन्द है, विरह में भी वैसा ही आनन्द है—पर आस्वादन का भेद रहता है। माँ ने जिसे स्वभाव का विरह कहा है उसके अन्दर प्रवेश पाने पर उसका निगूढ़ रहस्य समझ में आ सकता है।

और एक ओर से विरह की सार्थकता और प्रयोजन का अनुभव किया जा सकता है। विरह का जो निगूढ आनन्द है उसके विवरण का यहाँ हमने त्याग कर दिया। पर स्मरण रखना होगा कि मिलन के आनन्द की क्रमवृद्धि के अनुकूल विरह की सत्ता काम करती है। मान लीजिए क और ख दो सत्ताएँ हैं। दोनों दोनों के प्रति आकृष्ट हैं इसीलिए दोनों के मिलन में दोनों को आनन्द होता है एवं विरह में दुःख होता है। किन्तु इस विरह की पूर्णता के बाद जब मिलन का गाढ़ समावेश उपस्थित होता है, तब जिस मात्रा में आत्मस्वरूपगत रस की उपलब्धि होती है वह उस विरहज दुःख के ही अनुरूप होती है। किन्तु इस मिलन के बाद फिर जब विरह होता है तब उसकी वेदना पूर्वकाल में हुए विरह की वेदना से अधिक तीव्र होती है एवं विरह के बाद होनेवाले मिलन की अवस्था में जिस मात्रा में रस की अभिव्यक्ति होती है वह पूर्व की अपेक्षा अधिक रहती है। इस तरह से नित्य मिलन और नित्य विरह योगमाया के नियम से नित्य लीला में नित्य अनुष्ठित होकर रसस्वरूप रसमय पुरुष में अनन्त रस की अभिव्यञ्जना करते हैं। भगवद्-रसानुभूति की ओर से यदि देखा जाय तो विरह का मूल्याङ्कन एक गहरा विचारणीय विषय है। स्मरण रखना होगा कि लीलातीत सत्ता में मिलन और विरह किसी की संभावना नहीं है। वहाँ स्वरूपानन्द, जो नित्य स्वप्रकाश है प्रकाशमान है। स्वरूप शक्ति की ओर से लीला की ऊर्मियाँ वहाँ नहीं उठती हैं, इसलिए वहाँ मिलन भी नहीं, विरह भी नहीं होता है। वहाँ एक अखण्ड स्वप्रकाश सत्ता विद्यमान रहती है।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वरूप प्राप्ति का उपाय

महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज

आत्मा स्वातन्त्र्यमय और अखण्ड महाप्रकाश स्वरूप है। उसे यदि प्राप्त करना हो तो पहले उसके निराकार निर्गुण स्वरूप को ग्रहण करना चाहिये। उसके बाद उसके साकार सगुण अथवा सकल स्वरूप को ग्रहण करना आवश्यक है। आत्मा का निराकार स्वरूप विश्वातीत है, किन्तु उसका साकार स्वरूप विश्वात्मक है। वह व्यष्टि रूप से, समष्टि रूप से तथा महासमष्टि रूप से ग्रहण करने योग्य है। इस द्विविध स्वरूप की प्राप्ति के अनन्तर आत्मा के परम स्वरूप का साक्षात्कार होता है। इस परम स्वरूप में साकार-निराकार, सकल-निष्कल, सविशेष-निर्विशेष आदि द्वन्द्वों का समाधान हो जाता है। इसके बाद योग का मार्ग खुल जाता है। योग में जब क्रमशः घनीभूत भाव प्रतिष्ठित होता है अर्थात् सायुज्य-लाभ होता है तब उसके उपरान्त अद्वय अवस्था का आविर्भाव होता है।

इस दृष्टिकोण के अनुसार सबसे पहले विश्वभेद करना आवश्यक होता है। इसे दक्षिणावर्त क्रम से करना पड़ता है। योगी आत्मा के सम्मुख दृष्टि लगाकर ज्ञानशक्तियों को निर्मल करते हुए आगे बढ़ते हैं। ज्ञान जबतक मलिन रहता है तबतक भीतर का ज्ञान भी रहता है, बाद में उसके निर्मल होने पर भीतर ओझल हो जाता है एवं अन्त में ज्ञान के पूर्णरूप से स्वच्छ हो जाने पर बाहर ज्ञेय का भान नहीं रहता। योगिराज पतञ्जलि ने इस स्थिति को लक्ष्य कर कहा है—"ज्ञानस्य आनन्त्याद् ज्ञेयमल्पम्" अर्थात् ज्ञान के अनन्त हो जाने पर अर्थात् सम्पूर्ण रूप से भासमान होने पर ज्ञेय तिरोहित हो जाता है।

इसका तात्पर्य यह है कि योग मार्ग की आरम्भिक अवस्था में ऊर्ध्वगति के साथ-साथ ज्ञान जिस क्रम से निर्मल होता है ठीक उसी मात्रा में ज्ञेय के साथ उसकी एकाकारता होती है। क्रमशः विश्व आकार रहित होकर निराकार आत्मसत्ता के तादात्म्य प्राप्त करता है। इसी का नाम विश्वभेद है।

यह विश्व व्यष्टि और समष्टि आदि विविध आकारों में रचित है। यह विकास के अनुसार भासमान होता है। किन्तु योगी के योगमार्ग में आगे बढ़ने के साथ-साथ उसका ज्ञान निर्मल हो जाने पर उसके प्रभाव से यह साकार विश्व ज्ञानरूप में भासित होकर अन्त में निराकार आत्मसत्ता में पर्यवसित हो जाता है। उस समय ज्ञाता आत्मा ज्ञेयरूप में अपनी प्राप्ति कर सकते हैं अर्थात् जो ज्ञाता हैं वे ही तब निराकार रूप से ज्ञेय हो जाते हैं। बहुत साधक इस निराकार आत्म-दर्शन को साधना का चरम लक्ष्य मानकर यहीं पर स्थिति प्राप्त करते हैं, किन्तु यह आत्मा का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'पृष्ठदर्शन' मात्र है। इसका दक्षिणावर्त गति के चरम फल तथा साधना की अनुलोम गति के रूप में वर्णन किया जा सकता है।

सद्गुरु की कृपा रहने पर योगी इस जगह न रुककर, मुड़कर वामावर्त गति से चलकर अपने स्वरूप के निकट उपस्थित हो सकता है। इस गति का नाम विलोम गति है। तब पहले दक्षिणावर्त क्रम में जिस ज्ञेयरूपी विश्व का ज्ञान में विलय हो चुका था उसका पुनः उत्थान होता है। इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह पुनरुत्थान चिन्मय स्वरूप से होता है। पहले विश्व मायिक अचित् अर्थात् जड़ भावापन्न था। विलोमगति न होने पर जड़ विश्व के निवृत्त होने से निराकार आत्म-स्वरूप में स्थिति होती, किन्तु गुरु कृपा से दूसरी बार गति-लाभ के कारण अस्तंगत विश्व का फिर उद्धार (उत्थान) होता है। किन्तु वह तब जड़ न रहकर चिन्मय हो जाता है। इस बार जय का मार्ग समाप्त हुआ। इस स्थिति में अस्त को प्राप्त विश्व दूसरी बार आविर्भूत होता है। अन्त में जब समस्त विश्व अपना चिन्मय रूप लेकर दूसरी बार उत्थित होता है। तब विश्वात्मक आत्मस्वरूप का दर्शन होता है। यही आत्मा का 'सम्मुखदर्शन' है। एवं यही विश्वात्मक आत्मा का साकार दर्शन है। पहले आत्मा ने अपना निराकार स्वरूप प्राप्त किया था, तब विश्व निराकार था और अब आत्मा का नित्य साकार रूप प्राप्त हुआ है। किन्तु ये दोनों ही परस्पर भिन्न हैं—एक आत्मा की अनुलोम गति का फल आत्मा का पृष्ठ रूप है एवं दूसरा आत्मा की विलोम गति का फल, आत्मा का सम्मुख रूप है।

ये दोनों ही रूप वास्तव में एक ही आत्मा के अखण्ड रूप के अन्तर्गत हैं, जिसका दर्शन सरल गति का अनुसरण करने से होता है। उस समय गति का आवर्तन नहीं रहता है। दक्षिणावर्त वामावर्त समाप्त हो जाते हैं। जब गति का आवर्तन नहीं रहता है तब सरल गति खुल जाती है, जिससे केन्द्र में स्थित बिन्दु का अखण्ड रूप में दर्शन होता है। जैसे योग-मार्ग में इड़ा और पिंगला की आवर्त गति है वह चाहे दक्षिणावर्त हो अथवा वामावर्त जो भी क्यों न हो एवं अन्त में जैसे सुषुम्ना की सरल गति द्वारा आत्मा के पूर्णरूप का दर्शन होता है यह भी बहुत अंशों में वैसा ही है। इस अखण्ड साक्षात्कार में साकार-निराकार, सगुण आदि द्वन्द्वों का क्षोभ सदा के लिए निवृत्त हो जाता है। इस सरल गति के द्वारा पूर्ण सत्ता के दर्शन होते हैं सही, किन्तु प्राप्ति तब भी नहीं होती है। क्योंकि द्रष्टा और दृश्य, उपास्य और उपासक का भेद तब भी रहता है। किन्तु वक्र गति के निवृत्त होने के कारण पूर्ण सत्य के साक्षात्कार में जो बाधक था वह अब निवृत्त हो गया है। किन्तु व्यवधान तब भी है। इस व्यवधान के दूर हुए बिना दोनों का योग नहीं हो सकता। पूर्ण स्वरूपके निरन्तर निर्निमेष दृष्टि दर्शन करते-करते यह व्यवधान भी हट जाता है एवं उपास्य उपासक का योग आरम्भ होता है। उसके पश्चात् योग प्रक्रिया की गाढ़ता प्राप्त होने पर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपासक उपास्य में प्रविष्ट होता है एवं उपास्य उपासक में प्रविष्ट होता है। तब दोनों में समरसता सम्पन्न होती है। इसीलिए शास्त्र में कहा गया है—

"शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।"

यही सामरस्य है। इसके शिव कहने पर दोनों ही शिव हैं, शक्ति कहने की इच्छा होने पर दोनों ही शक्ति हैं। दोनों ही पूर्णरूप से अभिन्न हैं। इस सामरस्य का पौराणिक लोग सायुज्य के नाम से वर्णन करते हैं। यही योग की पराकाष्ठा है। इसके अनन्तर सामरस्य भी नहीं रहता है। उसका भी अतिक्रम होता है। यही आत्मा की पूर्ण स्थिति है। वहाँ सब कुछ है अथच कुछ भी नहीं है। इसमें परिपक्वता आने पर आत्मा की अचल स्थिति होती है।

——

निष्काम-कर्म !

एक समय पाताल लोक के असुर राजा शम्बर ने देवलोकवासी देवताओं से संग्राम छेड़ा। बहुत दिनों तक घोर युद्ध होता रहा। कभी शम्बर परास्त होता था, कभी देवराज इन्द्र। आखिर मायावी शम्बर अपनी माया द्वारा तीन विशालकाय दैत्य—दाम, व्याल और कट—उत्पन्न किये। वे ऐसे थे जिनमें अहंभाव लेशमात्र भी न था और न किसी प्रकार की वासना उनके मन में होती थी। जिस कार्य के लिए उनकी उत्पत्ति हुई थी केवल उसके करने में ही उसकी निष्काम प्रवृत्ति थी।

ऐसे दाम, व्याल और कट ने संग्राम में देवताओं के दाँत खट्टे कर दिये। निदान, देवता लोग भाग निकले और ब्रह्मा की शरण में पहुँचे। ब्रह्माजी ने ध्यान किया, विचार किया। असुरों की जय का कारण मालूम पड़ा। वे बोले—जब तक दाम, व्याल और कट अनहंभाव से निष्काम युद्ध करते रहेंगे तबतक उनके ऊपर तुम विजय प्राप्त नहीं कर सकोगे। यदि उन असुरों को परास्त करना है तो इस रीति से युद्ध करना चाहिये कि उनके हृदय में विजय की कामना, मृत्यु का भय, जीवन की लालसा और अहं-मम-भाव उत्पन्न हो जायें।

देवताओं ने युद्ध की रीति बदली। असुरों के मन में विजय का अभिमान उदित हो गया। फिर मरने का भय, पराजय से घृणा, जीवन की लालसा और मैं-मेरापन उत्पन्न हो गए। पराजय निश्चित थी। वे भाग निकले। देवताओं ने उल्लसित होकर विजय-घोष किया। (योग-वासिष्ठ से)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ ॐ माँ ॥

मातृ सत्संग

(५०)

श्री स्वामी भागवतानन्द गिरि

स्थान :—प्रयाग—त्रिवेणी तट। अर्धकुम्भ मेला ता० २७ जनवरी १९४८—माघ-कृष्णा १'२००४।

प्र०—जिन लोगों ने शास्त्रों की रचना की उन लोगों ने अपनी अपनी कल्पना के अनुसार देवताओं के स्वरूप का वर्णन लिखा है—यह क्या सत्य है ?

माँ—एक बात है। भाव का भी एक रूप होता है। क्रोध का भी एक अलग रूप होता है। प्रेम का भी रूप होता है। श्रद्धा का भी रूप होता है। तुम लोग भगवान् को प्रेम स्वरूप, सत् स्वरूप, सच्चिदानन्द स्वरूप क्या कह रहे हो ? अभाव और स्वभाव का भी रूप होता है। अभाव का यदि रूप न होता तो अभाव से तुम परेशान क्यों होते ? प्रेम स्वरूप से सुख मिलता है। यदि मनुष्य में दुःख न होता तो वह पूर्ण होने की कोशिश क्यों करता ? पूर्ण रूप परमानन्द है। भगवान् से तुम अपने को दूर सोचते हो इसलिये दुःख मिलता है। जहाँ दूर भाव नहीं है वहाँ आनन्द ही आनन्द है। वासना कामनाओं का संयोग मन से ही होता है—यह भाव का ही रूप है। तुम जो प्रश्न पूछ रहे हो वह किसका स्वरूप है ? वह भी भाव का ही स्वरूप है। तुम पहले सिर्फ अकेले थे। फिर दो हो गये—उसमें से १० बन गये। यह सब क्या भाव का स्वरूप नहीं है। देखो तुम अपनी भी कल्पना कर लेते हो। कल्पना क्या है ? तुम कौन हो ? विचार करने से पता चलेगा कि तुम वही हो—तुम वही हो। भावना भी एक रूप है, मूर्ति है, गुण है और क्रिया भी है। जगत् में जितना-जितना भाव है उतनी-उतनी सबकी मूर्तियाँ हैं। सुना है कि तुम्हारे श्रीमद् भागवत में इसकी बात आती है। उसमें भिन्न-भिन्न भावों की मूर्तियों का वर्णन आता है। श्री शंकर जी ने कामदेव को भस्म कर दिया था—यदि कामदेव का रूप न होता तो श्री शंकर जी कैसे भस्म करते ? वासना, कामनाओं का भी रूप आता है। जैसा तुम्हारा रूप है वैसा ही तुम्हारी भावनाओं का भी एक प्रकार का रूप आता है। जहाँ भाव, अभाव का भाव नहीं वहाँ कोई रूप की बात नहीं आती है। रूप, गुण जो होता है वह उनका ही रूपगुण है फिर—यह सब गुण उनका नहीं है। वहाँ 'ना' भी नहीं है और 'हाँ' भी नहीं है। फिर—वहाँ 'हाँ' भी है और 'ना' भी है। ऐसे परमात्मा की तरफ आगे चलो। श्री पार्वती जी को साक्षात भगवती का स्वरूप मानते हैं। महाकाली का भी रूप अलग है। रोग, आराम का भी रूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होता है। ऐसा ही भगवती का भी एक रूप होता है, एक-एक क्रिया के लिये एक-एक शक्ति का प्रकाश होता है। समष्टि रूप से देखने से पता लगेगा कि सबमें सब है। जैसे तुम एक अङ्क करते हो उसमें एक शून्य नहीं बैठाने से अङ्क पूरा नहीं होता है—वैसे ही सबमें सब है। जो कोई व्यक्ति, जिस किसी पथ से भगवत्-मार्ग में आगे बढ़ता है तो उसको अवश्य भगवत्-प्राप्ति होती है।

प्र०—माँ, तुमने गणेश जी का दर्शन किया है—उनका वर्णन करो। तुमने आध्यात्मिक जगत् में जो-जो देखा है वह सब हम लोगों को दिखाओ।

माँ—इस शरीर की बात तो तुम लोग छोड़ दो। तुमने जब पूछा है तो यह शरीर कहेगा—शास्त्रों में जिन जिन देवताओं का वर्णन जैसा-जैसा आया है ठीक-ठीक उन लोगों का वर्णन वैसा ही है।

किसी के इष्ट देवता राम होते हैं, किसी के इष्ट देवता भगवान् श्री कृष्ण हैं। किसी का इष्ट देवी दुर्गा माँ होती हैं। अपने-अपने इष्ट देवता के मुताबिक उनकी साधना भी अलग-अलग है। अभी तुममें जो इच्छा प्रगट हुई है—वह क्या हुई है? आज तुम्हारी मूर्ति, आकृति इत्यादि का प्रकाश हुआ है—उसमें भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा मन में पहले से थी। उसका बाहर प्रकाश हुआ। हरएक व्यक्ति के भीतर सुप्त इच्छाएँ भी रहती हैं। यह इच्छायें कभी-कभी समय आने पर बाहर आती हैं। इन सुप्त इच्छाओं को जब गुरुदेव बाहर लाते हैं तब साधक को पता चलता है। जिसको भगवत् प्राप्ति होती है—उनको भगवान् के साक्षात् दर्शन भी होते हैं। कैसा सुन्दर है—तुम्हारा जैसा संस्कार होगा वैसा दर्शन मिलेगा। एक साधक के कृष्ण दर्शन में और दूसरे साधक के कृष्ण दर्शन में फर्क भी हो सकता है—लेकिन एक स्थान ऐसा है जहाँ एक और अनन्त एक साथ में रहते हैं। साधनायें भी अनन्त प्रकार की होती हैं। तो तुम फिर उनका अन्त कहाँ से लाओगे?

तुम्हारा दर्शन विकसित होते-होते ऐसे स्थान पर आयेगा कि जहाँ तुम्हारा कृष्ण और उनके कृष्ण में कोई फर्क नहीं रहेगा। इस शरीर ने किसी से सुना है कि उनको जब भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन हुए तो उन्होंने भगवान् श्री कृष्ण से कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम साक्षात्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री कृष्ण हो लेकिन मैं तुम्हारा इस रूप में दर्शन नहीं चाहता हूँ। ज्ञान से मुझको प्रत्यक्ष हो रहा है कि तुम दो ही हो तब भी मैं श्री कमललोचन श्रीराम के रूप में दर्शन करना चाहता हूँ" ऐसा भाव भी आता है। इनमें ज्ञान और भक्ति एक साथ में है। किसी-किसी स्थान में अपनी अवस्था अनुसार भगवान् का प्रकाश होता है। फिर कोई अलग भी नहीं है। प्रत्येक का राम, प्रत्येक का श्री कृष्ण, प्रत्येक का दुर्गा है—सब मेरा ही इष्टदेव है। एक मात्र वह ही है—वह ही है। हम सब लोग कहते हैं कि भगवान् द्वन्द्व से परे है। तो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फिर भगवान् में द्वन्द्व कहाँ से आ गया ? एक दृष्टि से देखें तो तुम्हारा भगवान् और उनका भगवान् एक नहीं है। फिर से दूसरी दृष्टि से—तुम्हारा भगवान् और मेरा भगवान् एक ही है। कोई भेद नहीं है। भगवत्-पथ में चलो। नहीं चलने से भगवत्-प्राप्ति नहीं होगी। लक्ष्य क्या है ? जिसको भगवत्-प्राप्ति होती है उसके सामने भगवान् का निछन्द रूप से प्रकाश होता है। भगवत्-प्राप्ति होने के बाद एक ऐसी अवस्था आती है कि जिसमें अपने इष्टदेव के साथ-साथ प्रत्येक का राम, प्रत्येक का श्री कृष्ण, प्रत्येक की दुर्गा के साथ जब तक ऐक्य की प्राप्ति नहीं होती है तब तक सच्ची भगवत्-प्राप्ति हुई नहीं है ऐसा समझना चाहिये। जैसे तुमको दिल्ली जाना हो तो रेल से जा सकते हो या हवाई जहाज से जा सकते हो—या पैदल चल के भी जा सकते हो—तो दिल्ली किसी उपाय से पहुंच ही जाओगे। यदि प्रत्येक रास्ता ठीक होगा तो अवश्य पहुंच जाओगे। फिर तुम जिस रास्ते से अनुकूल पड़े उस रास्ते से दिल्ली पहुंच जाओगे। वैसे ही सब काम, सब गुण, सब प्रकाश—परम भगवान् का ही है ऐसा समझना चाहिए।

प्र०—तुम अपना अनुभव बताओ।

माँ—अपने-अपने अनुभव की मूर्ति होती है। अनुभव अपने-अपने संस्कारके मुताबिक होता है। जैसे-जैसे तुम्हारा मन साफ होता जावेगा—वैसे-वैसे तुम्हारा अनुभव भी बदलता जायेगा। प्रत्येक साधक को अपना-अपना अलग अनुभव होता है। इसमें अनुभव करनेवाला अलग रहता है। और एक दृष्टि से देखें तो जिसमें अनुभव और अनुभव करनेवाला एक हो जाता है। कौन किसका अनुभव करता है ? एक वही तो है। उसके सिवाय और कुछ है ही नहीं। सिर्फ सर्वत्र एक भगवत्-सत्ता वर्तमान है।

प्र०—प्रश्न का जवाब ठीक-ठीक स्पष्ट हुआ नहीं। तुम अपना अनुभव बताओ।

माँ—इस शरीर की बात जाने दो। जिन लोगोंने अनुभव किया है या सुना है उन लोगों ने कितनी किताबों में लिखा है। जब तक अपने को सच्चा अनुभव न हो तब तक कुछ नहीं है। इस शरीर में साधना के बहुत किस्म के खेल हुए थे। तुम सब लोगों का जितना अनुभव है वह सब इस शरीर में प्रकाशित हो गया था ! कोई अनुभव बाकी नहीं रहा।

डा० पन्नालाल द्वारा माँ की किताबों में छपे हुए अनुभवों की बातें करने से माँ ने कहा—"पुस्तकों में जो छपा हुआ है वह तो बहुत कम है।"

प्र०—शास्त्रों में जो श्री काली मूर्ति का वर्णन आता है क्या सब ठीक है ?

माँ—एक बात में अनन्त बातें आती हैं। श्री काली जी के भी अनन्त रूप होते हैं। यह बिल्कुल सत्य बात है।

प्र०—ढाका में जब आप घोड़ा गाड़ी में बैठकर जा रही थीं तब आपको श्री काली माँ के दर्शन हुआ था—उसके बारे में कुछ बोलिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—बात ऐसी है कि—अभी यह शरीर जिस भाव में बात करता है उस भाव में उस समय शरीर से बातें होती नहीं थीं। यह शरीर जब गाड़ी में बैठकर जा रहा था तब काली माँ के शून्य में दर्शन हो रहे थे। वह मूर्ति प्रायः १८ हाथ ऊपर में थी। वह काली मूर्ति इस शरीर की गोद में आना चाहती थी। उस समय सर्वदा इस शरीर का वैसा भाव रहता था। कभी भोजन करते बैठते समय, भोलानाथ जी के सामने भी शरीर गिर जाता। शाक काटते-काटते भी वैसा भाव आ जाता। शरीर बेबश हो जाता था। कैसा सुन्दर था! कौन किसको बचाता है? अपने वश में बात न थी। कभी शाक काटते-काटते अंगुली भी कट सकती थी।

प्र०—माँ, उस समय आपको कौन बचाता था?

माँ—यह कौन कर रहा है? जैसे कहा जाता है कि शरीर रूप में कौन है? एक दृष्टि से तो शरीर रूप में भी वही भगवान् ही है। उसको वही बचाता है। जो बच जाता है वह भी भगवान् है—जो बचानेवाला है वह भी भगवान् है। हाथ, चाकू, सब्जी। सब भगवान् के ही रूप हैं। यह सब बातें साधारण दृष्टि से कही हैं। उस समय में इस शरीर के लिये अग्नि, कुंआ, पानी है—सब एक रूप ही था। सब लोगों को हर समय यह डर रहता था कि कब इस शरीर का क्या हो जाये। उस अवस्था में ऐसा भी हो सकता था कि इस शरीर ने चलना शुरू किया—और बीच में कुंआ आ गया तो शायद उस कुएं के ऊपर के चल दे। इसलिये कोई-कोई इस शरीर को कमरे में बन्द करके बाहर से ताला लगा देता था। किसी-किसी को ताला बन्द करने के बाद भी विश्वास नहीं आता कि पता नहीं कैसे यह शरीर बाहर निकल जायेगा ऐसा भी कभी हो जाता कि बाहर में ताला बन्द है और यह शरीर बाहर निकल जाता।

भोलानाथ जी के पूर्व पुरुषों से काली पूजा की विधि चली आ रही है। एक बार काली पूजा के सम्बन्ध में बात निकली। भोलानाथ जी ने कहा,—"तुम पूजा करो" बहुत आलोचना करने के बाद काली पूजा करने का तय हुआ। लेकिन उस समय नयी काली मूर्ति बनाने का समय नहीं था। मूर्ति यदि बनानी है तो फिर कौन माप से बनायी जाय? स्वामी अखण्डानन्द जी (श्री गुरु प्रिया दीदी के पिता) के घर में यह शरीर जब भोजन करने बैठा था तब इस शरीर का हाथ अपने आप ऊपर से उठा था। उस समय इस शरीर का हाथ वैसा ऊपर उठाकर—उसका माप लिया। भोलानाथ जी ने उसी माप की मूर्ति बनाने का आदेश किया। बड़े आश्चर्य की बात है कि एक कुम्हार के वहाँ ठीक इसी भाव की एक काली मूर्ति तैयार पड़ी थी। उसी ने किसी के आर्डर से २२ काली मूर्तियाँ बनायी थीं। लेकिन यह काली मूर्ति तो उन्होंने अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से बनाई थी। माप भी बराबर था। मूर्ति का रंग भी ज्यादा काला नहीं था। इस शरीर ने जैसा काली माँ का रंग देखा था ठीक वैसा ही रंग था। इस काली मूर्ति का दर्शन बहुत विशिष्ट था। यह काली मूर्ति सिर्फ दर्शन देकर ही शान्त नहीं रही।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फिर से काली मूर्ति के रूप में सामने आ गई। बहुत सुन्दर रूप से काली माँ की पूजा हो गई। जब मूर्ति विसर्जन का समय आया तब किसी ने कहा—इतना सुन्दर काली मूर्ति जी का विसर्जन करने की इच्छा नहीं हो रही है। इसके बाद बहुत वर्षों तक काली मूर्ति की पूजा हुई थी।

प्र०—मूर्ति उन्होंने बनाई कि तुमने बनाई ?

माँ— वही खुद मूर्ति रूप में बनी ?

प्र० —काली जी का क्या दूसरा भी कोई रंग होता है।

माँ—हाँ, भिन्न-भिन्न रंग की मूर्तियाँ भी होती हैं। यह काली माँ की मूर्ति सिर्फ एक जगह में नहीं रही है। बहुत जगह में उनकी बदली हुई है। दूसरी जगह लेते समय हर समय भय रहता था कि शायद मूर्ति हाथ में से गिर जाने से सर्वनाश हो जावेगा। बहुत वर्षों तक यह मूर्ति इस भाव में रही। इतनी बार उस मूर्ति की अदल-बदल हुई है लेकिन अब तक कुछ हुआ नहीं है। साक्षात् भगवती ही मूर्ति रूप में बनती है और भगवती ही अपनी पूजा करती है।

प्र०—मनुष्य और देवलोक के सिवाय और भी कोई लोक है ?

माँ—अनन्त लोक भी हैं।

प्र०—मनुष्य क्या देवलोक का दर्शन कर सकता है ?

माँ—जो महामानव है वह देख सकता है। मन में सच्ची हूँश हो तो देवलोग का दर्शन हो सकता है। मन की हूँश होने के बाद मन स्थिर रहेगा कि नहीं वह बात छोड़ दो। यह शरीर तो कुछ पढ़ा लिखा नहीं है। उटपटांग बात करता है।

(क्रमशः)

कौन तेरो सगो ?

माया सगी न मन सगो, सगो न यह संसार।
परशुराम या जीव को, सगो सो सिरजन-हार॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग

(पञ्चम खण्ड)

श्री अमूल्य कुमार दत्तगुप्त एम० ए०, बी० एल०

माघ, ४ सोमवार (अंग्रेजी १७।१।४८) आज करीब ११ बजे श्रीयुत कृष्णप्रेमजी श्री श्री माँ के साथ मिलने आये। माँ हाल घर में थीं। कृष्णप्रेमजी के माँ को प्रणाम करने पर माँ भी 'नमो नारायणाय, नमो नारायणाय' कहकर मुस्कराती रहीं। श्री कृष्णप्रेमजी का वैष्णव का वेष है, पर तिलक, गले में कण्ठी, वस्त्र गैरिक है। बड़ा ही आनन्दपूर्ण भाव है। बंगला बहुत साफ बोलते हैं। माँ के आग्रह से उन्होंने एक गीत गाया, बहुत ही तन्मय होकर कीर्तन सुनाया। माँ ने उनको दूसरे दिन आने के लिये कहा और आते समय उनकी शिष्या कृष्णार्पिता को भी साथ ले आने को कहा।

क्या काल नित्य है ?

संन्ध्या को पाठ के उपरान्त कुछ समय तक सत् कथा चलती रही। वैद्यनाथ शास्त्रीजी ने माँ से पूछा—"क्या काल नित्य है ?

माँ—काल शब्द से तुम क्या समझते हो ? प्रातःकाल, सायंकाल, शीतकाल, ग्रीष्मकाल—ये सब काल हैं, या दूसरे कुछ हैं ?

शास्त्री—प्रातःकाल, सायंकाल आदि खण्डकाल जिसे आधार मानकर टिके हैं मैं उसी को काल बताना चाहता हूँ। यह आकाश जैसा निराकार है और यह नित्य है ?

माँ—जिस वस्तु को आश्रय बनाकर ये सब खण्डकाल टिके हैं उसे कौन सा नाम दोगे ?

शास्त्री—उसे महाकाल कहूँगा।

माँ—यह महाकाल भी किसे आश्रय बनाकर टिका है ? कालातीत स्थिति भी तो है। और तुम जिस दृष्टि से काल को नित्य कहना चाहते हो उस दृष्टि से सभी वस्तुएँ नित्य हैं, क्योंकि सभी ब्रह्म हैं। फल, फूल जो कुछ हम देखते हैं या अनुभव करते हैं सभी तो ब्रह्म हैं; और उस अर्थ में सभी नित्य हैं। इस रीति से काल का कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता। और जो तुम काल को निराकार कह रहे हो, यह शरीर तो उस काल को साकार कहता है और सगुण भी कहता है। इसे काल या महाकाल जो भी कुछ कहोगे, उसका भी अंत है। जिसका अंत नहीं वही नित्य है और वही ब्रह्म है।

इस प्रकार माँ ने बहुत कुछ बतलाया। शास्त्रीजी ने माँ को तर्क से हराने में असमर्थ होकर कहा—"भाग्य से आपको पढ़ना-लिखना न सिखाया गया।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—पढ़ना-लिखना सिखाने पर सिखायी बोली ही बोलती होती, अब तो मैं अपने भाव से बोलती हूँ।

माघ, ४ मंगलवार (अंग्रेजी १८।१।४७) बाजार का काम और स्नान आदि समाप्त कर आश्रम पहुँचने में ११½ बज गये। आश्रम पहुँच कर मैंने देखा कि श्रीकृष्णप्रेमजी, उनकी गुरुपुत्री और शिष्या कृष्णार्पिता के साथ माँ से बिदा लेकर चले जा रहे हैं। आज उन सबके आने की बात रही।

अद्वैतवाद और भक्तितत्त्व

श्रीकृष्णप्रेमजी के बिदा ले जाने के बाद देवशंकरजी ने माँ से कहा—"पहले जिस अहैतुकी कृपा की बात हो रही थी उस प्रकार एक शब्द श्रीमद्भागवत में है। वहाँ भक्ति को नाना भागों में विभाजित कर एक प्रकार की भक्ति को निर्गुण भक्ति कहा गया है। अन्यान्य भक्तियों में कार्यकारण सम्बन्ध है, लेकिन इस निर्गुण भक्ति में कार्य-कारण-सम्बन्ध नहीं है। यह आत्मा की स्वरूप स्थिति है। वैष्णव इस स्थिति को स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि वे लोग अपने को भगवान् से अलग रखना चाहते हैं। वे लोग ब्रह्म से एक सीढ़ी उतर कर प्रभु-दास आदि भाव रखना चाहते हैं।"

माँ—यह जो प्रभु-दास आदि भाव का उल्लेख किया गया, यह जान लेना प्रभु न बनकर दास बनना संभव नहीं है। हनुमानजी ने जो कहा—"परमात्मा रूप में मैं और राम एक हूँ, और एक स्थिति में मैं अंश हूँ और वे पूर्ण हैं, मैं दास हूँ और वे प्रभु हैं" ये सभी एक ही सत्य को प्रकट करते हैं। क्योंकि पूर्ण न बनने पर अंश का ज्ञान नहीं होता, प्रभु को न जानने पर दास होना सम्भव नहीं है। प्रभु को जानने का अर्थ है प्रभु होना। और तुम जो एक सीढ़ी उतर कर प्रभु को दास से पृथक् कर रहे हो यह भी तुम्हारी दृष्टि में सत्य है। (सब हँस उठे)। वास्तविक दृष्टि में अलग-अलग ऊँचा-नीचा कुछ भी नहीं है। सब समान है, क्योंकि सब ही वही हैं—प्रभु वह हैं दास भी वही हैं, भक्ति भी वह हैं, वह ही वह हैं।

भगवान् को प्राप्त करने के उपाय

बम्बई से एक पारसी सज्जन माँ से मिलने आये हैं। सुनने में आया वे अर्थसचिव थे। उन्होंने माँ से पूछा—'माताजी, यह जो आप 'वह' 'वह' कह रही हैं उनको जानने या पाने का क्या उपाय है ?'

माँ—गुरु की शरण ले लेना। गुरु को छोड़कर काम नहीं चलेगा तो वही हाथ पकड़कर ले जायेंगे।

एक भद्र महिला—माताजी, आपके गुरु कौन हैं ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ—(मेरी ओर लक्ष्य कर) देखो, यह पूछती है मेरे गुरु कौन हैं ? मैं कहती हूँ पशु-पक्षियाँ कीड़े-मकोड़े जो कुछ हैं सब मेरे गुरु हैं। गुरु कहने से हम लोग तो भगवान् को समझते हैं। इस संसार में सभी तो भगवान् का ही रूप है। इसलिये जगत् में जो कुछ हैं सभी मेरे गुरु हैं। (अपने को दिखाकर) यह शरीर भी मेरा गुरु है।

एक सज्जन—जो लोग इस प्रकार देखने में अभ्यस्त नहीं हैं वे क्या करेंगे ? यदि दुर्भाग्य से मुझे कोई महापुरुष का साक्षात्कार न हो तो क्या करना होगा ?

माँ—पिताजी, मैं कहती हूँ तुम सत्संग करो। भगवान् की प्राप्ति के लिये जो लोग प्रयत्न कर रहे हैं उनका संग करो। तुम लोग ऐसा कहते हो कि रोग के बीजाणु एक शरीर से दूसरे शरीर में जाकर दूसरे को भी अस्वस्थ बनाते हैं—सत्संग का फल भी वैसा ही है। साधुओं का संग करने से उनके अच्छे बीजाणु तुम्हारे भीतर आकर तुम्हारे विषय-वासनारूपी बीजाणुओं को नष्ट कर देंगे। वास्तव दृष्टि से हम सभी रोगी हैं। लोग भी कहते हैं जहाँ राम नाम वहाँ आराम है, जहाँ नहीं राम, वहाँ है व्याराम या बीमारी। सर्वदा सत्संग सद् आलोचन लेकर रहना है ऐसा करने पर उनके पाने का मार्ग मिल जायगा।

सज्जन—मन जब एक संकल्प से दूसरे संकल्प में जाता है तब एक संकल्प का अवसान होता है और दूसरे संकल्प उठने के पूर्व क्षण एक व्यवधान आ जाता है—वही महाशून्य की स्थिति है और वही ब्रह्म हैं, क्या इस प्रकार भावना कर सकता हूँ ?

माँ—भावना से महाशून्य की स्थिति पायी नहीं जा सकती। तुम जिसे व्यवधान कह रहे हो वहाँ भी मन है। (एक महिला की ओर लक्ष्य करके) कल उसे इस प्रकार की बात ही मैं बतला रही थी। ग्रन्थि बाँधना और ग्रन्थि खोलना इन दोनों कामों में ही मन को लगाया जा सकता है। विषय की भावना से मन केवल ग्रन्थियाँ बनाता रहता है। इसके विपरीत ईश्वर के चिन्तन में मन को लगाने से वह ग्रन्थि खोलने का काम करता है। नाना दिशाओं में चलना ही मन का स्वभाव है। फिर इन नाना के बीच में भी एक है। जैसे एक वृक्ष है—इस वृक्ष की बहुत सी शाखाएँ होने पर भी उसका मूल एक है और वृक्ष के सब टहनियों के साथ उस मूल का योग है। यह भी अद्‌भुत बात है कि पेड़ के जिस किसी जगह पर लक्ष्य रखकर देखो वही तुम्हें जड़ तक पहुंचा देगा। उसी प्रकार जो भी कुछ लेकर मन को एक लक्ष्य करोगे तो देख पाओगे उसी जगह मन का लोप होकर उनका प्रकाश हो गया है। वे तो स्वप्रकाश रूप में सर्वत्र विराजमान हैं। इसलिये उनको पाने का अर्थ है आवरण को हटाना। अगर किसी मिट्टी के बर्तन से दीप को ढक रखा जाय तो दीप के आलोक का प्रकाश नहीं रहता, लेकिन ज्योंही उस बर्तन को तोड़ देते हो तुरंत ही दीप का प्रकाश हो जाता है। उसी प्रकार ब्रह्म कहो, भगवान् कहो वे सब जगह स्वप्रकाश रूप में वर्तमान हैं, ज्योंही आवरण हट जाता है त्योंही उनका प्रकाश

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होता है। इसलिये मन को आवरण हटाने के काम में लगाना पड़ता है। पत्थर को घिसने से जैसे उसका परिवर्तन धीरे-धीरे होता है उसी प्रकार मनको सर्वदा भगवत्-चिन्तन में लगाये रखने पर मन का भी परिवर्तन होता है।

११ बजते देखकर आलोचना बन्द हो गयी। सब लोग आसन छोड़कर जाने के लिये प्रस्तुत हुए। जब आलोचना चलती रही तब एक महिला (जो सम्भवतः बम्बई से आये हुए सज्जन की साथी रही होंगी और जो श्री कृष्णप्रेमजी की एक भक्त थीं) माँ को एक विशेष प्रश्न करने के लिये बारम्बार माँ की दृष्टि अपनी ओर आर्कषित करने में असफल हो रही थीं, अब जब सभी रवाना हो रहे थे तब अचानक माँ ने उनकी ओर लक्ष्य कर कहा—"माताजी, तुम्हारी एक बात थी न, उसे सुनने का अवसर नहीं हुआ, आओ, अब बोलो।" इस बात से उस महिला ने सन्तुष्ट होकर माँ के पास जाकर कहा—"माताजी, कोई कहता है गीता ही गुरु हैं, कोई राम नाम ही, फिर कोई महापुरुष ही को गुरु कहता है, इन सब में किसे गुरु मानूं?"

माँ—तुम्हें सहज रूप से बतलाती हूँ, जिनके प्रति तुम्हारी सबसे अधिक श्रद्धा हो, जिन चरणों पर तुम्हारा मस्तक झुक जाता है, तुम उन्हें अपने गुरु मान लो। उनकी बातों का बिना विचारे पालन करना। यदि किसी को गुरु मानकर उनकी बातों पर विचार उठता है, तब समझ लेना गुरु करना हुआ ही नहीं। यह कैसा जानती हो। कन्या का विवाह करती हो, न? जब तक विवाह नहीं होता है तब तक ही वर का चुनना, न चुनना आदि करती हो। जब एक बार विवाह सम्पन्न हो जाता है, तब चुनने न चुनने का कोई प्रश्न नहीं रहता। जब तक यह चुनना चलता रहता है तब तक कहना पड़ता है कि विवाह हुआ है नहीं। ठीक उसी प्रकार जिनको तुम गुरु मानकर ग्रहण करोगी उनकी बातों का निर्विचार पालन करोगी। वे ही तुम्हें हाथ पकड़कर एक जनम में हो या पचासों जनम में हो भगवान् के पास पहुंचा देंगे। इसलिए तुम्हारा कर्तव्य यह है कि, वे जो कुछ कहते हैं फल की ओर लक्ष्य न रहकर उनका पालन करते जाना। इस प्रकार माँ ने कुछ देर तक कहा। उस महिला ने भी सन्तुष्ट होकर माँ को प्रणाम कर विदा ली। हमलोग भी चले आये।

अपने को पाने का अर्थ

सन्ध्या कीर्तन के बाद आज भी कुछ काल तक आलोचना चली। वैद्यनाथ शास्त्री जी ने ही प्रसङ्ग का उत्थापन किया। कुछ दिन पहले उन्होंने माँ से पूछा कि जितने मत हैं उतने ही मार्ग हैं—क्या यह बात सत्य है? आज भी उसी बात को फिर उठाने पर देहरादून कालेज के अध्यापक श्री सत्यभूषण राय ने माँ से उस बात का अर्थ पूछा। माँ ने कहा—'जितने मत उतने पथ हैं' यह जो कहा जाता है उसका अर्थ यह है कि मत रहने से ही पथ भिन्न-भिन्न होते हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुम लोगों के शास्त्रों में भी है ऋषियों के नाना मत हैं और मत के अनुसार भिन्न-भिन्न साधनाओं की भिन्न-भिन्न धाराएँ या पथ हैं। चक्रधारी का विधान भी ऐसा सुन्दर है कि जिन लोगों के घर उन पथों के किनारे पर हैं वे लोग उसी मार्ग पर चलते हुए भगवान् को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं अर्थात् अपने संस्कार के अनुसार लोग ऋषियों के द्वारा निर्दिष्ट पथों में से किसी एक को चुन लेते हैं। ऋषि लोग प्रायः सभी मार्गों का उपदेश शास्त्रों में कह गये हैं।

शास्त्री—सभी मत अगर पथ हों तो शास्त्र-विरुद्ध मत को भी एक पथ होना चाहिए।

माँ—विपथ को क्यों पथ कहा जायगा? जिसे तुम विपथ कहते हो वह भी शास्त्र के निर्देश से ही, इसलिये वह भी शास्त्र के बाहर कैसे? हाँ, अगर कोई कहे, मैं किसी शास्त्र की बात नहीं मानूंगा, अपना पथ मैं स्वयं ही ठीक चुन कर चलूंगा, तो मैं कहूँगी उसके लिये वही एक पथ है। सभी मार्ग उनको पाने के मार्ग हैं। फिर उन्हें पाने का पथ केवल एक ही है। जैसे कहा जाता है—सब रूप उन्हीं के रूप हैं, सब नाम उन्हीं के नाम हैं—फिर भी वे एक अद्वितीय हैं।

शास्त्री—आज सुबह जो उदाहरण आपने दिया था वही सबसे उत्तम प्रतीत होता है। सुबह आपने बताया था वृक्ष के असंख्य शाखा-प्रशाखाओं के होने पर भी उनके प्रत्येक का योग मूल से है। उनमें से किसी एक को पकड़ कर मूल में जाया जा सकता है; उसी प्रकार भगवान् को प्राप्त करने के लिये जितने भी पथ क्यों न हों उनके किसी एक से चलने पर भी भगवान् की प्राप्ति हो सकती है।

माँ—हाँ, तब मैंने बताया था कि पेड़ के ऊपर के भाग से, शाखा हो या पत्ती हो, सबसे मूल का योग है। उपमा सब तरह से एक प्रकार नहीं होती है तो भी उसी से अनुमान कर लेना चाहिए। उस समय कहा गया था पेड़ के अग्रभाग को लेकर एक लक्ष्य होने पर ही पेड़ का मूल या बीज पाया जा सकता है। वृक्ष में जैसे बीज है वैसे बीज में भी वृक्ष वर्तमान है। अगर बीज में वृक्ष न रहता तो वृक्ष का जन्म हुआ कैसे? इसलिये समझना चाहिए बीज ही बढ़कर वृक्ष बनता है। फिर वृक्ष जब बढ़ जाता है तब उसके अग्रभाग में फल लगते हैं और उन फलों में बीज रहते हैं। फिर पेड़ की डाल को काटकर अगर उसे गाड़ दिया जाता है तो उससे भी पेड़ पैदा होता है, फल आ जाते हैं, बीज भी बनते हैं। इसलिये वृक्ष के किसी भी भाग को लेकर एक लक्ष्य होने पर—उसी जगह वृक्ष समग्र रूप से पाया जाता है। हर समय हर जगह सब कुछ है न? इसलिये जो भी कुछ लेकर एक लक्ष्य होंगे तुरन्त उसी जगह उसका प्रकाश होगा।

बहुधा कहा जाता है कि तुम अपने को प्राप्त करो। अपने को प्राप्त करने का अर्थ क्या है? अपने को प्राप्त करने का वास्तविक अर्थ है अपने को समग्र रूप से प्राप्त करना। अपने को प्राप्त करते समय यदि कुछ छूट जाता है तो फिर अपने को पाना नहीं हुआ। जब अपने को समग्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूप से प्राप्त किया जाता है केवल उसी समय कहा जा सकता है कि जो सब का पथ है वही मेरा भी पथ है या मेरा पथ ही सब का पथ है।

लोग कृष्ण की उपासना करते हैं। यहाँ जान लेना चाहिये कि एक कृष्ण की उपासना होने पर भी प्रत्येक का कृष्ण भी अलग-अलग हैं। इस दृष्टि से कृष्ण अनन्त हैं, फिर कृष्ण एक ही हैं। अर्थात् वे एक होकर भी लोगों के संस्कार के अनुसार अपने को अनन्त रूपों में प्रकाशित करते हैं। देखते हो न मनुष्य एक प्रकार रक्तमांस का शरीर धारण करते हुए प्रत्येक मनुष्य अलग-अलग हैं; प्रत्येक की आकृति भिन्न-भिन्न है। भाव भिन्न हैं, भंगी भिन्न है, उसी प्रकार कृष्ण एक होकर भी प्रत्येक के लिये अलग-अलग हैं, तुमने जिस कृष्ण को पाया, दूसरा कोई कृष्ण का उपासक बनकर भी उस कृष्ण को पा नहीं सकता। यह एक दिशा की बात है। फिर तुम अपने कृष्ण को प्राप्त करने पर भी दूसरों ने जिन-जिन भावों से अपने अन्दर कृष्ण को पाया है, तुम भी अपने भीतर उसे पा सकते हो। तुम्हारे कृष्ण तुम्हारे अन्दर अलग रह ही गये और साथ ही साथ अन्यान्य लोगों ने जिन अनन्त भावों में कृष्ण को पाया, वे सब भाव तुम्हारे अन्दर रह गये। यद्यपि कृष्ण को लक्ष्य कर इन बातों की चर्चा हुई लेकिन यह शिव, काली आदि सब में लगता है। फिर कृष्ण की धारा की साधना से केवल कृष्ण को ही समग्र रूप से पाया जाता है ऐसा नहीं। शिवजी, कालीजी आदि को भी इस प्रकार समग्र रूप से पाया जा सकता है। इस प्रकार प्राप्ति जब होती है तो उसी ससय कहा जाता है तुमने अपने को पाया। इस प्राप्ति में अगर कुछ छूट जाता है, अगर किसी विषय में अन्धकार रह जाता है तब बोलना पड़ेगा कि तुमने अपने को नहीं पाया। (वैद्यनाथ शास्त्री जी को) एक समय तुम बच्चे थे। अब तुम्हारी वह शिशु की मूर्ति कहाँ गयी ?

शास्त्री—वह है, फिर मर भी गयी ?

माँ—(हँस कर) सच है। एक अर्थ में वह मर गयी है; क्योंकि वह है नहीं। फिर कहा जा सकता है, वह शिशु ही अब वृद्ध मूर्ति में है। इस अर्थ में शिशु जीवित है। लेकिन यह जानना चाहिए तुम्हारी शिशु-अवस्था की भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ या युवावस्था की विभिन्न मूर्तियाँ—इनमें किसी का भी नाश नहीं हुआ। सब वर्तमान हैं। केवल तुम लोग ही नहीं संसार में जो भी जीवधारी हैं सब के सम्बन्ध में इस प्रकार जानना चाहिए। संसार में जो कुछ थे, हैं और होंगे सब को जब भलीभाँति तुम्हारे भीतर देख पाओगे, तभी तुम्हारा अपने को पाना होगा। उस दिन बात हो रही थी न, कि एक हजार वर्ष पहले ऐसा था। उस प्रसङ्ग में मैंने कहा था एक हजार वर्ष पहले इस प्रकार था, यह कौन कह रहा है ? मैं कहती हूँ एक हजार वर्ष पहले जो कुछ थे वे अब भी वर्तमान हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शास्त्री—क्यों, एक हजार वर्ष पहले लिखित किसी पुस्तक को पढ़कर भी हमलोग ऐसा कह सकते हैं।

माँ—हाँ, ऐसा कह सकते हो। लेकिन मैं कहती हूँ कि एक हजार वर्ष पहले जिन्होंने उस पुस्तक को लिखा था, उन्होंने जिस भाव में लिखा था, ठीक उसी भाव में वह अब भी है।

सत्यबाबू—यह तो बड़ी भीषण बात है। क्या तब यह मान लेंगे कि कुरुक्षेत्र का युद्ध अब भी चल रहा है। नेपोलियन बोनापार्ट अब भी हैं?

माँ हाँ, सचमुच, सब हैं, अविकल हैं। इस समय खुकुनी दीदी माँ को बुलाने आयीं। इसलिये बातें बन्द हो गयीं।

क्रमशः

क्या आप भी पछतायेंगे ?

बालपन में न बालन संग अघाय स्वतन्त्र ह्वै खेलन पायो।
पाय जुवा धन धाम सँवारि न नारिन हूँ के भयो मन भायो॥
आय जरा बसि अवध पुरी में न रामसियापद में मन लायो।
हा इत को न भयो उत को 'रघुनाथ' वृथा नर जन्म गंवायो॥

× × × ×

मान बे मान मन मूढ़ मत संसार यह एक दिन जायगा रे।
तात औ मात सुत भ्रात हित भामिनी भौन भण्डार रहि जायगा रे॥
आजु ही कालिह में आय के एक दिन अचानक से काल ले खायगा रे।
'रघुनाथ' की कहा नहिं मानता मूढ़ तौ आदिहु अन्त पछितायेगा रे॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन्नासवाँ संयम-सप्ताह महाव्रत

[श्री चरणकमलाश्रिता]

२६ अक्टूबर से ४ दिसम्बर तक, १९६८—

श्री रामतीर्थ आश्रम के महन्त जी ने जो ४ नवम्बर को प्रवचन किया वह यहाँ देती हूँ :—

जैसे बाग में वृक्ष पर सुन्दर फल लगे होते हैं तो माली टीन आदि बजा कर, पक्षी आदि से उनकी रक्षा करता है ; वैसे ही सत्य तथा अन्य सद्‌गुण रूपी फल बहुत लगे हैं उनको काम, क्रोध, लोभ, मोहरूपी पक्षी हड़पने की कोशिश करते हैं व लूट लेते हैं। उपनिषद् उसे कहते हैं जो भगवान् के श्री चरणों में पहुंचा दे। वेद भगवान् की श्वास से निकले हैं। इसी तरह गीता यदि भली प्रकार से पढ़ी, सुनी व समझी जाय तो अन्य किसी ग्रन्थ के पढ़ने की आवश्यकता नहीं। जो गीता मरनेवाले की सद्‌गति अथवा कल्याण कर सकती है तो जीवित व्यक्ति का तो कहना ही क्या ?

प्रत्येक मंगल को देनेवाली दुर्गा सप्तशती है।

जैसे नदी का प्रवाह बह रहा था तो इतना लाभ नहीं कर रहा था पर जब उसमें से बहुत सी नहरें निकाली गईं तो सारा देश जल से प्लावित हो उपजाऊ बन गया। बाँध लगा कर नहरें निकलीं। हजारों दुर्गुणों के प्रवाह की जो प्रवृत्ति थी उसमें संयम-सप्ताह ने बाँध लगा दिया तो वह प्रवाह ईश्वर की ओर बढ़ गया। गुलाब बाग में खिलता है पर हवा के साथ उसकी खुशबू दूर-दूर तक फैल जाती है। वैसे ही इस संयम-सप्ताह के परमाणु सारे देश में फैल गए। देवताओं के संयोग बिना इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं, जैसे सूर्य्य से आँख को प्रकाश मिलता है। संयम-सप्ताह में जो आहार का भी संयम है उससे इन्द्रियाँ शुद्ध होंगी। आहार की पवित्रता से ही मन की पवित्रता होती है और मन पवित्र होकर भगवान् में लग जाता है यह जीवन में सहन शक्ति भी पैदा करता है।

जैसे Car में बैटरी होती है ऐसे ही जीवनरूपी Car में अन्तःकरण रूप बैटरी को Charge करने के लिए यह सावन-सप्ताह है। बैटरी चार्ज होने के बाद गाड़ी संचालक को चिन्ता नहीं रहती कि रात में न चलाए। सप्ताह के बाद जब घर पहुँच कर उलझनें व समस्याएँ सामने आयेंगी तो यही बैटरी Horn देगी कि अहम् से सावधान रहो। अभिमान को दूर करती है और रात के अंधकार में प्रकाश देती है। विवेक का दीपक जलाती है। आई विपत्तियों से जब मनुष्य निराश हो जाता है कि जीवन की यात्रा कैसे पूरी होगी उस समय यह बैटरी विवेक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का दीपक जला देती है। मानव तू क्यों विपत्तियों से घबराता है। भगवान् राम को देखो कितनी विपत्तियाँ आईं व कैसे सामना किया।

पर आप घर जा कर यदि Car खड़ी कर दें तो जो बैटरी Charge हुई है वह Discharge हो जायगी। इसलिए रोज थोड़ा-थोड़ा 'चार्ज' करते रहना पड़ेगा। तुमको यहाँ जो सबक मिला उसको घर जा कर गाय की तरह जुगाली करनी है।

जो मकान बनाने में ईंट ढो रहा था; मिट्टी उठा रहा था, रोगन लगा रहा था, उन सबका एक ही लक्ष्य था कि मकान बन जाय। ऐसे ही यहाँ जितना भी प्रोग्राम दिन भर हुआ उन सबका एक ही अभिप्राय था कि शान्ति मिल जाय।

जब तक अन्दर अन्धकार रहता है व बाहर रोशनी रहती है तो बाहर की चीजें दिखती हैं और जब अन्दर रोशनी कर दो तो बाहर की चीजें नहीं दिखतीं। ऐसे ही मनुष्य भी बहिर्मुखा से अन्तरमुखी हो जाता है।

आपने सुख एवं आनन्द पाने के लिए क्या-क्या नहीं किया। शिक्षा प्राप्त की, नौकरी की, रुपया कमाया पर आनन्द नहीं मिला। एक प्यासा नदी में पानी पीने गया। प्यास बुझाने के बाद नदी में एक हीरा दिखाई दिया तो कपड़े उतार कर कूदा, जब बजरी बाहर लाया तो उसमें वह हीरा नहीं था। फिर गोता लगाया व कंकड़ बटोर कर बाहर लाया पर वह हीरा नहीं निकला। एक महात्मा उधर से आए उन्होंने पूछा क्यों परेशान व थके हुए नजर आते हो? उसने कहा मुझे वह हीरा चाहिए। महात्मा ने कहा कपड़े पहन लो और उस वृक्ष पर चढ़ जाओ—उस टहनी पर घोंसला देखो—उसमें एक हार था जिसमें हीरा लाल लगा था, (उसी का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ रहा था) वह प्रसन्न हो गया तथा महात्मा को नमस्कार किया।

एक का धन है जो सिनेमा हाल खोल कर चरित्र विनाश कर रहा है और एक का धन यह है जो इस संयम-सप्ताह में लग रहा है।

सिनेमा का परदा सफेद है और जब Picture शुरू होती है तो उसमें बड़ी सी नदी बहती दिखाई देती है पर अगर तुम प्यासे हो तो परदे वाली नदी से तुम्हारी प्यास नहीं बुझ सकती। परदे पर आग भी दिखाई देती है पर आप जान गए कि मिथ्या आग है।

महात्मा लोग जीव से ईश्वर की अनुभूति करा देते हैं। जो हीरा पानी में दिखाई दे रहा था वह ऊपर के हीरे का प्रतिबिम्ब मात्र था। ऐसे ही दुनिया रूपी नदी में हर किस्म का गोता लगाया और जब हम गोता लगाते-लगाते थक जाते हैं—निराश हो जाते हैं—तब महात्मा कृपा करके उनको वास्तविक हीरा दिखा देते हैं।

यह तुम्हारी महान् तपस्या हो रही है। तुम्हारे जीवन का—समय का—सदुपयोग हो रहा है। शरीर रूपी वृक्ष पर हृदय रूपी घोंसले में आत्मानन्द रूपी हीरा मिल गया। रंग लाती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है हिना पत्थर पै पिस जाने के बाद। तुम्हारे जीवन में बैटरी चार्ज हो चुकी है। अब इसकी देख-भाल करना तुम्हारा काम है। नल पर लड़के लड़कियाँ लड़ रहे हैं। एक महात्मा ने कहा क्यों लड़ते हो। उन्होंने कहा घड़ा भर जाय तब तो दूसरे को भरने दें। महात्मा ने टार्च खोली तो देखा कि घड़े का मुँह उल्टा (नीचे को) था व पानी ऊपर से बहा जा रहा था। सत्संग मंगल मूल है व घड़ा ठीक करके रखना आपका काम है।

---

४ नवम्बर को वृन्दावन के, श्री राधावल्लभ जी के, श्री जीवन गोस्वामी जी महाराज का भी प्रवचन हुआ था उसका कुछ अंश यहाँ देती हूँ :—

उस रस की प्राप्ति के लिये हमें क्या करना है? उसके लिये साधन क्रिया की अपेक्षा हम लोग प्रेम का बल व भरोसा ज्यादह मानते हैं।

संयम की बात इसलिये आवश्यक है, (हम किसी से पूछते कुछ भजन करते हो तो कहते हैं गृहस्थाश्रम के कामों में, व दुनिया के झगड़ों में समय नहीं मिलता।) संयम सप्ताह माने सात दिन का संयम। संयम सप्ताह बैटरी 'चार्ज' करने की तरह तो है पर जब बैटरी खतम हो जाती है तो फिर चार्ज करना पड़ता है। जितना भी समय निकाला जा सके इसमें लगाना चाहिए। सब महात्मा अनादि काल से कहते आ रहे हैं पर फिर भी संसार नहीं छूटता। जैसे दुःख को दुःख कहने से हम नहीं छूटते ऐसे ही संसार को बुरा कहने से काम नहीं चलता। संसार भगवान् का एक प्रेम-यज्ञ है। भगवान् ने हमको संसार दिया। हम संसार को तो देखने लगे और देनेवाले को भूल गये।

सत्य की प्राप्ति के लिए दो मार्ग हैं। एक साधन का, एक प्रेम का। हम संसार को बुरा तों कहते हैं पर संसार में कभी प्रेम करना भी सीखा? हम प्रेम करते होवे तो इतना बुरा न होता। अगर आपके हृदय में प्रेम का बीज पड़ गया है तो साधना की फिर आवश्यकता नहीं। विषय रस अपने आप चला जायगा। प्रेम हो कैसे? प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है। अपने को ढीला छोड़ दो। उसमें प्रेमास्पद से मिलने की जो व्याकुलता है वह भी आनन्द का कारण बन जाती है। जिसको स्वरूप का ज्ञान हो जाता है वही तो प्रेम करता है। आदि।

वृन्दावन के श्री चक्रपाणि जी महाराज ने अपने प्रवचन में कहा कि माँ की बड़ी कृपा है जो आप सबके भीतर एक सात्त्विक लहर बैठ गई। माता-पिता से भी अधिक वह हमारा हितैषी है जो हमको भगवान् की ओर ले जाता है। अगर हमारी बुद्धि संसार की ओर जाती है तो समझ लो विनाश की ओर जा रहे हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने भी बहुत संयम के साथ गउएँ चराईं। यशोदा जी ने कृष्ण जी से कहा कि जूता पहिन कर व छाता लगाकर गउएँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चराने जाया करो तो कृष्ण जी ने कहा और सब तो बिना छाते व जूते के जाते हैं मैं कैसे जूते पहन के व छाता लगा के जाऊँ ? उन्होंने गो सेवा का महत्त्व भी समझाया। और कहा गाय का मल मूत्र भी परम पवित्र एवं पवित्र करने वाला है।

वृन्दावन के श्री नित्यानन्द गोस्वामी जी ने भी कुछ शिक्षाप्रद पौराणिक कथाएँ, (श्री हरिश्चन्द्र जी, प्रह्लाद जी, महासती मदालसा, देवी के असुरों के साथ युद्ध आदि की) सुनाईं।

कलकत्ते के श्री त्रिपुरारी चक्रवर्तीजी ने ७ दिन महाभारत में धर्म (Concept of Dharm in Mahabharat) पर अंग्रेजी भाषा में बहुत ही महत्त्वपूर्ण, सारगर्भित एवं रोचक प्रवचन किये। उनके प्रवचनों से कुछ विदेशी भाई (जो इस महाव्रत में व्रती हुए थे) आदि भी लाभ उठा सके। उन्होंने माता गांधारी के चरित्र तथा धर्म भाव पर विशेष प्रकाश डाला। उस विषय पर तथा अन्य घटनाओं का कहीं-कहीं से कुछ अंश यहाँ लिखती हूँ :—

श्री गांधारी, गांधार देश की राजकुमारी, अति सुन्दरी, सर्वगुण सम्पन्ना एवं धर्मपरायणा थीं। अंधे राजकुमार धृतराष्ट्र से उनका विवाह हुआ। प्रथम दिन से ही उन्होंने आँखों पर पट्टी बाँध ली। सोचा पति नहीं देख पाते तो मैं कैसे देखूं। १०० पुत्र (कौरव) हुए पर भगवान् की लीला। सब उच्छृङ्खल। जुआ खेल-खेल के पांडवों का सब राज्य ले लिया। पाण्डव द्रौपदी को भी हार गए तब दुःशासन द्रौपदी के बाल पकड़ कर राजसभा में खींच लाया तथा उनको निर्वस्त्रा करना चाहा। द्रौपदी ने सब से कहा क्या यही धर्म, यही न्याय है। सब चुप रहे किसी का साहस कुछ बोलने का नहीं हुआ। उस समय केवल विदुरजी का बोलने का साहस हुआ। उन्होंने कहा, "यह घोर अन्याय है। यदि तुरन्त इसको निवारण नहीं किया गया तो यह अग्नि सारे राज्य को भस्म कर देगी।"

पाण्डव जब वन जाने लगे, (१२ वर्ष का वनवास तथा १ वर्ष का अज्ञातवास) तो विदुर जी से युधिष्ठिर ने कहा, "अभी तो अधर्म का बोल-बाला हो गया पर अन्त में विजय धर्म की ही होगी। हम लोग भिखारी बनकर वन जा रहे हैं।" विदुर जी ने उत्तर दिया, "तुम्हारे पास तो ऐसा धन है जिसको इन्द्र आदि भी नहीं ले सकते—वह है तुम्हारा धर्म्म ! हम जानते हैं तुम फिर हस्तिनापुर आओगे व विजयी होकर रहोगे।"

कौरवों में विदुर जी को बात कोई नहीं मानता था तो उन्होंने मौन रहना ही उचित समझा। किसी ने एक बार उनसे पूछा मूर्ख किसे कहना चाहिये। उन्होंने कहा जो बिना माँगे सलाह (Advice) देता है। विदुरजी ने कौरवों को समझाने की कोशिश की थी पर उन्होंने सुना नहीं। फल हुआ महाभारत। फिर भी विदुरजी ने अन्त तक धृतराष्ट्र का साथ दिया तथा उनके शोक निवारण की चेष्टा करते रहे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माता गांधारी ने जब द्रौपदी के वस्त्रहरण की बात सुनी तो उन्होंने बहुत दुःख किया। उन्होंने धृतराष्ट्र से जाकर कहा कि बड़ा अधर्म तथा अन्याय (द्रौपदी के साथ) हुआ। परन्तु धृतराष्ट्र को इस घटना से विशेष दुःख नहीं हुआ था।

जब महाभारत आरम्भ हुई तो दुर्योधन को आशीर्वाद नहीं दिया, केवल यही कहा कि "जिधर धर्म्म है उधर ही विजय होगी।" महायुद्ध के अट्ठारहवें दिन आशीर्वाद के लिए गए तथा प्रत्येक बार गांधारी ने यही उत्तर दिया।

श्रीकृष्णजी के शान्ति दूत बन कर दुर्योधन के पास जाने की कथा भी सुनाई। कृष्णजी ने बहुत समझाने की चेष्टा की पर कौरवों ने नहीं माना और सुई की नोक के बराबर भी जमीन पाण्डवों को देने को राजी नहीं हुए। अभिप्राय यह है कि कृष्णजी ने शान्ति के लिये भरसक प्रयत्न करना ही धर्म समझा। (यह तो सबको विदित है कि जब अर्जुन रणक्षेत्र में मोहवश युद्ध से विमुख हो रहे तब भगवान् कृष्ण ने गीता का उपदेश देकर उनको युद्ध पर आरूढ़ किया।)

जब धृतराष्ट्र तथा गांधारी वाणप्रस्थ धारण कर बन जाने को तैयार हुए, तब कुन्ती, उनकी सेवा के लिये, राजमहल का सुख छोड़कर, उनके साथ गईं।

सप्ताह के अन्तिम दिन रात पौने १२ बजे तक सुन्दर भजन आदि होते रहे। फिर पण्डाल में माँ के सांनिध्य में महानिशा ध्यान पौने बारह बजे से सवा बारह बजे तक हुआ। इसके बाद योगी भाई ने श्री व श्रीमती खेतान को यह महोत्सव सुचारुरूप से चलाने का श्रेय तथा धन्यवाद दिया। दूसरे दिन सुबह इस महायज्ञ की, (हवन के बाद) पूर्णाहुति हुई तथा भस्म के टीके सब व्रतियों के माथे में लगे और उसके साथ-साथ ही यह महाव्रत समाप्त हुआ।

——

तुम ही तो हो!

आप ईश्वर का नाम लेने से बच सकते हैं, आप इस शब्द को टाल सकते हैं, लेकिन आप उसके अस्तित्व को स्वीकार करने से बच नहीं सकते। यदि वह नहीं हैं, तो कुछ भी नहीं है।

—साधु टॉल्स्टॉय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लीलानुध्यान

[महामण्डलेश्वर श्री १० स्वामी महेश्वरानन्दजी, संन्यास आश्रम, बम्बई]

संसार के समस्त व्यवहार आरोपित ही होते हैं—वास्तविक नहीं, इस विषय को सिद्ध करने के लिए—भगवान् श्रीकृष्ण का बाल्य-कालीन एक लीलाचरित्र किसी कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

'कस्त्वं ?' 'कृष्णमवेहि मां' 'किमिहते' 'मन्मन्दिराशंकया',
'युक्तं' 'तन्नवनीतभाजनपुटे न्यस्तः किमर्थं करः' ?।
'कर्तुं तत्र पिपीलिकापनयनं' सुप्ताः किमुद्बोधिताः,
बालाः 'वत्सगतिं विवेक्तुमिति' संजल्पन् हरिः पातु वः ॥

प्रातःकाल का सुहावना समय था, पूर्वदिशा में ऊषा देवी की लाली फैल चुकी थी, मन्द-मन्द सुशीतल-यमुना जलस्पर्शी पवन वह रहा था पक्षीगण मधुर स्वर से अपना-अपना संगीत गाते हुए एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर आ जा रहे थे। उस समय कोई एक श्रीकृष्ण प्रेमी मतवाली गोपी कार्यवशात् अपने गृह को शून्य छोड़कर दूसरे गृह में चली गई थी। वह गोपिका श्रीकृष्ण के मुनिमनहारी दिव्य सौन्दर्य के दर्शन की निरन्तर अभिलाषा करती थी। अन्तर्यामी प्रभु श्री कृष्ण, उसको दर्शन देने के लिए क्या मक्खन चुराने के लिए उस गोपी के गृह में घुस गये। झटपट मक्खन लेने के लिए मटकी में हाथ डाल ही रहे थे कि—इतने में वह गोपी वहाँ आ पहुँची, भगवान् श्री कृष्ण को जानती हुई भी वह प्रेमपूर्ण उपालम्भ देने के लिए पूछती है कि—तू कौन है? श्री कृष्ण बोले—अरी गोपिके ! 'मैं कृष्ण हूँ' ऐसा तू निश्चय जान' क्या तू मुझे भूल गई है ?"

गोपिका बोली—अच्छाजी ! आप कृष्ण हो, यह तो ठीक है, परन्तु आपका मेरे घर में घुसने का क्या प्रयोजन ?

चतुरशिरोमणि भगवान् श्री कृष्ण, अपनी अलौकिक प्रतिभा से तत्काल उत्तर देते हैं कि—वाहजी वाह ! क्या यह तुम्हारा घर है ? मैं तो समझता था कि यह मेरा घर है, समझकर मैं इसमें घुसा हूँ। सम्भव है कि मुझे पराये गृह में अपने गृह की भ्रान्ति हो गयी हो। भगवान् अपनी बात का समर्थन करने के लिए उस गोपिका को संसार के स्वरूप का उपदेश देने लगे—अरी देवि ! यह संसार भ्रान्तिबहुल है। संसार के सभी ज्ञान भ्रान्त हैं, एक भी ज्ञान यथार्थ नहीं है। जहाँ देखो वहाँ भ्रान्ति ही भ्रान्ति छा रही है, अन्य में अन्य बुद्धि का नाम ही तो भ्रान्ति है। भ्रान्ति ही संसार का जड़ है। यदि भ्रान्ति न होती तो संसार का व्यवहार ही सर्वथा समाप्त हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाता। संसार का भ्रान्तिमय ही जीवन है। अतः मेरे भ्रान्ति हो जाने के कौनसी आश्चर्य की बात है।

लीलाधारी श्री कृष्ण के ऐसे अपूर्व लीलामय वचनों को सुनकर गोपी सहम गई। पुनः शान्त-चित्त से कहने लगी कि—हे प्यारे श्री कृष्ण ! तुम्हारा कहना युक्ति संगत हो सकता है, किन्तु कृपानिधानजी ! यह तो बतलाइये कि आपने मक्खन की इस मटकी में हाथ क्यों डाला है ? क्या इसमें भी कुछ भ्रान्ति हो गयी थी ?

बड़ी ही फुरती के साथ श्रीकृष्ण बोले—हाँ हाँ ! अवश्य ही भ्रान्ति हो गई थी। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि इस मटकी में चीटियाँ घुस गई हैं—अतः इनको निकालने के लिए हमने अपना हाथ डाला था।

गोपिका श्री कृष्ण के चतुरतापूर्ण इन वचनों को सुनकर प्रेम से विह्वल होकर फिर बोली—हे हृदय वल्लभ श्री कृष्ण ! तुम्हारी ये बातें बहुत मजेदार हैं। परन्तु मजे में सोये हुये हमारे इन बच्चों को तुमने क्यों जगाया ? क्या इसमें भी भ्रान्ति का पाद प्रसार हो गया था ?

श्री कृष्ण बोले—गोपिके ! तुम्हारा कहना ठीक है। मैं आज भ्रान्ति के चक्कर में ही पड़ गया हूँ। तुम्हारे इन बच्चों के जगाने में भी मुझे भ्रान्ति हो गई थी। मुझे ऐसा लगा कि इन गायों के बछड़े छूटकर कहीं भाग गये हैं। इसलिए बछड़ों को ढूंढ़ने के लिये मैंने इस बच्चों को जगाया था। परन्तु अब देख रहा हूँ कि—बछड़े यहीं बँधे हैं। भागे नहीं। इस प्रकार उस गोपिका के प्रति विनोदपूर्ण रहस्यमय वचनों को बोलने वाले श्रीहरि आप सब की रक्षा करें।

श्री कृष्ण का आध्यात्मिक स्वरूप जीवात्मा है। वेदान्त सिद्धान्त है कि—'ब्रह्मैव संसरति, ब्रह्मैव मुच्यते'—ब्रह्म-परमात्मा ही अविद्या द्वारा संसार का अनुभव करता है। कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि का नाम ही संसार है। वही ब्रह्मविद्या द्वारा संसार से मुक्त होता है। इसलिए हमारे सभी शास्त्र कहते हैं कि—

शरीरं ब्रह्म प्राविशत्,(अर्थव० ११–८–३०) ब्रह्म ही जीवात्मा बनकर प्रविष्ट हुआ है।

'अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि।' (छा० उ० ६–३–२) इसी जीवात्मा रूप से शरीर में प्रविष्ट होकर मैं (परमात्मा) नाम रूपों को अभिव्यक्त करूँ ?

ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति (श्रीमद्भा० ३।२६।३४)
ईश्वर भगवान् ही जीवरूप अंश से इस शरीर में प्रविष्ट हुआ है।

बुद्धि गोपिका है। गो यानी इन्द्रियाँ—उनकी जो रक्षा करे (पा—रक्षणे धातु) वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोपी कही जाती है। वह श्री कृष्ण को जानती हुई भी नहीं जानती है—इसलिए प्रश्न करती है—तू कौन है ? सर्वथा ज्ञात अर्थ विषयक प्रश्न नहीं होता, एवं सर्वथा अज्ञात अर्थ विषयक भी। जिसको हम सामान्य रूप से जानते हैं, एवं विशेष रूप से नहीं जानते हैं—तभी तद्विषयक प्रश्न किया जाता है। अन्तरात्मा रूप श्री कृष्ण का 'अहं अहं' (मैं....मैं) रूप से सामान्य ज्ञान सभी को है। परन्तु नित्य-शुद्ध, बुद्ध-मुक्तपूर्णद्वयात्मक रूप से विशेष ज्ञान का अभाव है। इसलिए तद्विषयक प्रश्न हो सकता है।

उस आध्यात्मिक श्री कृष्ण को पराये गृह में स्वगृह की भ्रान्ति हो जाती है। यह शरीर रूपी नव द्वार वाला घर पंचभूतों द्वारा निर्मित होने के कारण पराया है, तथापि उसको वह अपना मान बैठा है।

मक्खन की मटकी हृदय है। इसमें असद्भाव रूपी चीटियाँ घुसी हुई हैं। इसको निकालने के लिए प्रयत्न करना ही उसमें हाथ घुसाना है। ये असद्भाव ही तो संसार है। इसलिए इसका वास्तविक अस्तित्व नहीं माना जाता। अविद्या-भ्रान्ति से ही यह असत् होने पर भी सत्य-सा, अविद्यमान होने पर भी विद्यमान सा प्रतीत होता है। जो पदार्थ भ्रान्ति से प्रतीत होता है—वह मिथ्या है, मिथ्या ही माना जाता है परमार्थ नहीं। जिस प्रकार मन्दान्धकार में रज्जु में सर्प भ्रान्ति से दीखता है—भय एवं कम्प का हेतु भी हो जाता है तथापि वह मिथ्या ही माना जाता है, रज्जु का यथार्थ ज्ञान होने पर उसका बाध हो जाता है। उसी प्रकार संसार भी अविद्या से कल्पित है। इसलिए उसका विद्या द्वारा बाध हो जाता है। अतएव यह मिथ्या ही माना जाता है।

इसलिए श्रीमद्भागवत के एकादश-स्कंध में आनन्दकन्द प्रभु श्री कृष्ण उद्धव जी के प्रति यही उपदेश देते हैं—जिसका सृष्टि के प्रारम्भ में सनकादि मुनियों के प्रति हंसरूप से उपदेश दिया था।

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं
दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम्।
विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया
स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः॥
दृष्टं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णः
तूष्णीं भवेन्निज-सुखानुभवो निरीहः।
संदृश्यते क्व च यदीदमस्तु बुद्ध्या,
त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात्॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।३४–३५)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस भ्रान्तिरूप जगत् को मन का विलासमात्र, दृश्य, नश्वर और अलातचक्र के समान अति चंचल जानना चाहिए ! जलती हुई लकड़ी का नाम अलात है। उसको घुमाने से वह चक्राकार प्रतीत होता है। उसी प्रकार यह जगत् वस्तुतः न होता हुआ भी अविद्या भ्रान्ति से प्रतीत होता है। यह एक अद्वितीय विज्ञान रूप ब्रह्म ही नाना (द्वैत) रूप से भास रहा है। अतः गुणों के परिणाम से हुआ यह जाग्रत-स्वप्न और सुषुप्ति-रूप तीन प्रकार का विकल्प, माया-मय स्वप्न रूप ही है। इस प्रकार के मिथ्या मायिक-द्वैत-प्रपञ्च से दृष्टि हटाकर, तृष्णा रहित-मौन, निजानन्दपूर्ण और निश्चेष्ट हो जाय। फिर यद्यपि आहारादि के समय इसकी प्रतीति भी होगी। तथापि अवस्तु (माया) समझकर छोड़ा हुआ होने के कारण यह जगत् भ्रम उत्पन्न न कर सकेगा। यदि च व्यवहार दशा में इसकी प्रतीति तो होती ही रहेगी।

अध्यारोप, अपवाद के लिए किया जाता है। अपवाद से अध्यारोप निवृत्त हो जाता है। और अधिष्ठान तत्त्व के विचार द्वारा ही अपवाद सिद्ध होता है। तत्त्व विचार बिना अपवाद सिद्ध नहीं हो पाता जिस प्रकार स्वप्न-भ्रम का अपवाद जागृति से एवं अन्धकार का अपवाद प्रकाश से ही होता है; अन्य उपायों से नहीं होता इसी प्रकार तत्त्व विचार द्वारा ही द्वैत-आरोप का अपवाद होता है। और आत्मज्योति निखर उठती है।

शिवमस्तु।

प्रश्नोत्तरी

कहाँ भूमि को जीव है, कहाँ स्वर्ग को देह।
कहाँ पवन को वेग है, कहाँ अग्नि को गेह ॥
गंध भूमि को जीव है, नीर स्वर्ग को देह।
शून्य पवन को बेग है, दारु अग्नि को गेह ॥
कहाँ भक्ति को आदि है, कहाँ ज्ञान को अन्त।
बीच बीच का होत है, काह करत नित संत ॥
सहज भक्ति को आदि है, ब्रह्म ज्ञान का अन्त।
बीच बीच सत्संग है, बिमल करत मति सन्त ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"कैलास-मानसरोवर-प्रदक्षिणा"

श्री "दत्त" (पूर्वानुवृत्ति)

"When we came in sight of Kailas, my Tibetian guide stood as if turned to stone. For five full minutes he remained in prayer, his face turned towards Kailas and the mount nearly"—"The Holy mountain" By Swami Hamsa)

सोसा[1] समुद्र सतह से ८००० फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ और तवाघाट के सामने के पहाड़ पर के खेला गाँव का गाय का घृत प्रसिद्ध है, जो दानेदार और सस्ते दाम में बिकता है। कल्याण सिंह की दुकान में भी कुछ घृत था जिसको मैंने खरीद कर अपने कमण्डलु में रख दिया। मेरी इच्छा इससे मानसरोवर के पावन तट पर यज्ञ करने की थी। यज्ञ की और कुछ सामग्रियाँ भी मैं अपने साथ में ले आया था।

सोसा से सीधा सिरखा पहुँचने की अपेक्षा मेरी इच्छा नारायण आश्रम होकर सिरखा जाने की हुई। आज का पड़ाव सिरखा गाँव में ही होने वाला था। अतः मेरे पास में अभी समय भी अपेक्षाकृत अधिक था। विशेष बात तो यह थी कि मैं सब यात्रियों से कुछ मील आगे था अतः यहाँ से मैंने नारायण-आश्रम की राह ली। प्रस्थान करने से पूर्व मैंने कल्याण सिंह को और वहाँ के दो-तीन लोगों को बतलाया कि हमारे यात्रासंघ के अन्यान्य सदस्य जब यहाँ से निकलें तब उन्हें सूचित कर दें कि मैं नारायण-आश्रम होकर सिरखा पहुँचूँगा। इसलिए यदि वे क्लान्त हो गये हों और नारायण-आश्रम न आना चाहते हों तो सीधे सिरखा पहुँच जायँ।

सोसा गाँव के बाहर आने पर एक छोटी पगडण्डी नीचे की ओर उतरती हुई पूर्वदिशा में जा रही थी। मार्ग में कई स्थानों में निर्झर बह रहे थे। मार्ग के बायीं भाग में हरे वृक्षों की पंक्तियाँ थीं जिसके ऊपर सुन्दर विहगगण आनन्द से कलरव कर रहे थे। किसी-किसी जगह पर लाल-श्वेत-पीले पुष्पों से वृक्ष सुशोभित थे। हरे-भरे पहाड़ और लहलहाते हुए खेतों पर से प्रवहमान मन्द सुगन्धित समीर देह में आनन्द एवं उत्साह का अभिसिंचन करता था। मार्ग के पहाड़ों में अभ्रक का भाग अधिकांश होने से वह सूर्य के प्रकाश में चमकते थे। वर्षा से जब

१—कोई-कोई कहते हैं कि सोसा का शुद्ध नाम 'सूसा' है। 'सू' शब्द देवता वाचक है। कुछ लोग मानते हैं कि शुद्ध शब्द 'साँसा' या 'श्वासा' है। क्योंकि चढ़ाई चढ़कर वहाँ पहुंचने पर साँस या श्वास फूल जाती है। हमें तो लगता है कि चढ़ाई के मस्तक (सिस) पर अवस्थित होने पर इस गाँव का शुद्ध नाम 'सिसा' है जो कालान्तर में 'सोसा' हो गया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अभ्रक पहाड़ों से बहकर मार्ग पर आ बिछ जाती है तब तो ऐसा ही दृश्य उपस्थित कर देती है कि यह मार्ग रजत एवं सुवर्ण से निर्मित है। मार्ग के सुन्दर वृक्ष, पहाड़ पर से नीचे की ओर बहते निर्झर, पहाड़ों के पाद देश से लेकर चोटी पर्यन्त हरे रङ्ग के चित्रों जैसे धान्य से भरे नयनाभिराम सोढ़ी वाले खेत, नीलाकाश में इधर-उधर स्वच्छन्दता पूर्वक तैर रहे रंग-बिरंगे सुन्दर छोटे-छोटे पक्षियों के वृन्द इत्यादि को देखता हुआ मैं एक हरे रंग से पोते हुए से सुन्दर पहाड़ के समीप जा पहुँचा जिसके ऊपर मुकुट सदृश नारायण-आश्रम था, जो दूर-दूर आ जा रहे यात्रियों को उनका आतिथ्य प्रदान करने के लिए मूक भाषा में निमन्त्रित कर रहा था। सचमुच यह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य से तरबतर था। पूर्व दिशा की ओर दृष्टि करने पर सुदूर के हिमाच्छादित पर्वत, ५००० फुट नीचे की ओर देखने पर सफेद फेन उछालती, गर्जना करती, अपनी प्रिय सखी धौली गंगा को मिलने के लिए उतावली सी भागती हुई काली गंगा, सामने के पहाड़ पर का सुन्दर पंगु गाँव, पीछे की ओर मुड़कर नीचे की ओर दृष्टि दौड़ाने पर वहाँ उपत्यका में अवस्थित पहाड़ों के सुन्दर छोटे-बड़े गाँव इत्यादि अत्यन्त ही चित्ताकर्षक थे। श्री नारायण स्वामी जी द्वारा इस स्थान की पसन्दगी अत्यन्त उचित एवं अद्भुत है।

काष्ठ निर्मित प्रवेश द्वार से आश्रम में प्रविष्ट होने पर दक्षिण हाथ की ओर आड़ू फलों के वृक्ष और विविध रंग के सुवासित पुष्पों के पौधे हैं। सामने के मकान में स्नानघर, शौचालय, फलसंचय स्थान, खेतीबारी के औजार रखने के कमरे, कोठार इत्यादि हैं जब कि बाँयें हाथ की ओर एक द्वार है जिसमें आगे बढ़ने पर आश्रम की पाकशाला, आफिस, स्वामी जी का निवास स्थान इत्यादि है। भीतर प्रवेश करते ही शिष्टाचार के अनुसार आश्रमवासियों ने मुझे स्वागत करते हुए नमोनारायणाय किया। मेरे आगमन के समाचार सुनते ही श्री ईश्वरीदत्तजी वहाँ पर आ पहुँचे और कहने लगे, "आप पहले भोजन करने बैठ जाइये, रसोई तैयार है। हम लोग अभी भोजन करने ही जा रहे थे, अच्छा हुआ कि आप यथासमय आ पहुँचे हैं जो हमारे लिए अत्यन्त हर्ष की बात है। अल्मोड़ा से श्री शान्तिभाई का पत्र भी मिला था जिसमें आपके आगमन की बात लिखी थी।" श्री ईश्वरीदत्त पाण्डेयजी के निमंत्रण देने पर उनका आभार प्रकट करते हुए मैंने बतलाया कि मैं तो फलाहारी हूँ। यह सुनकर श्री पाण्डेजी ने आश्रम की गाय के दही से बनाया हुआ मट्ठा मँगवाया। मट्ठा आने पर मैं उनका आग्रह टाल न सका। वह इतना तो स्वादिष्ठ था जिसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। अतिथि सत्कार की उदात्त भावना के प्रतीक-सा उस सुमधुर मट्ठा ने कुछ क्षणों में ही यात्राजनित क्लान्ति की बहुत कुछ अंशों में निवृत्ति करते हुए मानो एक नूतन सी चेतना मेरे नस-नस में भर दी। इतने में वहीं पर आश्रम के श्रीनृसिंह स्वामी जी आये और मेरा और हमारे यात्रा संघ के अन्यान्य सदस्यों का कुशल-मंगल पूछा। बाद में हम दोनों कुछ समय पर्यन्त कठिन यात्रा के विषय में और तिब्बत की वर्तमान परिस्थिति, डाकुओं का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आतङ्क, चीनी सैनिकों की गतिविधि, इत्यादि विभिन्न विषयों पर विचार-विनिमय किया। पं० ईश्वरीदत्तजी भोजनोपरान्त वहाँ पर आ पहुँचे थे। बात-बात में मैंने उन दोनों को पूछ ही दिया, "श्री नारायण स्वामीजी की अन्तिम स्थिति के विषय में कुछ कहिये।" यह सुनते ही वे दोनों कुछ व्यथित हृदय से बोले—'हम लोग स्वामीजी के अन्तिम दिनों में उनकी संनिधि पा न सके क्योंकि उनका आदेश था कि आश्रम को न छोड़ें। स्वामीजी ने कुछ भक्तों के सुझाव से ई० स० १९५६ के अक्टूबर में कलकत्ते में आपरेशन करवाया था जिससे उनका देहावसान हो गया।' हृदयविदारक प्रसंग को छोड़कर हम पुनः कैलास यात्रा के विषय में बातचीत करने लगे। श्री नृसिंह स्वामी बोले—'नारायण आश्रम में दो बंगाली साधु आये हैं जो कैलास यात्रा के लिए गये थे किन्तु मार्ग में अस्वस्थ हो जाने पर वहाँ से वापस लौट आये हैं।' मेरे द्वारा उन साधुओं से मिलने की इच्छा व्यक्त करने पर आश्रम का एक सेवक जाकर उनमें से एक को बुला ले आया। मैंने उनसे बंगला भाषा में ही बातचीत शुरू की। वह दुःखी होता हुआ अपनी कठिन यात्रा का अनुभव सुनाने लगा। कहा कि वे दोनों साधु हावड़ा (कलकत्ता) से मई मास में प्रस्थान कर काठगोदाम, अल्मोड़ा होते हुए गरब्यांग पहुँचे थे। वहाँ से एक भोटिया नौकर को लेकर जब वे तकलाकोट पहुँचे तब दोनों ज्वरग्रस्त हो गये। शीत भी अत्यधिक प्रतीत होने लगी। जीवन में कभी भी सत्तू नहीं खाया था जो यहाँ पर खाना पड़ा फलस्वरूप बदहजमी हो गई। तकलाकोट से चलकर गुर्ला-छू के समीप आने पर मेरे सहयात्री साधु भाई तो इतने बीमार हो गये कि देखते-देखते अचेत हो गिर गये। मैंने नौकर को कहा कि कहीं से भी घोड़ा वा खच्चर ले आओ। वह गया। सात आठ घंटे बाद वह एक खच्चर लेकर आ पहुँचा तब साधु भाई को जैसे-तैसे उस पर बैठाकर मानसरोवर के तट पर पहुंचाया और पवित्र मानसरोवर में स्नान आदि करके दूर से ही भगवान् श्री कैलासनाथ को हाथ जोड़ते हुए साष्टांग प्रणाम कर, इतने से ही अपने को धन्य समझकर, वहाँ से वापस लौट आये। अत्यन्त कठिनाई से लीपु-ला पारकर वापस गरब्यांग पहुँचे और धीमे-धीमे चलते हुए कई दिनों के उपरान्त यहाँ आ पहुँचे हैं। समझ लीजिये कि मृत्यु के मुख से बचकर हम वापस आ गये हैं।" जब श्री ईश्वरीदत्त पांडेयजी से उसने सुना कि मैं यात्रा संघ को लेकर कैलास मानसरोवर जा रहा हूँ तब निःश्वास छोड़ते हुए वह बोला कि यदि हम दोनों अकेले न जाकर आपके यात्रासंघ के सदस्य के रूप में इसी समय निकलते तो कितना अच्छा होता। लेकिन 'चिड़िया चुग गई खेत, फिर पछताये होत क्या।'

जब मैंने उसे तिब्बत की वर्तमान स्थिति और चीनी दानवों के त्रास के बारे में पूछा तब वह कहने लगा कि "नंगा क्या नहाये क्या निचोड़े'। हम लोगों की तो चीनियों ने जाँच पड़ताल भी नहीं की और किसी प्रकार से सताये भी नहीं। क्योंकि हमलोगों के पास ऐसे था ही क्या जिससे वे हमारी ओर आशंकित हों। उन्होंने तो हमें दवा दी और निर्भयता से विचरनेको कहा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस प्रकार से कुछ समय तक यात्रा मार्ग, लीपु-ला पर बर्फ, भारतीय सीमा रक्षक इत्यादि के विषय में बातचीत करने के बाद उस क्लान्त, क्षीणकाय साधु ने विश्राम हेतु वहाँ से विदा ली। पं० श्री ईश्वरीदत्तजी और नृसिंह स्वामीजी मुझे आज का दिन यहीं आनन्द से निर्गमन करने का आग्रह करने लगे किन्तु मुझे इस समय ठहरना उचित न लगा क्योंकि हमारे यात्रा संघ का आज का पड़ाव सिरखा में होना निश्चित था और वहाँ से कल प्रातः आगे के लिए प्रस्थान करना था। मैंने उन्हें वचन दिया कि कैलास यात्रा से वापस लौटने पर हमारा यात्रासंघ अवश्य ही यहाँ आकर आपका आतिथ्य ग्रहण करेगा। यह सुनकर वे दोनों वहुत प्रसन्न हुए। मैंने घड़ी में देखा तो एक बज चुका था। अतः यहाँ से निकलने के पूर्व मैंने आश्रम देखने की इच्छा अभिव्यक्त की। मेरा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार करते हुए श्री नृसिंह स्वामी जी मुझे आश्रम के एक-के-बाद एक विभाग दिखाने लगे। पाकशाला, अनाजसंग्रह स्थान, देखते हुए हम अखंड धुनि वाले कमरे में आ पहुँचे। कमरा स्वच्छ सुन्दर था। बाँयें हाथ की दीवार में नीचे के भाग में धुनी थी जो भस्म से भरी हुई थी। धुनी दिखाते हुए स्वामीजी ने कहा—यहाँ पर प्रति बृहस्पति दिन पर दुर्गा सप्तशती के और गीता के ११ वें अध्याय के मन्त्रों द्वारा हवन किया जाता है।

इस कमरे में एक मेज पर सुन्दर रेडियो था जो बैटरी से चालित था और इसके कुछ दूरी पर दीवार में भगवान् श्री दत्तात्रेय का चित्र था। यहाँ से हम बाँयें हाथ के द्वार से बाहर आ गये और दायें हाथ के दूसरे द्वार से एक कमरे में प्रवेश किया। इस कमरे से जब दूसरे कमरे में आये तब वहाँ पर कला की उत्कृष्ट श्री नटराज की सुन्दर मूर्तियुक्त काष्ठ का मन्दिर देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। सुना कि यह मूर्त्ति किसी विदेशी की थी जिसने स्वदेश लौटने पर एक भारतीय को इसे वेच दी थी और उस भारतीय ने श्री नारायण स्वामीजी को भेंट दे दी थी। इस मन्दिर के दोनों बाजू में चँवर लटक रहे थे जो शोभा में अभिवृद्धि करते थे। इस कमरे से अब हम एक छोटे द्वार से अन्य कमरे में प्रविष्ट हुए। श्री नृसिंह स्वामी जीने कहा कि यह श्री नारायण स्वामीजी का अध्ययन कक्ष है। यहाँ पर के एक दीवार में श्री सत्यनारायण का सुन्दर चित्र टँगा हुआ था। मुझे विश्वस्त सूत्रों से पता चला था कि जिस व्यक्ति की आँखें कमजोर हों वह यदि सूर्योपासना (संध्यावन्दन, सूर्य नमस्कारादि) सूर्य के कल्पित चित्र का ध्यान इत्यादि करे तो उसकी आँखें अच्छी हो जाती हैं। इस कमरे में श्री नारायण स्वामीजी बैठने के लिए जो उपयोग में लेते थे वह टेबुल कुर्सी, पत्र व्यवहार के लिए कागज, पेन्सिल, पेन, इत्यादि जो व्यवस्थित रूप से सुरक्षित हैं वे सब देखकर तो ऐसा ही लगा कि श्री नारायण स्वामीजी जीवित हैं और इस समय आश्रम में कहीं इधर-उधर गये हुए हैं। टेबुल पर हाथी दाँत की एक सुन्दर श्री दत्तात्रेय भगवान् की मूर्ति थी जिसने प्रथम दृष्टि में ही मेरा चित्त आकर्षित कर लिया।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यहाँ से निकल कर हम दो-तीन कमरे देखकर बाँयें हाथ के एक उस कमरे में प्रविष्ट हुए जो श्री नारायण स्वामीजी का शयन-गृह था। यहाँ पर एक पलंग बिछा हुआ था जिसके ऊपर में एक बड़ा गद्दा सफेद चद्दर से ढँका हुआ था। जमीन पर सुन्दर कालीन बिछी हुई थी। बाँयें हाथ के एक कोने में लकड़ी का नक्कासीदार सुन्दर छोटा-सा श्री हरिकृष्ण मन्दिर था जिसमें हाथी दाँत की श्रीकृष्ण की मनोहर मूर्त्ति विराजमान थी। श्री नृसिंह स्वामी ने बतलाया कि यह मन्दिर मैसूर के महाराजा साहब श्री कृष्णराज वाडियार ने तपोवन वाली तपस्विनी श्रोमती रूमादेवी को भेंट किया था और रूमा देवी ने उसे श्री नारायण स्वामी को भेंट दे दिया था। इस कमरे में सामने के एक अल्मारी में श्री नारायण स्वामीजी के ऊनी के कुछ वस्त्र, हिमालय यात्रा के वस्त्र, तिब्बती जूते, दूरवीक्षण यन्त्र एवं कैमरा इत्यादि सुरक्षित रखे हुए हैं। मैंने देखा कि श्री नारायण स्वामी जी के पलङ्ग के सिरहाने की दिशा में दीवार पर एक अत्यन्त सुन्दर चित्र था जो भगवान् श्री दत्तात्रेय का था। पता चला कि भगवान् दत्तात्रेय में श्री नारायण स्वामी जी की अत्यन्त भक्ति थी। उनका जन्म भगवान् श्री दत्तात्रेय की जयन्ती (मार्गशीर्ष पूर्णिमा) के दिन श्री दत्तोपासक कुटुम्ब में हुआ था। उनका नाम श्री राघवेन्द्र पै था और बचपन मैंगलौर की डाकरकेरी स्ट्रीट में बीता था। उनके संन्यास के गुरु एक उच्चकोटि के अवधूत महात्मा थे जो श्री दत्तोपासक थे।

श्री नारायण स्वामी जी का शयनकक्ष देखने के बाद हम धुनी वाले कमरे में से पाकशाला के समीप के कमरे में गये जहाँ से काष्ठ की सीढ़ी पर चढ़कर एक छोटे से कमरे में आ पहुँचे। यहाँ पर श्री बालमुकुन्द की मूर्ति, शालिग्राम, पूर्णकुंभ इत्यादि है। यहाँ अखण्ड ज्योति जलती रहती है और मूर्तियों की नित्य पूजा होती रहती है। इस कमरे के बाहर के भाग में समीप में एक अन्य कमरा है जिसमें भण्डारी जी रहते हैं। पाकशाला से लेकर मन्दिर पर्यन्त के सभी कमरों वाले भाग को अन्नपूर्णालय कहते हैं।

मैं श्री नारायण मन्दिर देखने के लिए उत्सुक था अतः हम अन्नपूर्णालय से बाहर आकर दायें हाथ पर की पत्थर की सीढ़ी का आश्रय लेते हुए श्री नारायण मन्दिर के समीप आ पहुँचे। यह स्थान इतना तो रम्य था मानों कि पृथिवी पर का स्वर्ग हो। मन्दिर बड़ा एवम् कुमायूँ प्रदेश की एक विशेष प्रकार की भवन-निर्माण कला से युक्त था। मुझे तो वह नैनीताल के गवर्नर हाउस के सदृश ही प्रतीत हुआ। मन्दिर का रंग हरा था। जो चारों ओर के पहाड़ों के एवम् समीप के खेतों के रंग के साथ घुलमिल जा रहा था। मन्दिर के चारों ओर सुन्दर उद्यान था जिसमें लाल, पीले, गुलाबी, काले, सफेद रंग के छोटे-बड़े सुगन्धित गुलाब के पुष्प विकसित थे। विविध रंगी डलिया पुष्प, डोलर, चम्पा, चमेली इत्यादि देशी और कई प्रकार के विदेशी पुष्प मन्द-मन्द समीर के साथ-साथ झुक रहे थे। यहाँ पर मधुर फलों का भी बड़ा उद्यान था जिसमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देशी-विदेशी सेब, आडू, खुमानी, नाशपाती, आम इत्यादि के एक हजार से भी अधिक वृक्ष थे। अधिकांश वृक्ष फलों से नतमस्तक थे। कुछ दूरी पर हरी तरकारी और आलू का भी बगीचा था।[१]

नारायण मन्दिर में प्रवेश कर संकीर्तन भवन की सीढ़ी चढ़ने पर बाँयें हाथ की ओर श्री नारायण स्वामी जी के सुन्दर रंगीन चित्र पर दृष्टि पड़े बिना नहीं रहती जो Liking at the first sight अर्थात् प्रथम दृष्टि में ही आकर्षण पैदा कर देता है। हम सीढ़ी चढ़कर संकीर्तन भवन में आ पहुँचे। यहाँ पर भगवान् आदिनारायण की रजत की सुन्दर बड़ी मूर्ति थी जिनके सम्मुख दो अखण्ड दीपक जल रहे थे। मूर्त्ति के समीप में श्री दुर्गा जी एवं अन्यान्य देवी देवता की छोटी बड़ी सुन्दर मूर्त्तियाँ थीं। दक्षिणावर्ती बड़ा शंख भी था। मन्दिर काष्ठ निर्मित था एवं मैसूर की काष्ठ-कला का उत्कृष्ट नमूना था। संकीर्तन-भवन में सुन्दर गलीचे बिछे हुए थे जो आसपास के पहाड़ी ग्रामोद्योग का नमूना था। मन्दिर की दीवारें एवं भूमि का भाग काष्ठ निर्मित था। यहाँ का वातावरण पवित्र था जो साधक के मन को एकाग्र करने में सहायक था। श्री नृसिंह स्वामीजी से सुना कि ई० स० १९४० में भगवान् श्री आदिनारायण की इस मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा श्री नारायण स्वामी के स्वहस्त से हुई थी। जब नारायण स्वामी यहाँ बैठकर भजन-कीर्तन करते थे तब एक अद्भुत वातावरण का निर्माण होता था। उस समय प्रतिदिन असंख्य भक्त लोग संकीर्तन में आ उपस्थित रहते थे। इस मन्दिर में प्रतिदिन मंगला आरती, षोडशोपचार से पूजन, श्री सत्यनारायण पूजन और कथा, विष्णुसहस्रनाम पाठ, महाआरती, नामसंकीर्तन इत्यादि होता रहता था। अभी भी पूजा-पाठ आदि कार्यक्रम तो रहता ही है। अन्नपूर्णालय के श्री बालमुकुन्द जी, पूर्णकलश, शालिग्राम आदि देवता की पूजा भी नित्य नियमित रूप से होती है। श्री नारायण स्वामी जी की उपस्थितिकाल में प्रतिवर्ष गुरुपूर्णिमा, नवरात्र, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, श्री नारायण जयन्ती इत्यादि पर्व बड़े धूमधाम से मनाये जाते थे जिस अवसर पर पहाड़ों के एवं सुदूर के असंख्य भक्त लोग एकत्रित होते थे और दिनरात भजन-कीर्तन आदि से सारा वायुमंडल विशुद्ध आन्दोलनों से विकम्पित कर देते थे। वर्तमान समय में भी उपर्युक्त उत्सव मनाये जाते हैं किन्तु उनका परिमाण छोटा है।

मैं इस पवित्र स्थान के अधिष्ठाता भगवान् के दर्शन कर, यात्रा निर्विघ्नरूप से समाप्त करने के लिए उनसे मन ही मन आशीर्वाद माँग कर नूतन आनन्द एवं उत्साह से भरा हुआ यहाँ से

१—आश्रमवासियों से सुना कि यहाँ से करीब दो मील को उतराई पर आश्रम की गौशाला है जहाँ पर करीब १०० अच्छी जाति की दुधारू गौवें हैं। यह भी सूना कि यहाँ की गाएँ गौ-प्रदर्शनी में ईनाम जीत चुकी हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नीचे उतरा। यहाँ पर मुझे आश्रम का ग्रन्थालय दिखाया गया जिसमें हिन्दी, आंग्ल, गुर्जर, मराठी इत्यादि कई भाषाओं में अच्छे-अच्छे धर्मग्रन्थ थे। दीवार पर सन्त पुरुषों के चित्र टँगे हुए थे। उनमें एक बड़ा चित्र ईसा मसीह का था जिसमें से पवित्र भाव फूट-फूट कर बाहर आ रहे थे। उनके मस्तक पर कंटक का मुकुट था जो मौन में ही कह रहा था कि Who bears the thorns, gets the throne अर्थात् जो व्यक्ति विपत्तियों को सहन करते हुए धैर्य से आगे बढ़ते हैं वह अवश्य ही एक दिन महा विजयी होते हैं।

ग्रन्थालय से बाहर आकर समीप के दो-तीन कमरे देखे। आश्रम के कमरे लकड़ी से बने हुए थे। इस विषय में पूछने पर श्री नृसिंह स्वामी जी ने बतलाया कि इस पहाड़ी प्रदेश में जब नवम्बर से लेकर अप्रैल तक अत्यन्त शीत रहती है और कई बार भारी हिमपात होता रहता है तब इस प्रकार के लकड़ी के कमरे में अधिक शीत महसूस नहीं होती। और इतनी करीब ९००० फुट की ऊँचाई पर सीमेन्ट, अच्छी जाति के पत्थर इत्यादि पहुँचाने के लिये बड़ी भारी मजदूरी देनी पड़ती है। चारों ओर के पहाड़ों में असंख्य बड़े-बड़े वृक्ष होने से लकड़ी आसानी से सस्ते भाव में पाई जाती है और ढोने में मजदूरी भी कम लगती है।

हम आश्रम, आश्रम का उद्यान इत्यादि देखते हुए उस स्थान पर आ पहुँचे जहाँ पर मधुमक्षिका का पालन-गृह था। यहाँ पर करीब ४०-५० छोटी-बड़ी लकड़ी की पेटियाँ थीं जिसमें मधुमक्खियों का पालन कर उनके द्वारा उसमें मधु संचय करवाया ज़ाता था। श्री नृसिंह स्वामी जी ने मुझे ये पेटियाँ बताईं और किस प्रकार से मधु इकट्ठा किया जाता है उसकी विधि भी संक्षेप में बताई। मैं इस प्रकार के मधुमक्षिका का पालनगृह अल्मोड़ा के रामकृष्ण धाम में एवं मीरतोला के श्रीकृष्णप्रेमजी के आश्रम में पहले देख चुका था। अतः इस विषय में मुझे पर्याप्त जानकारी थी।

यहाँ से वापस लौटते समय मार्ग में एक स्थान पर खड़े रहकर श्री नृसिंह स्वामीजी ने समीप की सामने वाली टेकडी पर स्थित हरे रंग से सुशोभित छोटे मन्दिर की ओर उँगली निर्देश करते हुए बताया कि वह श्री नारायण स्वामीजी का ध्यान मन्दिर है जहाँ पर वे प्रतिदिन ध्यान-भजन किया करते थे। उन्होंने उसका नाम "शून्यता" रक्खा है।

अब हम यहाँ से चलकर कार्यालय के समीप आये। मेरे कमंडलु में जो सोसा गाँव के कल्याण सिंह की दूकान से खरीदा हुआ गो-घृत सुरक्षित था उसको किसी स्वच्छ डिब्बे में भरवा देने के लिए मैंने श्री नृसिंह स्वामी जी से विनती की जिससे उन्होंने आश्रमवासी सेवक श्री गंगाराम द्वारा यह कार्य शीघ्र करवा दिया। अब मैं घृत की सुरक्षा के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो गया। यहाँ पर मुझे समय अधिक हो गया था क्योंकि घड़ी एक बजकर चालीस मिनट बता रही थी अतः मैं सभी भक्त-हृदय आश्रमवासियों से विदाई लेता हुआ और नारायण के पवित्र नामों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का उच्चारण करता हुआ यहाँ से सिरखा के लिये चल पड़ा। श्री नृसिंह स्वामीजी मार्गदर्शक बनकर कुछ दूरी तक साथ में चले क्योंकि यहाँ से जो मार्ग आश्रम के पीछे की ओर से होकर गुजरता था वह ऊबड़-खाबड़ था और दीर्घ समय से व्यवहृत न होने से बिगड़ गया था। श्री नृसिंह स्वामीजी ने बताया कि पहले तो वह मामूली पगडंडी ही थी। उस पर आने-जाने वाले लोगों को बहुत ही कष्ट झेलना पड़ता था। यह सब जानकर श्री नारायण स्वामीजी के भक्त, सोसा गाँव के श्री विशाल सिंह ने ३००० हजार रुपये खर्च करके कुछ वर्ष पूर्व ही यह मार्ग बनवा दिया है। जब हम धार्मिक बातचीत करते हुए करीब एक मील दूर निकल गये तब मैंने श्री नृसिंह स्वामीजी से विनती की कि अब वे आगे साथ में आने के लिए कष्ट न करें क्योंकि उन्हें आश्रम की भी तो देखभाल करनी है। उन्होंने मेरी बात सहर्ष स्वीकार करते हुए और यात्रा की शुभ कामना करते हुए सस्मित वदन से मुझे विदाई दी। यहाँ से अब मैं अकेला ही आगे के लिए चल पड़ा। करीब पौन मील दूरी तय करने पर मैं एक निर्झर के समीप होता हुआ ऊपर के पहाड़ पर आ पहुंचा। वहाँ पर पत्थरों से बनी हुई एक दीवार थी जो कुछ निशान के रूप में किसी ने बनवाई हो ऐसा लगा। यहाँ से मुझे वाम भाग के मार्ग पर आगे बढ़ना था। समीप में देवदार के कई एक वृक्ष थे। सामने की ओर नीचे के भाग में एक निर्झर बह रहा था जिसपर एक छोटा सा लकड़ी का पुल था। उसके समीप में एक नूतन घर बन रहा था। दायें हाथ की ओर दूर के नीचे के प्रदेश में 'रूंग' नामक गाँव दिखाई पड़ता था। यहाँ से नूतनगढ़ करीब आधा मील तो होगा ही। वहाँ तक पूरा मार्ग उतराई का ही था। मार्ग में असंख्य गौएँ चर रही थीं। उनके समीप से जब मैं निकला तब वहाँ पर बैठे हुए गोपबालों ने नारायण शब्द की ध्वनि की जिसे सुनकर मैंने उनकी भावभक्ति का मूल्यांकन करते हुए उसी पवित्र शब्द से उत्तर दिया। यह सुनकर सभी गोप बन्धु बड़े प्रसन्न हुए। सहसा मुझे 'नारायण-नारायण ओम्-ओम्' की धुन एवं 'नारायण भज नारायण भज नारायण का नाम रे' के भजन का स्मरण हो आया जिससे मैं उच्च स्वर से गाने का मोह संवरण न कर सका। इस प्रकार से आनन्द उँडेलता हुआ छोटे पुल पर से होता हुआ मैं सिरदंग नामक गाँव में आ पहुँचा। यह भी भोटियों का छोटा सा गाँव है। मैंने देखा कि गाँव के लोग गेहूँ तैयार कर रहे थे। कोई-कोई तो हाथ में लकड़ी का 'दबला' (गदा जैसा खेती-बारी का औजार) लेकर गेहूँ के बालों को पीट रहे थे। कोई हाथ में सूप लेकर वायु की सहायता से छिलके और अन्न को अलग कर रहे थे। मैदानी इलाकों के किसानों की तरह इस पहाड़ी प्रदेश के लोग पहाड़ी भूमि में पैदा होने वाले गेहूँ और अन्य अनाज को छिलके से अलग करने के लिए बैलगाड़ी का या बैलों का उपयोग नहीं करते। पहाड़ों में बैलगाड़ी नहीं होती क्योंकि मार्ग संकीर्ण और भारी चढ़ाई का होता है जिस पर चलते हुए बैलगाड़ी द्वारा बोझ खींचना बैलों के लिए मुश्किल तो क्या असम्भव है। इन सब

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कारणों से पहाड़ी लोग वृक्षों की छाल में से कोड़ा जैसा बना लेते हैं जिसे अन्न की बालों पर ज़ोर-जोर से फटकारते हुए कण बाहर निकालते हैं। बाद में बड़े-बड़े सूप द्वारा उन्हें हवा में कुछ ऊँचाई से जमीन पर धीमे-धीमे छोड़ते हैं ताकि अनाज के कण उनके छिलकों से आसानी से एवं अच्छी तरह् से दूर हो सकें। मैंने सिरदंग गाँव में खड़े रहकर उपर्युक्त क्रिया को कुछ समय पर्यन्त देखा। वहाँ पर के भोटिया के एक घर के प्रांगण में खेल रहा छोटा-सा शिशु मुझे देखकर आनन्द-विभोर होते हुए तालियाँ पीटते हुए कहने लगा 'टुलकु लामा, टुलकु लामा'। मुझे तो यह देखकर बड़ा आश्चर्य आ कि यह छोटा सा शिशु ! इसे टुलकु लामा नामक एक बड़े मठ के मठाधीश अवतारी साधु के नाम का कैसे पता चला होगा। मैंने देखा कि यहाँ के पहाड़ी स्त्री-पुरुषों के चेहरे तिब्बतियों के जैसे थे। हिमालय यात्रा में जब मैंने सर्वप्रथम पहाड़ी लोगों के छोटी आँख वाले और पतली-सी नाक वाले मंगोल जैसे चेहरे देखे थे तब मुझे आश्चर्य हुआ था कि ऐसा क्यों ? बाद में मुझे इस विषय में विश्वस्त सूत्रों से पता चला था कि भूतकाल में मंगोल लोगों की सत्ता हिमालय के पहाड़ी प्रदेश के निवासियों पर रही थी। इतिहासकारों का कहना है कि तिब्बत के राजा 'मोङ्-चन्स्म-पो (ई० स० ६२९-४९) ने सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद हिमालय के कुछ भाग पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया था।

(क्रमशः)

आठों याम हरिस्मरण !

एक घड़ी का मोल ना, दिन का कहा बखान।
सहजो ताहि ना खोइये, बिना भजन भगवान॥
बैठे लेटे चालते खान पान ब्योहार।
जहाँ तहाँ सुमिरण करै सहजो हिये निहार॥
सहजो भज हरिनाम कूँ तजौ जगत सूँ नेह।
अपना तो कोई है नहीं अपनी सगी न देह॥

— सहजो बाई

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बापू-स्मरण (पवित्र जन्म-शती में)

[सौ साल पहले आज की इस शुभ घड़ी में (२ अक्तूबर, १९६९) महात्मा गांधीजी भारतमाता की पवित्र गोद में उनके प्यारे वरपुत्र के रूप में और हम सब के श्रद्धेय 'बापूजी' के रूप में आविर्भूत हुए। आज का दिन निश्चय ही सारी जाति के लिए प्रातःस्मरणीय हो गया है। केवल भारतवर्ष के लिए ही नहीं सारे विश्व के लिए यह आनन्दोत्सव का दिन हो गया। सारी मानवता आज शान्ति के दूत, सत्य के निर्भीक वीर सेनानी और अहिंसा के आजीवन पुजारी इस युग-महापुरुष को अपना श्रद्धा-सुमन समर्पित करने को समुत्सुक हो रही है। देश-देशान्तर में लाखों करोड़ों मानव आज इस महामहिममय त्यागतपोज्ज्वल, मानवता और एकता का एकान्त सचा भक्त, स्वराज्य और रामराज्य में विश्वास रखनेवाले महात्माजी को याद कर रहे हैं और उनके प्रदर्शित मार्ग पर चलने के लिए शपथ ले रहे हैं। बापूजी की जन्म-जयन्ती पर हम उनको कैसे याद करें इस भावना की एक परिस्फुट झलक विश्व के विख्यात दार्शनिक वैज्ञानिक आईनटाईन के उद्गार से हमें मिलती है :

'A leader of his people, unsupported by any outward authority, a politician whose success rests not upon craft nor mastery of technical devices, but simply or the convincing power of his personality, a victorious fighter who has always scorned the use of force's a man of wisdom and humility; armed with resolve and inflexible consistency, who has devoted all his strength to the uplifting of his people and the betterment of their lot; a man who has confronted the brutality of Europe with the dignity of a simple human beings's and thus at all times risen superior generations to come. It may be, will scarce believe that such a one as this ever in flesh and blood walked upon this earth.'

गांधीजी को हम न केवल राजनीति में ही निपुण के रूप में पाये अपितु वे एक सच्चे प्रेमी, दक्ष शिक्षक, सूक्ष्मदर्शी दार्शनिक और मानव के परम मित्र के रूप में भी हमारे हृदय में घर कर गये हैं। और सबसे ऊपर 'महात्मा' यह शब्द उनके पवित्र नाम के पूर्व में बैठकर स्वयं अपने सच्चे अर्थ से सुशोभित होने का सौभाग्य प्राप्त किया। 'कहना और करना इन दो शब्दों का एक ही अर्थ है' यह बात गांधी जी ने अपने जीवन में दिखायीं। और इसीलिए उन्होंने कहा कि उनका जीवन ही उनकी वाणी है। ऐसे महापुरुष विरले हैं। उनको हम भूयो भूयो स्तवन करते हैं—नमन करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस महापुरुष के साथ श्री माँ का सुमधुर मिलन हुआ था। वह कहानी हमें आज फिर याद आती है—इसलिए इस पवित्र अवसर पर हम फिर उसको आनन्दवार्ता के प्रेमियों के सामने उपस्थापित करते हैं।

माँ का सब कुछ अद्‌भुत है। कमलनयन प्रसन्नता से भर उठा और मोटर लाने चला गया। इसी मोटर पर महात्माजी को लानेवाला था।

मोटर आने पर माँ के साथ परमानन्द स्वामीजी, अभय, हरिरामजी, जानकी बाई और मैं चल पड़ी। बाबू राजेन्द्रप्रसाद भी हमारे साथ आये। सेवाग्राम में मोटर ज्यों ही पहुँची त्योंही कमल नयन तेजी से माँ के आने का समाचार देने के लिए भीतर गये। तब तक माँ वहाँ पहुँच गयीं।

महात्माजी जिस कमरे में लोगों को लेकर बैठे थे, उस कमरे के बरामदे पर चढ़ते ही महात्माजी ने भीतर से कहा—"आइये माताजी, आइये।"

माँ भी "पिताजी-पिताजी" कहती हुई कमरे के भीतर गयीं। महात्माजी ने हाथ बढ़ाकर बिलकुल गोंद के समीप बिठाकर, उनके सिर को दिल से लगा लिया। माँ भी छोटी बच्ची की तरह महात्माजी के हृदय पर हाथ रख कर बैठ गयीं। दोनों के मिलन-दृश्य को देखकर उपस्थित लोग आनन्द प्रकाश करने लगे।

महात्माजी पहले पहल बोले—जमनालाल को तुम्हारे पास किसने भेजा था, यह जानती हो न? मैंने भेजा था। तुम्हें यहाँ बुलाने के लिए ही भेजा था। जमनालाल निःसंकोच भाव से यह कहा था कि मेरे निकट उसे वह शान्ति प्राप्त नहीं हुई, मैं उसे वह शान्ति नहीं दे सका था जो तुमसे उसे प्राप्त हुई। वह तुम्हें पाकर किस प्रकार पागल बन गया था—यह तो तुम जानती ही हो।"

स्वीकारोक्ति में माँ ने सिर्फ सिर हिलाया। महात्माजी ने आगे कहना शुरू किया—"मुझे तुम्हारे बारे में सबसे पहले किसने बताया जानती हो? कमला नेहरू ने। उसने मुझसे खासतौर से हिदायत दी थी कि मैं तुमसे अवश्य मिलूँ।"

उपस्थित लोगों की ओर देखते हुए महात्माजी ने कहा—"कमला इन्हें गुरु की तरह मानती थी।"

माँ तुरन्त बोल उठीं—"पिताजी! मैं किसी का गुरु नहीं हूँ। मैं तो छोटी बच्ची हूँ।"

महात्माजी हँस पड़े—"अच्छा! अच्छा!"

इस तरह की बातें होती रही थीं। उपस्थित लोगों में आनन्द का स्रोत बह रहा था। महात्माजी अभी तक माँ को उसी तरह लिये बैठे हुए थे। माँ भी छोटी बच्ची की तरह निःसंकोच भाव से उनसे सटी बैठी रहीं। कमलनयन माँ के बारे में सारी बातें बता रहे थे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ के जाने की बात पर महात्माजी ने माँ से कहा—"देखो, इस वक्त तुम अपने जाने की बात बिलकुल मत करो। कम से कम दो दिन यहाँ और ठहर जाओ। जमनालाल के बारे में दो दिन का और काम बाकी है। अगर तुम यहाँ रह जाओगी तो इन लोगों (कमलनयन तथा जानकीबाई) को शान्ति मिलेगी।"

माँ हँसती हुई बोलीं—"पिताजी, इस छोटी लड़की का दिमाग कुछ खराब है। सभी बातों का पालन ठीक से नहीं कर पाती। इसके लिए क्या करूँ पिताजी! तुम्हारी ही आदत जो इससे मिली है।" माँ की बात सुनकर सभी लोग हँस पड़े।

महात्माजी के काफी समझाने-बुझाने पर भी जब माँ ने कोई आशा नहीं दी तब वे उपस्थित सभी लोगों को दिखाते हुए बोले—"ये लोग हँसेंगे। कहेंगे कि न जाने कहाँ से एक पागल लड़की ले आये हैं, जिसे समझा-बुझाकर रोक नहीं सके। फिर चीन देश के सेनापति को किस ढंग से समझायेंगे? सभी लोग मेरा मजाक उड़ायेंगे।"

माँ ने हँसते हुए कहा—"अच्छी बात है, अगर मेरे पिताजी से कोई मजाक करके आनन्द मनाना चाहे तो मनाये। मेरे पिताजी पर इन बातों का असर नहीं होता। इससे मेरे पिताजी का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।"

महात्माजी—"मैं तो अनेक लोगों का पिताजी हूँ। तुम भी मुझे पिताजी कह रही हो ठीक है। मैं गलती से तुम्हें पहले 'माताजी' कह बैठा।"

इतना कहने के बाद वे बेतहासा हँसने लगे। इसके बाद लोगों की ओर देखते हुए बोले—"जमनालाल जेल में सूत कातते रहे। उस सूत से एक जोड़ी धोती माताजी के लिए बनाकर रख गये हैं, माताजी ने उसमें से एक टुकड़ा मेरे लिए, एक टुकड़ा विनोबाजी को, एक टुकड़ा जानकीबाई को देकर अपने लिए एक टुकड़ा रख लिया है।"

माँ हँसकर बोलीं—"पिताजी, एक बार मैं भी अपने हाथ से सूत कातकर एक जोड़ी धोती बनायी थी।" कुछ देर ठहरकर माँ पुनः बोलीं—"एक बार जब आप ढाका गये हुए थे तब मैं आपको देखने गयी थी। उस वक्त आप चरखे पर सूत कात रहे थे।"

काफी देर तक बातचीत होने के बाद जब माँ किसी सूरत से रहने को राजी नहीं हुईं तब महात्माजी हँसते हुए बोले—"तुम बड़ी धोखेबाज लड़की हो। मुझे धोखा देकर भुलावा नहीं दे सकती।"

माँ हँसती हुई बोलीं—"धोखा को धोखा देना ही ठीक है। कहिये पिताजी, ठीक कह रही हूँ न?" कमलनयन ने महात्माजी से कहा—"बापूजी, आपके पास माताजी को छोड़कर जा रहा हूँ तब ये सबेरे यहाँ से रवाना नहीं हो सकेंगी। आप जबरन रोक लीजियेगा।" महात्माजी भी कह उठे—'यही ठीक है। जानकीबाई और माताजी दोनों यहीं रहें। इन दोनों के सोने का प्रबन्ध मैं अपने पास कर दूँगा।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोपुरी में माँ के लिए दूध-साबूदाना तैयार किया गया था। एक व्यक्ति जाकर वहाँ से ले आयेगा ऐसा निश्चय किया गया। इसी बीच हरिरामजी ने महात्माजी से कहा कि भाईजी तथा अन्य लोगों की इच्छा थी कि माताजी से इन लोगों की मुलाकात हो और एकान्त में कुछ बातें की जायें। इस बात पर माँ महात्माजी की ओर देखती हुई बोलीं—''इसकी कोई जरूरत नहीं। कहिये पिताजी ? आपको कुछ कहना है ?''

गान्धीजी ने कहा— 'मुझे एकान्त में कोई बात नहीं करनी है। मेरी बातें साफ और सबके सामने होती हैं।''

अभय ने कहा—''मेरी इच्छा थी कि माँ के साथ आपकी बातचीत आध्यात्मिक विषय पर हो। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। अब माँ के साथ फिर आपकी कब मुलाकात होगी, कौन जाने ?''

अभय की बात समाप्त होने के पहले ही गान्धीजी कह बैठे—''तुम लोग तो सेवक हो। तुम लोग अगर प्रयत्न करोगे तो फिर मुलाकात हो सकती है।' इसके बाद माँ की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—''इतनी बातें हो रही हैं. पर असली बातें नहीं कह रही हैं। उसका क्या होगा ?''

माँ ने कहा— 'वह सब छोड़ दीजिए, पिताजी के साथ बातें तो हो गयीं।''

पुनः जाने का सवाल उठा। माँ हँसती हुई बोलीं—''मेरे पिताजी मेरी बातें अवश्य मान लेगें। कल मुझे अवश्य छोड़ देंगे।''

महात्माजी—''मैं ऐसा पिताजी नहीं हूँ कि सहज ही में बहकाकर यहाँ से चल देगी। मैं इतनी जल्दी राजी होनेवाला नहीं हूँ।''

माँ हँसती हुई बोलीं—''पिताजी अपनी छोटी लड़की की बात जरूर मानेंगे।''

अन्त तक जब महात्माजी यह बात अच्छी तरह समझ गये कि माँ को अब रोका नहीं जा सकता तब उन्होंने कमलनयन से पूछा—''जाने के लिए क्या प्रबन्ध किया।''

कमलनयनजी महात्माजी की बातें सुनकर निराश हो गये, बापूजी भी माँ को रोक नहीं सके। अगत्या उसने बताया कि माँ के लिए वह अपनी कार छोड़ जायगा।

परमानन्द स्वामीजी और अभय मां के खाने-पीने का सामान तथा हम लोगों के लिए बिछावन लेने गोपुरी चले गये। माँ के पास मैं तथा हरिरामजी रह गये।

गान्धीजी ने हरिरामजी से पूछा—''जोशी ! क्या तुम माँ के साथ ही हो।''

हरिरामजी ने कहा—''माँ ने तार भेज कर बनारस से बुलवाया है।'' यह बात सुनकर महात्माजी ने माँ की ओर देखते हुए पूछा—'तुम्हें अकेली आने में डर लगता है ?''

माँ ने हँसकर कहा—''डर की कोई बात है नहीं। इसने कहा था कि अगर इधर कभी आऊँ तो इसकी सूचना अवश्य दूँ इसलिए खबर भिजवायी थी।''

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस तरह की दो-चार बातें और हुईं। इसके बाद बरामदे पर बिछाये गये बिछावन पर जाकर गांधीजी लेट गये। उनके एक ओर जानकीबाई और दूसरी ओर माँ के लिए शय्या बिछायी गयी है। माँ महात्माजी के बगल में जाकर छोटी बच्ची की तरह चुपचाप सो गयीं। महात्माजी के पैरों के समीप और चारों तरफ अन्य कई व्यक्ति आकर सो गये। २-३ व्यक्ति उनकी सेवा करने लगे। मैं, हरिरामजी वगैरह वहीं बैठे रहे। अचानक महात्माजी का हाथ माँ के शरीर में स्पर्श कर गया। तुरत माँ बोल उठीं "पिताजी का हाथ हैं क्या ?"

गांधीजी तुरत माँ के हाथ को अपने हाथों में ले सो गये। इस तरह माँ को सोते आज तक कभी नहीं देखा था। मैं अवाक् होकर यह दृश्य देख रही थी जैसे वृद्ध पिता के बगल में उसकी लड़की सोई है। संकोच या लज्जा लेशमात्र भी नहीं है।

माँ चुपचाप सोई हुई थीं। महात्माजी अपनी सेविकाओं से २ ४ आवश्यक बातें करते रहे। अचानक माँ एक सेविका को अपने भाव में कह बैठीं—"अगर मैं अपने पिताजी को तुम्हारे बीच से उठाकर ले जाऊँ तो ? तुम लोग क्या कर सकती हो ? डण्डे से मारोगी ?"

तुरत कई सेविकाएँ बोल उठीं—' हम लोग भी पीछे पीछे चल देंगे।"

माँ इनकी बातों पर बगैर ख्याल किये महात्माजी से बोलीं—"ठीक समय पर तुम्हें ले जाऊँगी पिताजी, क्यों ठीक है ?"

महात्माजी इन बातों का अर्थ थोड़ा-सा समझ पाये। और कोई समझ पाया या नहीं, यह मैं नहीं कह सकती। महात्माजी धीरे-गंभीर स्वर में बोले —"हाँ"।

तुरत माँ बोलीं—' पिताजी के साथ बच्ची की यह बात तब पक्की हो गयी।"

माँ के मुँह से यह बात सुनकर हरिरामजी और मैं एक दूसरे का मुँह देखने लगे। माँ के मुँह से अचानक ऐसी बातें क्यों निकलीं ? क्या महात्माजी का समय पूरा हो गया है ? हरिरामजी उसी समय कुछ कहने जा रहे थे, पर मैंने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

बरामदे की बत्तियाँ बुझा दी गयीं। इसके बाद हमलोग चुपचाप सो गये। सेविकाएँ धीरे धीरे चली गयीं। मैं माँ के पैर के समीप कम्बल बिछा लिया। गांधीजी के अलावा अन्य किसी पुरुष को यहाँ सोने नहीं दिया जाता। महात्माजी के आज्ञानुसार परमानन्द स्वामी, अभय और हरिराम के लिए अन्यत्र सोने का प्रबन्ध किया गया।

रात १० बजे के बाद परमानन्द स्वामी और अभय हमलोगों का सामान तथा माँ का खाना लाये। माँ हल्के कदमों से उठकर आयीं और दूध-साबूदाना पीकर चुपचाप जाकर पुनः महात्माजी के बगल में सो गयीं। हम लोग किसी प्रकार आवाज न करें, इस बात की चेतावनी देती गयीं। मैं चुपचाप जाकर अपने बिस्तर पर लेट गयी।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भोर चार वजने की घण्टी वजते ही महात्माजी तथा अन्य सभी लोग जाग गये। मैं कुछ देर पहले उठकर सामान ठीक-ठाक कर रही थी। महात्माजी ज्यों ही उठे, त्योंही एक सेविका उनके मुँह धोने की सारी सामग्री ले आयी। मुँह धोते वक्त महात्माजी ने माँ से पूछा—"खूब आराम से सोई थी ?"

माँ इस प्रश्न का जवाव न देकर वोलीं—"जो होना था, वही हुआ।"

माँ तो हम लोगों की तरह नहीं सोतीं, यही वजह है कि इस वावत कोई और सवाल न हो, इसलिए इन वातों को माँ ने स्पष्ट रूप से दवा दिया। कम से कम ऐसा अनुभव करने लगी।

माँ के रवाना होने का समय आ गया। जानकीवाई जल्दी से आकर वोलीं—"अभी सब लोग मिलकर प्रार्थना करेंगे, आकर देख जाइये।"

महात्माजी ने तुरत जवाव दिया—"प्रार्थना में शामिल होने पर गाड़ी छोड़ देनी पड़ेगी। अगर गाड़ी पकड़नी है तो प्रार्थना छूट जायगी।"

माँ धीरे से वोलीं—"पिताजी की बातें न जाने कितने लोग सुनते हैं और यह पागल लड़की, इतना समझाने-बुझाने पर भी बात नहीं मानी इससे पिताजी नाराज तो नहीं होंगे ?"

महात्माजी ने मृदु मुस्कान के साथ कहा—"इस वात की परवाह तुम्हें कुछ है भी ?"

माँ ने हँसकर कहा—"अगर कहीं ख्याल हो गया तो स्वयं ही आकर पिताजी के कमरे में घुस पड़ूँगी, कहिए पिताजी ? दिमाग जरा यूँ ही सा है।"

महात्माजी ने कहा—'हाँ" चोर-डाकू ऐसा ही करते हैं, देहरादून से एक ऐसा ही आया। क्या करूँ ?"

आनन्द के साथ हँसती हुई माँ वोलीं—"वाह ? पिताजी ने तो चोर-डाकू तक बना दिया। अच्छा ही हुआ। पिताजी आपका सब कुछ चुरा लूँगी। 'चोरी करनेवाली' यह तो अच्छा नाम है।" इतना कहकर वे हँसने लगीं।

"ऐसी 'चोरी करने वाली' मिलती कहाँ है ?" महात्माजी के मुँह से धीरे-धीरे यह बातें निकलीं।

गत रात को कस्तूरबा एक बार आकर माँ को प्रणाम कर गयी थीं। वोली थीं—"मेरा वड़ा भाग्य है जो आपका दर्शन कर सकी। आप का दर्शन करने की मेरी बड़ी इच्छा थी।" सेविकाएँ उन्हें सहारा देकर भीतर ले गयीं। कस्तूरबा भी इन दिनों अत्यन्त अस्वस्थ हैं।

रवाना होने का समय हो जाने पर माँ महात्माजी तथा अन्य लोगों से बिदा लेकर रवाना हो गयीं।

स्टेशन आने पर ज्ञात हुआ गाड़ी काफी लेट है। माँ के साथ जानकीबाई, कमलनयन, शान्ती बेन, महात्माजी का भतीजा और दो-तीन व्यक्ति आये थे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गाड़ी आने पर जब माँ सवार हो गयीं। तब जानकीबाई सें बोलीं—"बापूजी से कहना कि अब तो अपने घर जाने का वक्त हो गया है। तैयार रहने को कह देना।"

कल की उन्हीं बातों को पुनः माँ के मुँह से सुनने के कारण हम अवाक् रह गये। जानकीबाई भी माँ की बात समझती हुई बोलीं—"सचमुच ?' माँ तुरत इस प्रसंग को पलट देने के उद्देश्य से बोलीं—नहीं नहीं अभी यह बात नहीं कह रही हूँ, पर उम्र तो काफी हो गयी है।" इतना कहकर माँ चुप हो गयीं।

वर्धा से चलकर हम नागपुर पहुँचे और शाम को गाड़ी से हम लोग सागर की ओर चल पड़े।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Just as there is a veil of ignorance for the individual,
So there is also a door to Knowledge.

Matri Vani

Be it meditation (*dhyāna*) or the repetition of a mantra (*japa*)—engage in some practice of this kind. Try to keep your mind on God. The impressions and dispositions developped in countless lives act as a cover of ignorance veiling the true nature of things; endeavour to get rid of that screen.

* * *

Desires and cravings make up the contents of your subtle bodies. Just as the scent of a flower goes and comes, such are your births and deaths. Again, from another angle of vision, there is no birth or death at all. When the physical body is dead, those desires and cravings, that subtle body, float about shelterless—and then man is born again according to his karma. The ego or Iness which is studded with desires comes and goes, while for the *Ātmā* there is no question of coming and going. Man has a gross, a subtle and a causal body; the root-cause of the causal is the *Ātmā*. Until this is realized there will be birth and death. The *Ātmā* is self-effulgent. Coming and going exist only for the individual. In order to realize your Self, you have just to remove the curtain.

* * *

There are many actions as the result of which one goes through great suffering after death—one is not saved. From darkness one has to proceed into deeper darkness.

* * *

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

In the *śāstras* it is said: "Do not utter unpleasant truths." Who are you to lecture to the whole world? Why should they listen to your words? If you have the power to make everyone listen to what you say, then only will speaking be fitting and right. Otherwise your mind will become distracted and your *sādhana* obstructed.

* * *

When you watch a show at the cinema you do not feel sleepy. Entertainment keeps the mind engrossed and sleep does not supervene. From the exertion during the waking-state one rests during sleep. In deep sleep man goes to his true Being under the cover of ignorance. Where there is the unveiled revelation of one's true Being, the question of sleep does not arise. In the measure as the practices and the intensity aiming at that state of unveiled revelation gain in momentum, the necessity of sleep will diminish.

* * *

The purpose of ceremonial worship (*pūjā*) is the revelation of the Beloved (*Iṣṭa*). For the sake of finding oneself, for Self-realization should be worshipped He, at the worship of Whom the question of non-duality and duality does not arise. To perform *pūja* for the sake of God is disinterested worship (*nishkāma pūjā*).

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Sri Sri Mataji's Amara Vāni

(REPORTED BY BRAHMACHARI VIRAJANANDA)

September 16th, 1950.

Question : What in essence is *viraha* ?*

Mataji : In this world of coming and going there is always a lingering sense of want. This sense of want, of lacking something, of not knowing, produces sorrow. Because there are two : one has not got what one wants, one desires fulfilment. And when one gets it, what happens ? There is happiness. When the lost son has been found there is great rejoicing—from the point of view of the world one feels delighted, contented, satisfied. On the level of obtaining and not obtaining, real *ānanda* does not exist and neither does *viraha*. What kind of happiness is it then ? The happiness of the realm of want. Why ? What has been received, what has been fulfilled belongs to the world, is within the movement of the mind. Here the sense of want will appear again. One has no son and therefore feels sick at heart; when he is born one is jubilant. But this cannot last, the sense of want will spring up again. The *ānanda* of the world, the opposites of happiness and pain belong to the realm of want. So long as one has not found that which, when found all is found, where no question of receiving or not receiving can arise, until then it is but natural that the desire for God-realization should remain kindled.

What belongs to man's true nature (*svabhāva*) ? By realizing God everything is realized. When God with form and attributes becomes revealed, what is experienced ? Union. At first one is unable to find Him. Then, after having engaged

---

* *Vivaha* Separation from one's object of love and adoration.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

in *sādhana* with great steadfastness and perseverance, God reveals Himself. Now there is perfect bliss, fulfilment. This is why the *bhakta* says : "I want to taste sugar and not to become sugar."

So then, what happens ? Having persevered in *sādhana* for a long time, the Lord in His mercy appears and says : "What do you want ? You may choose a boon." The *sādhaka* replies : "Whenever I wish to see you, grant me your *darśana*." "Be it so". With these words the vision fades away. The aspirant is blissfully happy, for as soon as he desires the presence of the Lord, He appears before him. His sorrows are over. One day the *sādhaka* says : "Do not leave me any more, remain with me constantly." This also is granted. The Lord remains with him. Day and night God is present. The *sādhaka* is immersed in bliss. And what is the outcome of this ? One day, the thought occcurs to the aspirant : "When the Lord did not show Himself to me, I was yearning for Him desperately. Now this is no more so, but I miss that yearning." So he prays to the Lord : "Give me again that intense longing that I felt in your absence." It is granted.

With regard to this, something has to be made clear : Having found God, one has of course realized what He is. The yearning one felt before finding Him is one kind of *viraha*, but the *viraha* that is experienced after having found Him is the genuine *viraha*. One has already found Him, yet His absence is experienced again. The union and the separation of the world belong to the level of want. But the *viraha* after having found God is an expression of one's true Being (*svabhāva*). To find means to become. Having become one with Him, yet distinct from Him, signifies the Realization of God Himself, Self-effulgent. For this reason, the state of *viraha* is regarded as an advanced state, since full Revelation has already taken place. You have returned to the sense of the want of Him, but you have found Him. Thus one speaks of the Lord's servant—of the perpetual

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

servant, of perpetual revelation, prepetual *līlā*. In this there can be no death.

The individual (*jīva*) is the everlasting servant of Lord Krishna, what does this signify ? The *jīva* who is by his very nature bound, has been bound to God. Tied to the Eternal, he has thus become His eternal servant. Where God stands revealed, how can there be *māyā* ? What does '*yogamāyā*' signify ? Refuged in His own *māyā*, He reposing within Himself.

Question : In what does this *viraha* result ? Will there be no more union ?

Mataji : The union in separation, the experience of His absence—this is God Himself. Once found and then again without Him—this can never be. Thus separation and union are one and the same thing. Once the bliss of the Self, the *Ātmā* has been realized, one can no more speak of awareness and forgetting. He is eternally revealed as *viraha*. Separation does not exist, as such He is ever present in separation which actually is union. As the feeling : "He is not with me !" He is ever present.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mātri Satsang

SWAMI BHAGAVADANAND GIRI

(*Translated from Hindi.*)

January 21*st*, 1948.

Question: If constant change is the law of the world, what can be gained by performing a *yājña* (fire sacrifice ?*)

Mataji: In *prakriti*, creation, preservation and destruction go on at all times. The whole universe is being maintained by God. But people have no direct experience of this. If they could see God, they would know by first hand knowledge that everywhere there is God and God alone. Just as there is water in the waves of the ocean and the waves are in fact nothing but water. But when one's attention is focussed on the waves, one does not see the water and when it is focussed on the water, the waves are not noticed. What appears, depends on one's way of seeing. Just as there is the natural (*prākrit*) world, there is also the supernatural (aprākrit) world. *Prakrit* implies constant change and therefore it is transitory. Take for example a flower: it is ever changing, ever in a state of development. Transition is its very nature.

All good actions are oblations. Everything that happens in the world is in essence sacrificial offering. He who was first a child, then grew into a man, in his old age he gets ready to be sacrificed to death. What actually is fire ? Fire is present in eyeryone. There is no difference between the fire you see before you and the fire within you. The daily act of eating food is in fact also an oblation. Everything is sacrifice in essence. The whole universe is kept going by

---

* The questioner obviously refers to the great *yajña* performed in our Varanasi Ashram from 1947-1950.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

sacrifice. What does *ahūti* (oblation) mean ? An act of sacrifice to God. Sacrifice yourself to God. How ? Lay your animal nature on the altar to be sacrificed. Give your head to God. By offering one's head to God, one finds everything. To give means to become. In ancient times the Rishis would produce rain by vedic mantras. A violent storm also could be appeased by mantras. Whatever the Devas were lacking was supplied to them by mantras. Just as we experience satisfaction when eating, so do the Devas experience satisfaction when *yajñas* are performed. A light can be lit by kerosene as well as by fine oil. Fire is potentially contained in wood, but without igniting it, food cannot be cooked. A yogi may of course prepare food even in a wooden vessel. Water also may become an oblation. Some men advance towards their goal by bullock-cart, others by train, and yet others by aeroplane. If by chance the train or aeroplane meets with an accident, the bullock-cart may reach earlier. Sacrifice in going on at all times. The Rishis enjoined on men to perform *yajñas* for various purposes. When you do *pūjā*, why do you put a garland of fresh flowers round the deity's neck ? Why don't you rather offer a garland in thought ? If the physical body is not given physical food, how will it thrive ? Therefore there is need of material oblations also. By offering such oblations again and again, inner oblations are produced. Yogis can live also without eating. How ? Because the energy that is necessary to sustain the body can be generated by their yogic power. They do not require any material substances. There is something else to be said regarding this. The five elements of ether, air, fire, water and earth are present in every one of you. Each of them is closely connected with each of the others Just as one official meets another, so the elements are related to one another. Some people perform *havan* (fire sacrifice) for a particular purpose and some just for the love of God. Material oblations are offered at those sacrifices. But if someone does not feel inclined to do this, he may offer oblations in

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

thought. When doing physical *pūjā*, it is necessary to do mental *pūjā* simultaneously. Only by becoming one with the object of one's worship can *pūjā* be effectively performed. By identifying oneself with the adored, real *pūjā* comes about. Mentally sacrifice your all at the Lord's lotusfeet.

If for example if today you decide to cultivate the soil, you will first buy land, then sow the seeds and later the crop will be harvested. First of all the decision was taken by the mind. By the cause the effect is created. In the Vedas there are definite rules according to which various substances are mixed together and offered as oblations in the sacrificial fire. All those substances are accepted by the Devas. If you have made up your mind to give a donation to someone, you should certainly do so.

Some people say that meditation and *japa* cannot be accomplished by the mind. Start meditation and *japa* with your mind. There are great yogis who can create any kind of thing by thought power. Therefore start meditation with your mind. If you continue faithfully and regularly, a time will come when God will appear to you face to face. By the sustained adherence to such a concrete practice, God finally reveals Himself. Therefore people also offer oblations to something concrete. *Nāma-Kirtana* is also called "*Nāma Jajña*" by some. Whatever happens, constantly changes. Everything is replete with sacrifice.

Swami Sharananandáji : Fire has the capacity to transform material things. It makes them pervasive.

Mataji : What the *Sāstras* say, you people know.

Suppose someone has made accounts with meticulous care, but has forgotten to write down one zero. The entire account becomes thereby wrong. Because of one single zero all his labour has turned worthless. In one grain of sand the whole universe is contained potentially. The drop is in the occan and the ocean in the drop. Everything that is true reveals Truth.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Question : What is a *mudra* ?*

Mataji : How are *Mudras* connected with *pūjā* ?

Swami Sharananandji : *Mudra* is a part of *samyam* (self-mastery).

Mataji : It leads to self-mastery. *Mudras* and *pūjā* are connected. When the entire worship becomes real worship, then *mudras* come about. When Sri Krishna was teaching Arjuna, which *mudra* did he assume ?† Every person at all times shows some *mudra* or other. Why ? The *mudra* is an expression of one's mood and attitude of mind. The pose one takes on depends on one's state of mind. Just as the *Jñāna mudra* (the tips of the thumb and the first finger join and form a circle) is a *mudra*. While performing ceremonial worship, one's poses (*mudras*) come about in keeping with what one feels and thinks. By identifying oneself with the deity He is worshipped. There are many kinds of poses (*mudras*). Movement is contained in stability and stability in movement.

The variety of *mudras* is infinite. *Mudras* and *āsanas* are connected. There is a special *āsana* even for taking one's meal. Weakness also is expressed by a particular pose. By looking at the posture of a person one can detect what is going on within him. The *āsana* and the *mudra* occur jointly. When someone thinks of sense objects, his pose and expression undergo a change. The number of *āsanas* as well as of *mudras* is infinite. When the brain is disturbed everything goes wrong. When feeling shy in the course of conversation with someone, one's hand at once starts scratching one's head. *Mudras* and *āsanas* correspond to each other. Try to awaken within yourself the deity whom you

* *Mudra* Particular pose of the body as a whole or of its parts, representing the expression of a particular *deva śakti* (higher natural force). Without that pose that particular *śakti* cannot function.

† The *Jñāna mudra* (gesture of knowledge).

2

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

are worshipping by *mudras* and *āsanas*. What a beautiful pose Lords Krishna assumed while instructing Arjuna !

At that moment the clock struck 10.

Mataji : This is called "ten o'clock." There is timelessness in time and time in timelessness. One must go beyond time.

Question : Is it really possible to go beyond time ?

Mataji : Yes, it is. Time and space can be transcended. They exist only in the realm of *Prakriti*.

Question : Time means change, does it not ?

Mataji : In *prakriti* there is constant change—the world is nothing but a play of time. (Mataji laughs heartily). Not everything can be uttered at all times. Occasionally some scrap of knowledge issues forth of its own accord.

Question : What happens ?

Mataji : What is meant to happen anywhere, happens.

Swami Sharanananandaji : There are two kinds of instruction : One is of Reality Itself and the other suited to the propensities of the aspirant.

Mataji : If you talk about giving instruction—this body does not know how to give instuction. It simply converses with its fathers and mothers. The children are all my friends. Everywhere is only the home of the ONE. This body does not feel timid in the least when talking to its fathers and mothers. You all are this body's fathers and mothers—its everything. The ocean is contained in one drop of water. Everything is contained in everything. Thus this body does not go to anyone's house, does not eat anyone's food. Neither does this body give instructions or orders. Don't you talk to each other ? From what this body says, take that which leads to your ultimate good, not what is merely pleasing. This body is like a musical instrument. As you play, so you hear the sound.—Now, Govinda, start the *Kirtana* !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mataji and the Cosmic Elements

R.K. Banerjee

Mataji's unique mastery over the forces of Nature is just one fact of her *śakti*, with which almost all who have come in close contact with her, could not fail to have been deeply impressed.

The purpose of this article is to illustrate this aspect of Mataji's personality by relating certain incidents which have either come to my knowledge directly or have been communicated to me first hand by reliable witnesses.

Among the subjects controlled by her may be listed the weather or local climate, wind, rain, waters, including those of rivers or oceans, fire, the skies, the sun, the moon, plants such as trees and flowers, and animals such as dogs, cows, snakes, goats, and so forth. Human beings are being purposely omitted for the moment.

Many instances of Mataji's use of sacrificial fires have been described in the several volumes of Mataji's life as published by Didi Gurupriya Devi, which show the close and sacred association Mataji enjoys with Nature's prime force, Fire. I was privileged to witness a most wonderful incident at Agarpara that shows how Mataji could literally summon *Agni Deva** himself to obey her command, when circumstances so demanded.

The occasion was the inauguration of the *Yajña Shala* at the Agarpara Ashram. The original embers of the sacrificial fire had been brought with great care from Varanasi, and imbedded in the smouldering ashes of the new *kunda*, but when the actual moment of inauguration arrived, all the efforts of Batuda and Nirvananandaji and other Brahma-

---

* God of fire.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

chari priests failed to ignite the fire properly. We were all crowded round the new building situated on the bank of the Ashram pond and some distance from the temple. I fortunately had a window view from the west.

Suddenly I saw Mataji rise from her seat inside the *Yajña-shāla* by the side of the *kunda*, with an unforgettable determined expression on her face. She came round to stand beside Nirvananandaji with her back towards me, facing east, and did something with her hands that I could not exactly follow. Immediately, with a terrifying roar, the flames shot up from the smouldering embers to the full height of the tapering roof of the *Yajña shāla*—just once—and thereafter went down to burn with a steady normal flame inside the *kunda*.

Stunned, I had fallen back momentarily with fright but soon realized how Mataji had actually evoked *Agni Deva* to appear in person to carry out his pre-ordained part in our *yajña*.

The incident remained so deeply imbedded in my mind that I must have been unconsciously pondering over its miraculous nature during a journey to Ranaghat that I undertook soon after by car in Mataji's august company. During this long drive, Mataji of her own accord elaborated on the close connection between herself and sacrificial fires by relating an episode that took place when she toured the Chittagong hills a long time ago. She then clearly saw the *yajña* fires in the Siddheshwari Kali temple in Dacca practically in the process of dying down and, *Agni Deva* himself appearing in person before her, asking for a fresh lease of life through her personal intervention. This request was graciously granted, and led to the gradual introduction from this original to the permanent sacrificial fires in several subsequent Ashrams.

The seashore near our Puri Ashram has more than once proved to be the scene of demonstration of Mātaji's

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

control over the seas, wind and rain. I have heard first hand accounts of how the waves came and touched her feet while she happened to be walking along the shores at a point when normally there was little prospect of the waves reaching shore walkers.

Before the Jagannath car Festival in 1965, Sri Haribabaji Maharaj was staying at the Ashram as Mataj's guest, *Rāsalilā* used to be performed daily on the beach in front of the Ashram under a hurriedly constructed canopy to keep out the sun. Each morning it started punctually at 9 A. M. and ended around noon-time. One morning heavy rain accompanied by a gusty wind started at about 7-30 A. M., with the result that the canopy broke down and the site of the performance became exposed to the elements. In spite of the herculean efforts of Swami Paramananda and others, it did not appear that the canopy could be re-erected by 9 A. M. neither was there any prospect that the rain would stop.

At 8-45 a. m. Mataji suddenly came out of the Ashram and walked in the rain for a few minutes on the sea-shore. The rain diminished abruptly and ceased entirely by 8-59 A. M. so that in the absence of sunshine it was possible to commence the *Rāsa Lilā*, while the canopy was refitted before the sun came out, by which time the wind had dropped conspicuously.

Many are aware that on important sacred festivals, contrary to the forecasts of weather prophets or meteorogical stations, gentle benevolent showers are experienced near our Ashram premises, or wherever Mataji happens to be residing, or even in her absence wherever functions are held according to her wishes, as a portent of benediction from the heavens. For instance, at Vrindaban, on the day Sri Chheliya Krishnaji with his consorts was carried out in procession before the inauguration of the temple and the installation of the deities, the skies became overcast and the many hundreds of processionists on bare feet were afforded the

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

clemency of gentle rain at intervals, providing them welcome relief both on the soles of their feet as well as overhead. Many other instances, may be recalled when Mataji has induced the heavens to open up in a shower of merciful blessed rain to grace special festivals, quite contrary to local weather forecasts.

Mataji's mystic power over river waters can be high lighted by the classic example of the control of the Gomati floods when the *Samyam* and *Bhagavata Saptahs* were held at Naimisharanya some years ago. On that occasion because of late rains the Gomati river was in high spate in late October and early November. Lucknow was cut off on all sides, the Gomati water had risen several feet and the site of our camp at Naimisharanya was completely under water even ten days before the date of commencement of the functions.

All the U. P. Government Officials concerned, including the Chief Secretary and Chief Conservator of Forests, who had so far ably supervised the camp construction, installation of lights and various allied works, went into complete despair and gave up all hope of keeping to the programme. Swami Paramananda alone battled on against superhuman odds, unshaken in his belief that, as Mataji was fully aware of the dates of the functions, the programme would be adhered to in due course and all obstacles would disappear.

And so it was. Many of you know that staying as she was at the Kishenpur Ashram of Dehradun, Mataji when informed of the crisis at the Naimisharanya camp site asked for and drank a glass of water like Agastya Rishi of yore as related in the *Puraṇās*. Lo and behold, thereafter the Gomati waters receded in a hurry and Swamiji had to engage an army of additional labourors to clear and prepare the camp site after rapid withdrawal of the flood waters. When I arrived at the camp during the last days of the *Samyam Saptaha*

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

none could have guessed that the whole area had been under water barely ten days earlier.

Two instances of the finding of lost articles in river waters come to mind. Our venerable Sri Arun Prakash Banerji of Allahabad, once wandered into the Ganges under the Rishikesh hills for a bath, while residing there with Mataji, and lost his keys in the process. On becoming aware of his loss after sometime he returned to the river bank without remembering the exact location, yet to his amazement, he discovered the keys as soon as he started to grope blindly under the waters.

The stay of Udasji's now famous *Narayan Sīla* being discovered in the Jamuna waters at Vrindaban under similar circumstances, may also be cited in the same connection.

Once I had the good fortune of staying at Vindhyachal when Mataji was resting there quietly with a few devotees. Luckily for us, a full moon was due to appear during the few days we were there and, like many others, I experienced an earnest yearning to sit with Mataji in *satsang* in the stillness of the night, with nothing to break the quiet except flooded moonlight all arround us. That evening of all evenings, dense and dark clouds gathered over the horizon and by 8 P.M. the skies were completely overcast. I was sorely disappointed.

The late revered Kalida was in residence nearby and was due to appear before Mataji at 10 P. M. We were all sitting quietly around Mataji on the first floor veranda in the dark after 9 P. M. and sure enough a fresh breeze sprang up which soon blew away all the dark clouds and the whole area was flooded with brilliant moonlight by the time Kalida arrived for his *darśana*. I was profoundly grateful to Mataji for granting us our carnest desire in her all-embracing and loving mercy.

When Mataji wishes to be quiet, have you, dear reader, not noticed how she can cast her spell over all the elements

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

around her to bring about an unearthly peacefulness? I have seen her do this times without number; when sitting out in the open on the paved circular platform at Vindhyachal of an evening or near the seashore at Puri, or on the open roof of the 3rd floor of the *Kanyapith* at Varanasi or on the open terrace of the Kishenpur Ashram or in the courtyard of the Almora Ashram in front of Bhaiji's *samādhi*. When she desires to be silent hereself and commune with our thoughts singly or jointly, or influence our thought processes simultaneously in a *mouna* gathering, she makes sure that Nature herself in our vicinity is quietened and stilled, lest our meditation be interrupted by extraneous contacts through the senses. On such occasions invariably the weather turns favourable; if the sun is hot, clouds are sure to cover it; if it is warm, a soft breeze may spring up; if it is rainy, the rains cease suddenly without any visible reason; if it is very cold the wind drops so that it is not uncomfortable, chilly for us; if it is too dark the moon appears. In fact Nature herself is all attention to carry out the behests of her Creator.

Turning now to plants, Mataji can literally see through trees, right into their souls, so to speak. In *Vaiṣnava* literature, the trees and creepers of Vrindaban have besn described as ex-devotees of Lord Krishna, thus paving the way for Sir Jagadish Bose's researches several centuries later. The story of Nalakuber and Monigriva immediately comes to mind. In our Ashram in Vrindaban stand a similar pair of neemtrees in a location which Mataji has named "*Śrīkunja*" to the south of Sri Chheliya's temple. Here, even on the hottest dav, the wandering pilgrim can find rest, shelter, shade, comfort and coolness. These trees seem to have blossomed out anew since Mataji has founded the Ashram. One day perhaps she may tell us the full story of these byegone devotees, who perhaps are now eking out their predestined existence by standing up tall and straight in a spirit of service in our Ashram.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

In the courtyard of the Varanasi Ashram, between the *Yajñashala* and the *Chandi Mandap*, there is a flourishing Atanda shrub, which has come under the spell of Mataji's mystic influence more than once in the course of time. The large peepultree outside the Vindhyachal Ashram certainly has an air of mystery. Few people indeed dare to sit below it after dark and legend has marked the tree as the abode of spirits. But Mataji can see through its soul and can provide the explanation for its existence.

During Mataji's birthday celebrations in Ranchi in 1965, I was present among the large assembly in the *Nāt Mandir* while kirtana was being performed, when Mataji suddenly twice looked in a peculiar manner towards an open window leading out into a courtyard outside our compound, and beckoned to someone to silently close the window. She explained afterwards that she had seen a disembodied spirit clad in white robes, stand with folded hands and look into the *Nat Mandir*, apparently joining in the *kirtana*. It was ascertained afterwards that the *sāmadhi* of a fakir was underneath that tree.

During Mataji's earlier visits to Naimisharanya, before the present Ashram site was acquired, she used to stay in the *dharmaśāla* of Sri Pragnarain Saigal, situated near the bank of the Gomati. There was a tree in the compound, practically withered away, when Mataji one day broke a piece of stick from the dead branches and asked that the twig be replanted. This twig has developed into a flourishing tree. Thus there is a close parallel between this story and the story of the Siddha Bakultree in Puri, which grew out of a twig used as a tooth brush for Lord Jagannath and was later planted by Sri Krishna Chaitanya Deva in the gardens adjoining his residence. Under this hoary tree, which still stands to-day although hollowed in the centre, sat Thakur Haridas doing his daily three lakhs of *Nāma kirtana*; and it was under that tree that he gave up the ghost in the arms of his beloved Lord, with the sacred name

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

on his lips, with his eyes gazing at his Master's face and with his hands clasping his feet.

So far as Mataji's influence on flowers is concerned, many instances may be cited by others, but mention must be made of the garland of java flowers discovered by Bhaiji in the Chunar hills on the instruction of Mataji. In our own garden there is an Asoka tree that suddenly broke out into a profusion of flowers, out of season, when Mataji first stayed in the garden kutir for three nights several years ago. She once gave me a garland of marigold flowers when I was taking leave of her at Vrindaban and this garland withstood the long hot journey from Mathura to Calcutta and remained fresh for a week after arrival in Calcutta. Similar must be the experiences of many others who have either offered flowers to Mataji in worship or been given flowers as *prasāda* from her hands.

Mataji's strange influence on animals must have been observed by those who have seen her with cows, goats, snakes, etc. I have often noticed how cows are drawn to her like to a magnet, especially in Vrindaban, as in the days of Lord Krishna to Him. Even during the recent *Bhagavata Paksha* at Naimisharanya, I saw a cow suddenly ignore everybody else in the street outside our Ashram and go straight to Mataji sniffing at her and ready to lick her body. Swami Akhandanandaji Maharaj and I were standing close by. The whole incident was over within a few seconds, according to Mataji's wishes, without many others in the vicinity realizing what had happened. Mataji's complete control over cows and bulls has also been observed when she walks along the Ashram lane at Varanasi.

There are several stories of her control over snakes, the one described by Didi while Mataji was walking along the forests on top of Vindhyachal, and another at Raipur in connection with Swamiji, both well known. More recently, at Kishenpur, during the last Durga Puja celebrations, there was a narrow escape of young Madhava from the king-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

cobra that frequented the jungle below the old Panchavati, now in the compound of Mr. & Mrs. Khaitan. The next morning Mataji expounded this mystery in her room in her new residence there in her own inimitable way.

Bhaiji has clearly brought out Mataji's supernatural power over goats in his vivid description of the goat sacrifice during the Kali Pūjā performed in the Shahbag gardens in Dacca.

Mataji's absolute mastery over the Elements under varying conditions, to suit the requirements and needs of devotees, has only been scantily illustrated by these few anecdotes. Feeling sure that there are many other far more appropriate examples known by personal experience to readers of Ananda Varta, I would beseech them to come forward with their own stories in the near future.

I sincerely believe that such an exchange of authentic information would be of inestimable benefit to us all, not only in providing a permanent record of inspiring literature closely associated with Mataji, but also in enabling us to comprehend to a limited extent the innumerable facets of her incomparable, inscrutable and super human personality.

May she, in her countless mercy, continue to permit us to catch glimpses of her divine Līlā for many, many years to come, in spite of the ever increasing impetus of Kali Yuga.

"Jai Ma."

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The Blissful Witness

JAINATH KAUL, M.Sc.

Let us talk of the *Atmā*—the blissful witness. Saints tell us, and our sacred books are also full of the glory of the source of things. In reality, they say, there is only this infinite, imperishable, unseen, self-luminous, unchanging, stable, immaterial, supra-mental, all-knowing, conscious, all-powerful oneness of ANANDA. This is all, and there is nothing else besides it. If so, then what is this colourful material multiplicity of name and form? What are these thoughts and emotions, the unending array of breathing contraptions, the endless chatter and activity of generation after generation of created entities? What are these desires and ambitions—pleasure at their fulfilment and disappointment in failures? What are the worldly attachments—the satisfaction and enjoyment of companionship of the loved-ones and the revolting reactions to ingratitude and cheating and falsehood? In short, what then is this marvellous changing pattern of our environment? Who are we: where do we come from, and where do we go? These thoughts and others, particularly those which make life seem meaningless, are disturbing. A child is born as we were born; it grows and develops; then stops growing and starts decaying; becomes infirm and helpless and deprived of vigour—a mass of useless bones, flesh, skin and blood—and finally ends up in smoke and ashes. These are facts of life, and when we reflect upon them, we get a jolt in our daily humdrum and routine of life. We see no light and are not inclined to keep our minds on these facts. We find it easier and more comfortable to escape and not to dwell upon these disturbing thoughts. WHY?

Because we are prisoners. The prisoner has forgotten his freedom. He has begun to hug his chains of slavery, the

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

inertia, the dulling and deadening comfort of inactivity, instead of vigorous, joy-giving activity of planning, execution and achievement. So we are afraid of our own thoughts which beckon us to the region of Love, Light and Joy—uninhibited, fearless, immeasurable—the super-intelligent void which IS and which drowns all the multitudinous appearances.

What is our basic urge in the midst of change and death ? Happiness—unalloyed and unbroken. Why ? Because that is our inheritance. Because we are That already. We are, in truth, personifications of JOY. We do not have to get it from somewhere. No. We have only to uncover it by removing the cloudy, muddy or smoky soot of the false and unreal non-existent world of thoughts and emotions in which we have entangled ourselves. But we enjoy these thoughts and emotions. They give us a feeling of security, of pleasure, and we see nothing beyond. The world has a form and content which our mind and senses apprehend and we like to spend our time and energy in losing ourselves in the round of these petty and transient pleasures. And the more we do this, the farther we get from discovering the HOME of TRUE Happiness, the goal of human urges and longings. We must understand clearly what it is that we want, what it is that can give us complete satisfaction, and then with courage and full faith go after it.

The method is simple. Fill your mind, again and again, with the lofty thoughts about the basic Reality. Pray unceasingly and believe that you are the children of immortality. As Mataji says, this appearance, this unreal world 'will either get burnt down by *jñana*, or melt by the fire of *bhakti* and then 'you' alone for the *jñāni* or 'He' alone for the *bhakta* will remain. How ? Like the dream when the dreamer stops sleeping and awakens; so this world which torments and makes us oscillate between temporary periods of pleasure and pain, of hope and disappointment,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

and makes a shuttle cock of us with our likes and dislikes, will DISAPPEAR completely, or to begin with, temporarily, at least during periods of deep reflection when we try and succeed with God's help to get immersed in our TRUE BEING–the CORE OF OUR BEING–the GOD WITHIN–the ONE unmanifested cause of everything beyond the senses, beyond the lower mind of emotions and, finally, even beyond the discriminating faculty of the intellect. In the great silence, we find ourselves. In losing our petty existence of petty thoughts and emotions, we discover our true SELF, *ATMA*, the blissful witness.

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The Upanisads and Life Divine

(Eternal Religion)

(1)

Divya Darshi

Institute of Culture and Prayer (Chander Nagar)

The Upaniṣads represent the Divine Life which inspired the Vedic seers from the dawn of human civilisation and the realization of which made them declare to the world :

वेदाहमेतम् पुरुषमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

'Vedāhametam Puruṣam Adityavarnam Tamaṣa Parastāt.'

"I know the supreme truth of Being which is resplendent like the sun and which is beyond darkness." Seers discovered the ultimate truth of human life; they declared that man is nothing but a particle of Immortal Bliss. They invoked the spirit in man and cried out in joy :

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः ।

"Oh you men of the world; you are the sons of the the immortal." Indian seers have put down their experiences of the Immortal bliss in the Upaniṣads. Divine life here will inspire man always to see where the ultimate end lies of this ephemeral existence on earth.

The Upaniṣads are the fountain-head of Indian spiritual culture. They form the pinnacle of the religio-philosophical thought of India. They have occupied an exalted position, informing and inspiring the spiritual life of Indian people. Their soul-elevating message has uplifted and transformed hundreds and thousands of men and women and transported them to a realm of supreme bliss and beatitude beyond all human comprehension. The Upaniṣadic truths are outpourings from the hearts of perfected souls who had a vision of Reality face to face. The voice of the Upaniṣads

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

speaking through the sages of dim antiquity has come down to us through the corridor of time undimmed and full of vigour.

It is because the Upaniṣads preach the eternal religion (*Sanātana Dharma*) to mankind. The Upaniṣads are an impressive record of vivid experiences of spiritual illumination in human life. Unless it is clear to us what is the significance of the term 'eternal religion' or *Sanātana Dharma* and its uniqueness, it is difficult to appreciate the picture of Divine Life that is enshrined in the Upaniṣads which are also called '*Srutis*' or *Vedanta*. Paticularly in this modern age where the progress of science and social knowledge of human history has far advanced; when man refuses to accept anything on the basis of authority only; when man has developed a habit of rational investigation in every aspect of human knowledge, it is quite natural that man may desire to apply the same test to spiritual understanding also. In this respect the Upaniṣads have a special message for the ears of enlightened humanity bewildered by the material progress of human civilisation.

The Upaniṣads are the only sacred books that occupy themselves exclusively with the discovery of essential spirit tual truths and are leading man irrespective of creed and race to realization in his own life. Indian tradition refers to the Upaniṣads therefore as *Śruti* as contrasted with another class of religious literature known as *Smṛti*, including the *Dharma Sāstra* to which it wisely left the work of forging social rules and regulations in the past, as it would leave it to the political constitutions and social sciences to day. To the category of *Smṛti* also belong the sacred books of all the historical religions which derive their origin and authority from a personal founder. Thus among India's sacred books, the Gitā, Mahābhārata, the Rāmāyana and all the Purānas are classed as *Smṛtis*, besides *Manusmrti*, *Yājñavalkya Smṛti* and similar other books. *Smṛtis* come and go; they change age after age, but *Sruti* according to the penetrating analysis

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

of Sānkara contains *Vastutatva jñāna*—'knowledge of reality as it is, (Brahma Sutra 1.1. 2) and as much it stands the test of time and history. Whereas *Smṛti* contains *Puruṣatatva jñāna* (knowledge depending on the person)'– which can be modified or altered by human effort.

कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् ।

A *Smṛti* that sustained society in one age may choke it in another age. As socio-economic conditions change, laws and regulations need to be recast and re-interpreted. Otherwise they result in strangling the social organism. If the bark that protects the tree fails to grow and expand along with the growth of the tree it will choke the tree. A living tree will shed that bark and grow a new living bark for itself. Regarding all *smṛtis* Sri Ramakrishna's pithy utterance correctly conveys the Indian idea : "Mughal coins have no currency under (East India) Company rule."

Much of the irrelevance of the world's religious traditions today proceeds from their inability to separate the *Śruti* or the essential from the *Smṛti*; or the obsolete contents, the eternal spiritual truth from the historical socio-political dogmas, due to traditions and their unwillingness to throw overboard the latter which have no more any currency value under the changed conditions. Historian Arnold Toynbee in this respect has nicely put this point when he says : "Thus in our society in our time, the task of winnowing the chaff from the grain in mankind's religious heritage is being forced upon us by a conjunction of social and spiritual circumstances. (An Historian's Approach to Religion).

The philosophy and religion of the Upanisads in their inimitable way point to humanity that 'Eternal Religion'— *Sanātana Dharma*. The Divine Life based on the spiritual illumination as revealed in the Upanisads derives its authority from its truth character and not from any person, be he a saint or even an incarnation; and the truth character

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

of a teaching demands that it be verifiable by all at all times, irrespective of dogma, creed, race. It has a high place for saints and incarnations as examples and teachers of the eternal truths of religion.

Throwing light on this unique characteristic of the eternal religion (*Sanātana Dharma*) as derived from the Upaniṣads, Swami Vivekananda says in his lecture on 'The Sages of India :'

"This is a peculiarity which we have to understand— that our religion of the Upaniṣads preaches an Impersonal-Personal God. It preaches any amount of impersonal laws plus any amount of personality; but the very fountain-head of our religion is in the Upaniṣads which are perfectly impersonal. Persons all come in the *Smṛtis* and *Purānas*— the great *avatāras*, incarnations of God, prophets and so forth. And this also has to be observed that except the religion of the Upaniṣads (which is the basis of Hinduism), every other religion in the world depends upon the life or lives of some personal founder. Christianity is built upon the life of Jesus Christ; Islam upon Muhammed; Buddhism upon Buddha; Jainism upon Jainas, and so on. Our religion in not based on any person but on principles. That you obey your religion is not because it came through the authority of a sage, no, not even of "Incarnation" but because it speaks of the eternal principle of spiritual truth. ... Just as the law of gravitation existed before its discovery and would exist if all humanity forgot it, so is it with the laws that govern the spiritual world."

Upaniṣads speak of the Divine life based on spiritual truth of perennial character—they speak of the eternal religion. Here in lies the distinctive feature of the upanisadic message to modern man in quest of a soul in circumstances radically altered by the progress of science and society.

(To be continued)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The Heart and Soul of India

(Part of the article : "Song of India")

EILEEN JASNOWSKI AND MARION BOOTH

The soul, the truest song of India, is best expressed by the beautiful saint, Anandamayi Ma, commonly called Mataji or Mother. She will be seventy-three in May, yet she hasn't a grey hair on her head and moves gracefully as a dancer. Her words are like poems to the multitudes who seek her *darśana* wherever she goes—and that's all over India. *Darśana* is an unfamiliar word to westerners, but it means a blessing conferred on anyone fortunate enough to be in the presence of a saint. Known for her gentle love to all, her colourful figures of speech, Mataji may answer a question, beginning with an Arabian Nights' turn of phrase. "In the kingdom beyond the mind ... ." Or, in answer to some who are testing her ability to read their minds, she may say, "If you wish to hear with the ears, you must speak with the mouth." Possessed of full yogic powers, she scorns to use them now, using only the universal power of love—as did Lord Krishna, to justify her reputation as "stealer of hearts." No sad saint, Mataji. Her very name means "joy-permeated," and although much is lost in the translation, one doesn't need to understand Hindi to realize her keen wit. She loves all of mankind easily, and she laughs easily—but she can blow cold as the north wind, if the situation arises.

Mataji never asks for money ; never accepts it for herself. Indians traditionally bring flowers and fruits to their holy-ones and Mataji gives them to all who come. She compares herself to the trees that provide shade and fruit to all who ask. And for over forty years, day and night, all manner of men and women have asked for her *darśana*. Queens, maharajas, maharanis, outcasts, VIP's, children, peasants,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

princes, and Prime Ministers. Pandit Nehru was close to Mataji, for his wife, Kamala, was an ardent devotee right up until her death. Preparing for her South American trip and pressed for time, still Indira Gandhi—even as you and I—had the desire for Anandamayi Ma's darśana. The last thing Mataji did before she left New Delhi for her Himalayan ashram at Dehra Dun was to spend half an hour with the Prime Minister and her sons. ....

———

"It is necessary to try and dedicate to the Supreme every single action of one's daily life."

—Mata Anandamayi

Reprinted from: "Detroit and Suburban Life" an American Journal.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Sacred Places of Kashmir, Jammu & Ladakh

A DEVOTEE

(*Continued from the last issue*)

HALADHAR

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं
हलहतिमिति मिलितयमुनाभम् ।
केशवधृतहलधररूप
जय जगदीश हरे ॥*

[Glory to Hari, the Lord of the world, to Keshava, who has taken the form of Haladhara** Wielder of the plough), who has put on the blue garment which has fitted his white body like the river Yamuna, shy and afraid of being furrowed by the plough.]

At a distance of about four kilometers north of Manasbal lake there is a sacred rock on the top of the hillock called Haladhar. The place is called Maktaphikar and is near a village named Ingura rising over a plateau called Hanin.

A religious fair is held at Maktaphikar every year on the day of *Nirjala Ekadashi** which falls on the eleventh day of the bright half of Jyaishtha.

The pilgrims assemble at the spot near the sacred rock and chant in chorus the following words.

बलभद्र हलधर पाल पोणि त्रायो ।

(O Balabhadra, holder of the plough, allow water to flow from below this rock).

When the song is sung all on a sudden a large quantity of water gushes out from underneath the rock and the pilgrims bathe in this sacred water.**

---

* Dashavatarastotram by Jayadeva.

** Haladhara also called Balabhadra was the elder brother of Shri Krishna. He is also believed to be an incarnation of God.

* On this day people fast and do not take even water.

** According to one ancient account the lake called Satisara, which existed in this area, was desicated by Balabhadra by his poughshare.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

MANSAR

नमो देवदेवाय शिवाय परमात्मने ।
अप्रमेयस्वरूपाय व्यक्ताव्यक्त स्वरूपिणे ॥***

(I bow down to Shiva, the God of gods, the supreme soul, who is incomprehensible and who is comprised of both the manifested and the unmanifested.)

Mansar is a small lake beautifully situated in the midst of low-lying hills at a distance of about twenty-seven kilometers east of Jammu town. It is very deep and about one and a half kilometer long and about one kilometer wide. It is regarded as very sacred.

There is a temple of Shiva near the lake.

MARTAND (MATTAN)

सो खण्डिताश्म प्राकारं प्रासादान्तर्व्यधत्त च ।
मार्तण्डस्याद्भुत दानाद्राक्षास्फीतं च पत्तनम् ॥*

(That kind hearted King Lalitaditya built the wonderful temple of Martanda (Sun-god) with its massive walls of stone within a lofty enclosure, and its town swelling with grapes).

The ruins of the once famous temple of the son-god one of whose names is Martanda, is five kilometers east of Ananta Nag in Kashmir Valley. It was constructed by Lalitaditya who ruled in Kashmir from 761 A.D. to 764 A.D. The original temple which existed at this spot is said to have been constructed by Raja Ramdev in about 3000 B. C.** It is on the top of a plateau commanding one of the finest views of Kashmir. The ruins are also very impressive. The place is called Mattan which is a corruption of Martanda. The temple was destroyed by Shikandar-But-Shikan.

Percy Brown in his famous book on Indian architecture writes the following about the temple of Martand.

*** The Skanda Puran, Pravasa Khanda, chapter 22, verse-32.

* The Rajatarangini, fourth Taranga, vers—192.

** See 'Kashmir through the ages' by Gwash Lal Kaul.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"On plan the central structure occupies a rectangle 62 feet long and 35 feet wide, the projecting wings of the portico extending the width of the front to 56 feet. Although the main shrine is a square, the cell in its interior is an oblong 18½ feet by 14 feet placed transversely, while the entire height of this central building was in the vicinity of 70 feet. The quadrangle measures 220 feet long by 142 feet broad; the pillars facing this enclosure being 84 in number, each 3½ feet in height with a space between of 6¼ feet at the base.

"It will be seen therefore that the temple of Martand is a building of average size, but throughout a feeling of a large scale is consistently maintained; as there is nothing small or sparing in its composition. In its appearance of simple dignity, and in the solid nature of its masonry it has something of that power expressed in amphitheatres and aqueducts of the Romans when these seem to form part of the landscape itself. In its prime in the eighth century, few spectacles can have been more enchanting than Lalitaditya's grey stone masterpiece, with its bold trefoil arches, stupendous walls, and elegant arcades, symmetrically elevated against its mountain background, and looking out on the splendour of the everlasting snows."

At a distance of about two kilometers north-west of Mattan are the sacred springs of Bhawan which form Martanda-Tirtha (the sacred pool of the sun-God), Two of the springs called Vimata and Kamata are regarded as the most sacred.* Sacred fish in abundance swarm in the large basins filled up by the springs.

नमः उग्राय वीराय साराय नमो नमः ।
नगः प्रबोधाय मार्तण्डाय नमो नमः ॥**

* See the note on Bhawan in the November 1967 issue of Ananda Varṭa.

** From ṭhe Ramayana of Valmiki.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(Obeisance to the Sun, who is terrible, who is powerful, who stimulates all activities, who travels fast, who makes the lotuses bloom and infuses life into a dead world).

MIRPUR

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

(I bow down again and again to Sri Rama, who is very pleasing to all people, who removes all troubles and bestows all wealth).

Mirpur is on the left bank of the Jhelum river situated about sixty kilometers west of Naoshera town in Kashmir. It is at present under the illegal occupation of Pakistan.

There are many sacred shrines in Mirpur out of which the most noted is the temple of Sri Raghunath. It is not known in what condition the temples are now.

NIL NAG

Nil Nag is a small oval shaped lake situated in a deep hollow on the slopes of a hill lying about thirty-four kilometers southof Srinagar and about six kilometers west of Tasrar Sharif. Its altitude is 68,000 feet above sea-level. The lake is about one hundred meters long and twenty meters wide. It is fed by a number of springs. Nil Nag is regarded as very sacred. It is sacred to Nila Naga.

PAMPUR

नमस्ते भगवन् विष्णो लोकानां प्रभवाप्ययम् ।
त्वं हि कर्ता हृषीकेश संहर्ता चापराजितः ॥

[O Lord Vishnu : I bow to Thee. Thou art the cause of the origin, existence and annihilation of the worlds. O Rhishikesha ! Thou art the doer and Thou art the destroyer unconquered by anyone else.]

Pampur is about twenty-one kilometers south-west of Srinagar. Its ancient name is Padmapura. It is picturesquely situated on the right bank of the Jhelum river where the enchanting saffron flowers grow and spread their fragrance.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The ruins of the once famous ancient temple of Padmashwamin may still be seen in the village of Pampur. It was constructed early in the ninth century by Padma, the uncle of Chippata-Jaypida (802-814 A. D.). The shrine of Shah Hamdan nearby has appropriated some portions of the ancient temple.

On a hilly rock above the village of Uyan, which is at a distance of about five kilometers north-east of Pampur, there is a symbol of the goddess Bhagwati called "Jwalamukhi Chakra". The ancient name of Uyan is Ovana.

NARU

मन्दारमालाकलितालकायै कपालमालांकितकन्धराय।
दिव्याम्बरायै च दिगंबराय नमः शिवायै नमः शिवाय ॥*

(I bow to Shiva (Parvati) and Shiva, Parvati having looks of hair decorated with a wreath of Mandara flowers and being clad in a beautiful garment and Shiva having his shoulders decorated with a garland made up of human skulls and wearing no raiment at all).

Naru is a small village situated about two kilometers south-east of Bidar in the Bring Valley.

There is an ancient shrine of Shiva in the of *Ardhanarishwara* at Naru by the side of a small spring. Lord Shiva revealed himself to Brahma in the form of half male and half female (*Ardhanarishwara*) when Brahma worshipped him in order to receive the power to create more.

About a kilometer towards south-west from this place there is a sacred spring called Swedanaga.

तद्वीतव्यतिकरेकमद्रितनया देहेन मिश्रीभवन्निष्प्रत्यूहमिह
व्याप्तोहतु वपुः स्थाणोरभद्राणि वः ।*

(May that body of the Immovable (Shiva) from whom there is no separate existence, which is united with the body

* Ardhanarinateshastotram, verse 5, Vrihatstotraratnakarah.

* The Rajatarangini, fourth Taranga, verse—1.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

of the daughter of the Himalayas (Parwati) and which knows no obstacles, the body of him on whose matted hair the serpent also seems to embrace its own female as it entwines its body with the plaited hair of Parvati which resembles in its fall and dark splendour the body of a female snake, remove misfortunes from you who are in this world.)

PANZATH

संपूर्ण : पूर्णमहिमामर्त्यमाहात्मयमन्दिरम् ।
पञ्च हस्ता प्रदश्चक्रे मठं सुकृतकमंठः ।।†

(He (King Suravaraman), who was accomplished, full of (spiritual) greatness and devoted to pious works, granted the *agrahara* and built a *Matha* (Monastery or tower) which was an abode of divine greatness at Panchahasta).

Panzath is a village in Divsar Pargana.

Its ancient name is Panchahasta. There is a large spring in the vicinity of the village which is regarded as very sacred. It is said that when Parvati disappeared from Kashmir for fear of defilement by the touch of sinners, Kashyapa by his prayer to the goddess brought her back in the guise of the spring (Naga) at Panzath (Panchahastaka Naga).

The Nilamata tells about the sanctity of the spring in the following verse.

पञ्चयज्ञान् अवापोति स्नात्वा वै पञ्चहस्तके ।
प्रत्यहं ये वितिर्दिष्टा गृहस्थक्य महीपते ।।*

(O King ! By bathing in the sacred spring of Panchahasta one gets the benefit of performing the five sacrifices which are required to be performed daily by every householder).

PATAN

नया समं पुरवरे सुरराजोपम नृपः ।
नस्मिन् शंकरगौरीशसुगन्धेशौ विनिर्ममे ।।†

† The Rajatarangini, fifth Taranga, verse—24.
* The Nilamata, Sloka 1291.
† The Rajatarangini, fifth Taranga, verse—158.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(Together with his queen Sugandha king Shankaravarman, resembling Indra, built in that fine town the temples of Shiva called Shankaragourisha and Sugandhesha).

Patao is an ancient town situated about twenty-seven kilometers west-north-west of Srinagar and about twenty-two kilometers south-east of Baramula in the Kashmir valley. The ancient name of the place is Shankarapura. It was founded by King Shankaravarman (883 901 A.D.).

There are remains of three ancient temples of Shiva at Patan. They were dedicated to Shankaragourishwara, Sugandheshwara and Ratnavardhaneshwara. They were constructed by King Shankaravarman, his queen Sugandha, and his minister Ratnavardhana respectively.

PAYER (Payesh)

Payer also called Payesh, is an ancient village picturesquely situated on the banks of a stream about eighteen kilometers south of Pampur and at the same distance north-east of Shupiyan in Kashmir. It is about thirty kilometers south of Srinagar.

Near the bank of the stream towards the south of the village there is a beautiful ancient shrine of Shiva. Its origin is lost in antiquity.

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्वविद्याविधतये भुतानां पतये नमः ॥ *

(I bow to Shiva, to Rudra, I bow to him who is powerful. I bow to the Lord of all beings who is the master of all knowledge).

NAUBANDHANA PEAK

हृदं च शिखरं पश्य देशे स्मिन्नृप
पश्चिमे ।
नौबन्धन इति ख्यातं पुण्यं
पापभयापहम्॥ **

* Shrimadbhagawatam—eighth Skanda, sixteenth chapter, thirty-second sloka.

** The Nilamata, verse—41.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(Vaisampayana said to Janmejaya: "O King ! Look at this mountain peak also which is situated to the west in this region. It is called Naubandhana, which is sacred and which relieves people of sin and fear.")

The Naubandhana Peak is situated between Sedan and Hirpura. Sedan lies at the foot of the Pir Panjal range about eight kilometers south-west of Shupiyan, which is about forty-six kilometers south of Srinagar. Hirpura is about eleven kilometers west-south-west of Shupiyan along the road leading to the Pir Panjal Pass. The peak is about 15500 feet above sea level.

Naubandhana Peak is regarded as very sacred. It is said that during the great deluge (*Mahapralaya*), the boat, in which some of the creatures of the world took shelter with the sacred Vedas with them, and were saved from utter destruction by Lord Vishnu, who incarnated in the form of a huge fish ('Matsya Avatar') and swam in the vast expanse of water which submerged this earth. That boat was tied to Naubandhana Peak. It is also said that the great sage Kashyapa passed a thousand years of meditation upon this hill. He propitiated Lord Shiva and secured his help for the desiccation of the Kashmir valley.

At the foot of Naubandhana Peak lies the sacred lake Kramasara the modern name of which is Konsar Nag. It marks a footstep of Lord Vishnu.

प्रलयपयोरधिजले धृतवानसि वेदं
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
केशवधृतमीनशरीर
जय जगदीश हरे ॥ *

(O Keshava, in the vast expanse of water that submerged the world during the deluge ('*pralaya*'), you saved the Vedas by taking the form of a fish. It was quite befitting of your unblemished character. O Hari. Lord of the world, glory be to you).

* Dashavatarastotram by Jayadeva, verse—1.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mātri Lilā

(*July—September* 1969)

Mataji was in Poona when the last Mātri Līlā was written. We have in the last issue of Ananda Vārtā reported about the first half of her stay there. On June 30th the *Rāsa Līlā* party left after having enacted at Poona the complete life of Sri Chaitanya Mahaprabhu with many interesting details that were new to most people. On the last day there was a special celebration. For the next fortnight, Sri Haribabaji was reading out from the life of Sri Chaitanya Deva in place of the dramatic performances.

In the afternoons, Mataji would sometimes go for a stroll in the grounds of the Poona University. There is a beautiful place surrounded by banyan trees there. One day, Mataji sat down under a very old banyan tree. The branches of a banyan tree stretch down to the earth and take root. In this way the tree gradually assumes a gigantic size and can give shade to thousands of people. Mataji pointed out how the branches at first are at a loss where to get rooted until they finally reach the ground. Similarly, the *sādhaka* goes on practising, feeling as if in a void until at last he touches ground. Then only his *sādhana* proceeds purposefully and with new strength. Mataji then became silent and sat in a contemplative pose like a Buddha. All present sat in meditation for sometime. It so happened that not a single person passed by during that period. Then Swami Saswatananda read out an episode from the life of Lord Buddha, when he sat down under the Bodhi tree, saying : "I shall not rise until I have attained to Enlightenment." Another day Mataji took Didima and Didi with a few others to see the tree. Again all stood meditating in silence. In the close vicinity there is the Old Government House, which had to be abandoned because several unfortunate accidents happe-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ned to people staying there. It was believed to be a haunted house. One day Mataji saw the apparition of an Englishman who looked rather pitiful at first but then changed into a figure of light. It may be that this was the spirit who had haunted the house and had now been released. On July 15th, just before Sri Haribabaji left Poona, Mataji took him and his party to the banyan tree. Again all stood in silent meditation for a few minutes.

On July 16th Mataji left for Barsi. It is a town in Sholapur District near Pandarpur, which is the most sacred place of Maharashtra. All pilgrims to Pandarpur have to pass through Barsi. Mataji and her party were the guests of Sri Kantilal Madhvani, a Gujarati family, related to one of the ladies of our Ashram. For the first time they had come for Mataji's *darśana* recently in Bombay. The old mother dreamt that Mataji had come and stayed in her house with a large number of devotees. Thereupon the old lady pressed Mataji and Sri Haribabaji to visit Barsi, but Sri Haribabaji was not willing. However, as soon as he left Poona, Mataji gave in to the entreaties of the old lady, who by the way is a heart patient and one of her sons is also very ill. A new room had been built specially for Mataji on top of an outhouse which was entirely renovated to accommodate the Ashram girls. Elaborate arrangements were made for the comforts of the large party that accompanied Mataji. Two daughters of the family had arrived from Africa to welcome Mataji in there home at Barsi. The wonder was that both patients kept quite fit and active during Mataji's visit. At Kurudwar, 20 miles from Barsi, Mataji was received by a profusely decorated car, with a band playing religious tunes, with garlands and fruits and a considerable assembly of people waiting eagerly for Mataji's *darśana*. At Barsi, satsang was held twice daily, attended by a large crowd. Mataji was in a very communicative mood and also sang every single day. There is a *Chakratīrtha* and an old well at Barsi and connected with them a legend about the pious King Ambarish, an ardent

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

devotee of Lord Vishnu, who is supposed to have thrown down His *Chakra* in defence of the King. Mataji laughingly remarked that "*Chakradhārī*" (Holder of the Chakra, namely Lord Vishnu) had drawn her to this spot like a magnet; so the dream of our hostess bore fruit in the material world.

On July 18th Mataji visited the temple which contains a statue of Lord Vishnu in black stone with King Ambarish sitting at His feet. The Lord's hand is placed on the King's head in blessing When offered a boon, he had prayed that the Lord's hand might always remain on his head, he had no other desire. Special *pūjā* was performed at the temple in Mataji's presence, attended by an immense throng of pilgrims. On the 20th Mataji again went to the temple, and stood near the image. Unfortunately people have the bad habit of throwing offerings at the deities. A beetle-nut meant for Lord Vishnu struck the back of Mataji's head. She said: "The Lord wanted to teach you not to throw things at Him. It hurts Him just as it hurts me."

Before Mataji left Barsi, the old mother of the house performed an elaborate *pūjā* exactly as she had done in her dream.

On July 22nd, Mataji with entire party halted at Sholapur for a few hours at the invitation of Sri Pratap Singh. There also a room had been specially built for Mataji and painstaking preparations made for her visit. At the satsang Mataji sang and related about Barsi. From Sholapur she returned to Poona, where she stopped from 23rd to 26th July. On the 25th the opening ceremony of a new self-contained cottage for Mataji's use took place. *Akhanda Rāmāyaṇa* had already been performed there in Sri Haribabaji's presence. On the 26th, foundation stones were laid for a *satsang* hall and a Krishna Temple in the Ashram grounds. The same evening Mataji and her party left for Ahmedabad via Bombay where Mataji halted for a few hours.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mataji was visiting Ahmedabad after several years. She put up, as usual, in the compound of the Munshaw family. A very beautiful, artistic ceremony to welcome her had been arranged. Young girls, dressed in Gujarati style, carrying brass pitchers on their heads, stood in two long lines on both sides of the path, singing Gujarati songs. A conch was blown at Mataji's approach. Everyone was deeply moved. A large pandal had been erected for the *satsang*. On July 29th, *Guru Purnima* was celebrated from early morning. Didima's *pūjā* was performed and people queued up to do individual *praṇāma* to Mataji. Everything was extremely well-planed. Many had come from great distances to pay homage to Mataji and Didima on that auspicious day.

One day, the Governor of Gujarat, Sriman Narayan had a private interview with Mataji for a whole hour. Mataji followed his invitation to Government House where the Gujarati Congress of men and women born in free India had assembled for Mataji's *darśana*. At the age of 21 they all pledge themselves to serve India. The entire elite of the city was present on the occasion of Mataji's visit. Brahmachari Brahmananda and Pushpa delighted them by their *bhajans* and Mataji also sang. At the request of the young people Mataji spoke to them. She enjoined on them to lead lives dedicated to the service of God in man. Mataji then asked them to fix 15 minutes at a definite time of the day or night to be given to the contemplation of God or Reality for their whole lives. If possible one should sit in meditation during that time, but even if one happened to be travelling or sick or attending on a patient or in any other way prevented from sitting still, one should, under all circumstances whatever, sustain the remembrance in one's mind and refrain from speaking during those 15 minutes. By the strict and punctual adherence to this practice, one would finally be automatically reminded of it even in the event of extreme joy, sorrow or accident. Moreover, every-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

one participating in this stream of unbroken meditation would be benefited by the combined efforts of all the others taking part. Wherever Mataji had gone, in Bombay, Poona, Barsi she urged people to take part in this "*Akhanda Bhagavat Smriti*" (The Perpetual Remembrance of God). A young girl came to Mataji at Ahmedabad, who was shortly going to study at an American University. Mataji asked her also to make propaganda amongst her fellow students for this cause.

Mataji further accepted an invitation to an orphanage called "*Shreyas*", which is run by Srimati Madalasa Narayan, wife of the Governor and daughter of the late Jamnalal Bajaj. Mataji was shown round the entire institution. Mostly widows are employed to act as mothers to the orphans. The children sang to Mataji and for a few minutes there was silent meditation. Mataji asked the children whether they were her friends and then told them to observe five things as she usually asks children to do, viz (1) To remember God first thing on waking and last thing before going to sleep. (2) To obey their parents and elders. (3) To speak the truth. (4) To study well. (5) Having observed those four things, to play, run and jump as much as they pleased.

On August 1st, Mataji travelled to Bhavnagar at the invitation of the Maharaja and Maharani of that State. Mataji and her companions were put up in a very spacious Girl's School, which was renamed "*Mātri Mandir*" in Mataji's honour after her visit. All arrangements were excellent. *Satsang* was held twice daily : in the morning on the lawn of the palace called "Nilam Bagh" and in the evening in the huge school compound. Several thousands of people flocked every evening. The enormous congregation was well organized and everything proceeded in great quiet and order. Several hundred students of the school requested Mataji to talk to them. On this occasion also Mataji advocated the "*Akhanda Bhagavat Smriti*". At the end she distributed

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

sweets to all. On August 5th, Mataji returned to Ahmedabad for one night, leaving for Bhopal on the 6th evening.

On the 7th morning, Mataji alighted in Bairagarh near Bhopal and occupied the Ashram, which Sir and Lady Datar Singh had built for her on their estate in 1965. This was Mataji's third visit to the Ashrām situated in beautiful natural surroundings. In spite of the unabating rain throughout Mataji's sojourn, all the dignities of Bhopal came to pay their respects to her and some of them had private talks: Sri Reddy, the Governor and his wife, the Chief Minister with his family, some other Ministers and Ex-Ministers, several high officials as well as Rajas and Ranis of neighbouring states. A few old devotees arrived from Jubbulpore and other places in the M.P. to spend a couple of days with Mataji. Every morning Sir Datar Singh would read out from a Sikh Scripture. At night after *ārati* Mataji replied to questions. The night before she left, some of the people of Bhopal complained that they would feel very lonely after Mataji's departure. In response, the Ashram was by a simple ceremony and kirtan inaugurated as a permanent-one. It was decided to continue regularly the daily reading of Sikh scriptures and to hold every 2nd Sunday of the month a meeting with *kīrtana pāṭha*, silent meditation etc. for all who wished to gather. On the night of August 10th Mataji left for Vrindaban, remaining there from 11th to 13th of August only. She met Sri Haribabaji. *Rāmalīlā, Rāsa līlā* and *Rāmārchā* were performed during her stay. From August 15th to 20th Mataji stopped at Varanasi.

It had been expected that Mataji would spend *Jhūlan and Janmastami* in Vrindaban. Instead of this she was present for both festivals in Kishenpur. Mataji usually blesses Dehradun with her presence during the two hot months after her birthday celebrations. This summer Mataji had been to Poona and came to Dehradun only for sixteen days, namely from August 21st to September 6th. She resided in her new

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

house in Mr. and Mrs. Khaitan's compound next to Kalyan-van where she could enjoy a certain amount of much needed rest and privacy after travelling. At 6 p. m. she would daily give *darśana* in the Kishenpur Ashram. However, there were so many festivals and celebrations that Mataji was available for very much longer than one hour on most days. Mataji was in an excellent mood throughout her stay, full of energy and intensity, notwithstanding her indifferent health. She seemed to compress into those sixteen days what she usually gives to Dehradun in two months. So much happened that was interesting and remarkable, it was difficult to keep pace. From the 23rd to the 26th *Jhulan*, (the swing festival) was celebrated every evening. A new and much appreciated item of the programme was a daily talk by Brahmachari Nirmalananda. On the first day he very beautifuly explained the significance of this festival. It is the human mind which is symbolized by the swing. The four strings by which it is held and the fifth by which it is pulled may be likened to the five senses, sight being the sense that has the strongest pull. When God occupies the ever swinging mind it becomes dedicated to Him and thus stilled. After the talk there was beautiful music, *pūjā* and *ārati*. On August 26th, *Jhulan Purnima*, the *kirtana* continued all night, interrupted only by half an hour's midnight meditation, which was held in Mataji's presence in the open space in front of the temples. In the evening and all next day *Rakshā Bandhan* was observed. Mataji accepted *rākhis* with great patience and in exchange gave another *rākhi* to each one approaching her. On the 27th morning the swing was dismantled while all joined in the song : "*Jhule, Jhule Nandalāla*" with great alacrity and Mataji distribated the fruits that had been suspended from the swing. In her joyous mood she moved around the hall swinging with every woman and blessing the men by touching their heads. On August 28th, *Akhanda Rāmāyana* started in the Ashram hall ending on the 29th at midday. On August 31st and

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

September 1st there was another recitation of the whole of the *Rāmāyana* at Sadhan Ashram, Jakhan. There is an interesting story to it.

Several years ago, Sri R. C. Sood made a gift of his house and garden (at a distance of about half a mile from the Kishenpur Ashram) to the Shree Shree Anandamayee Sangh and called it 'Sadhan Ashram'. His aged mother, he and his wife remained there as *vanaprasthas* and caretakers. He built a set of rooms for Mataji's use on top of the house, the rest of the roof serving as a suitable place for satsang amongst picturesque surroundings. Mataji has stayed there on several occasions. When Mataji came to Dehradun for one day last February, she halted at Sadhan Ashram for a few minutes before proceeding to Kankhal. She had the *kheyāla* that she would not see Sri Sood's wife again, who was ailing. In the second half of June, while Mataji was in Poona, Sri Sood dreamt that Mataji told him: "You have not had any reading of the Ramayana in your house for a long time. Do it every Sunday." Sri Sood therefore promptly started *Akhanda Ramayana* on the following Sunday and his wife, inspite of her failing health, attended. On July 4th she peacefully passed away in her sleep. When Mataji received the news, she decided that a recitation of the whole of the Ramayana should be held at Sadhan Ashram during her next visit to Dehradun. On August 31st the day the Ramayana was started, Mataji went to Sadhan Ashram at 8 a m. to supervise herself all arrangements and be present at the opening ceremony before the reading. She returned there again in the afternoon. The evening satsang and Kirtan were held on the roof, while the Ramayana conti nued downstairs. Mataji spent the night in her room there. In the morning she again attended the Ramayana. When Udas rolled up Mataji's bedding, she found a small white snake below the bedsheet and durrie, just where Mataji's feet had been. Wrapped in paper she took it to Mataji and then had it thrown into the jungle. Mataji knew that a

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

snake had lain curled up below her feet all night. Mataji asked for the snake and strangely it was found still moving about on the paper. Someone suggested to keep it in a glass jar with a little *Gangajal.* At about 10 a.m. Mataji went to Kishenpur to receive Sri G.S. Pathak, the new Vice-President of India, who with his wife and other members of his family was paying a visit to Mataji, first thing after having taking over office. He and his family have been in close contact with Mataji for many years. They arrived during the morning satsang, listening to *bhajans* with great delight. Mataji also sang herself for a few minutes and then told them about the Sadhan Ashram and the snake. We can only presume that the spirit of the late Sm. Sood had come in the guise of the snake to lie under Mataji's feet and be present at recitation of the Ramayana. At nearly mid-day Mataji and many people present returned to Sadhan Ashram to witness the completion of the reading No sooner was the *Arati* over than someone brought the news that the snake had just died. Mataji at once sent Dasu to Brahma Kund at Hardwar to give *jalsamādhi* to the snake wrapped into the red silk cloth that had been offered at the *Arati.* Mataji said : "That day the body died, but this was the death of death". Scarcely ever have we heard Mataji make a statement of this kind. Everybody was profoundly moved.

Sri G.S. Pathak and his family as well as his staff, including the security staff had lunch at the Ashram and took leave of Mataji at 3.30 p.m.

On September 3rd, *Janmastami* (Sri Krishna's birthday) was celebrated. Mataji gave *darśana* in the packed hall for an hour in the evening and sat by the side of the priest throughout the elaborate puja that started at midnight and took full three hours. Kirtan was sung from the early evening until 3·30 a. m. A *Nārāyana Silā* had been placed into a large hollowed and closed up cucumber, which Mataji held in her hands. At midnight the *Nārāyana Silā*

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

was taken out and worshipped in the traditional way alongside with *vigrahas* of Sri Krishna and Radha. As 3·30 a m. Mataji sat down in the hall and distributed *prasāda*, to all present.

Later in the morning, at about 11 a. m., *Nandotsava* (the festival of the riotous joy of the cowherds over Krishna's birth) was observed in the open in front of the temples. Fortunately the heavy rain had subsided for a while just at the right time. As usual, a few devotees were dressed up and danced and as the climax let fall a pot full of curds that was smashed into thousand pieces. Everyone stoodround singing merrily. ThenMataji stood on the temple veranda and threw curds into everyone's mouth amongst much laughter and cheering and finally distributed fruits.

One afternoon during Mataji's sojourn at Dehradun, some of the Sannyasis of the Divine Life Society at Rishikesh came bringing with them about fifteen South American members of the Divine Life Society of Venezuela. They sang to Mataji in Sanskrit, although this was their first visit to India. Mataji said a few words to them and blessed them all.

Another day an old American gentleman, the head of a Yogic School in New York came for Mataji's *darśana*. He related, how years ago he had been fascinated by a picture of Mataji found on a piece of old newspaper. He kept the picture with him ever since, although he had no idea whom it represented. Only three years later someone told him whose photo it was, but he did not know where Mataji could be found. Much later he learnt a few details about Ma and now at last he had come from Rishikesh to meet her in person.

Mataji had been expected to leave for Varanasi via Kankhal on the 7th. Only on the 6th morning we heard that due to Sri Haribabaji's illness, Mataji had changed her plans and was leaving that very afternoon by car for New Delhi where Sri Haribabaji had been brought down from Vrindaban.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mataji stopped in Kankhal for a short while and alighted in our Delhi Ashram at about midnight. Sri Haribabaji was waiting for her. She persuaded him to stay at the Willingdon Nursing Home for a few days for medical examination and subsequently went to see him there daily. Sri Haribabaji's devotees performed uninterrupted Kirtan in our Ashram day and night for his recovery while he was at the Nursing Home. We are happy to say that his condition improved and he has returned to Hoshiarpur. Sir Datar Singha also happened to be a patient at the same hospital. Mataji paid a visit to him too. Thereafter he suddenly began to recover and he was soon able to leave the Nursing Home.

During Mataji's short stay in Delhi, Sm. Indira Gandhi, the Prime Minister, in spite of her hectic programme, paid a visit to the Ashram at Kalkaji and was closeted with Mataji for about half an hour.

Mataji left for Varanasi on the 10th morning reaching there at night. During the period from 12th to 25th two Bhagavata Saptahs were held one after another from September 12th. We hope to report in greater details about them in our next issue.

Durga Puja, Lakshmi Puja, and the Diwali are all expected to be celebrated in Varanasi this year in Mataji's presence while the twentieth Samyam Mahavrata is proposed to be held at Vrindaban from 17th to 23rd November.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Mataji stopped in [illegible] for a short while and alighted in our new Ashram at [illegible] where [illegible] Haribabaji was waiting for her. She persuaded him to stay at the Willingdon Nursing Home for a few days for medical examination and subsequently went to see him there daily. But Haribabaji's devotees performed uninterrupted Nama-kirtan in our Ashram day and night for his recovery, while he was at the Nursing Home. We are happy to say that his condition improved and he has returned to Hoshiarpur. [illegible] also happened to be a patient at the same hospital. Mataji paid a visit to him too. Thereafter he gradually began to recover and he was soon able to leave the Nursing Home.

During Mataji's short stay in Delhi, Sri Indira Gandhi, the Prime Minister, in spite of her hectic programme, paid a visit to the Ashram at Kalkaji and was closeted with Mataji for about half an hour.

Mataji left for Varanasi on the 10th morning reaching there at night. During the period from 12th to 23rd [illegible] Bhagavata Saptahs were held one after another from September 12th. We hope to report in greater details about them in our next issue.

Durga Puja, Lakshmi Puja and the Diwali are all expected to be celebrated in Varanasi this year in Mataji's presence while the [illegible] Samyam Mahavrata is proposed to be held at Vrindaban from 17th to 23rd November.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SHREE SHREE ANANDAMAYEE SANGHA
LIST OF PUBLICATIONS

Hindi

Mātri Darshan—"Bhaiji"	3.00
Sad Vāni "	1.00
Sri Sri Ma Anandamayee—Gurupriya Devi :— Vol. I to XV	40.50
Ma Anandamayee—Dr. Pannalal	3.00
Akhanda Mahāyajña—Gurupriya Devi	2.50
Kirtan Rasa Swarūpa	6.00
Sankirtan, Stav, Aratī	0.50
Amar Vani	6.00

Bengali

Matri Darshan—"Bhaiji"	3.00
Sad Vāni—"Bhaiji"	1.50
Mātri Vāni	0.75
Sri Sri Ma Anandamayee—Gurupriya Devi :— Vol. I–XII	30.50
Ma Anandamayee Upadeshamrita Sangraha	1.50
Akhanda Mahāyajña " "	2.50
Kirtan Rasa Swarūpa	6.00
Suno Bali Maer Kotha—Sailesh Brahmachari	1.25
Mātri Lila Sankirtan	0.31
Anandamayee Ma—Ganga Samiran	2.50
Namavali "	0.50
Amar Vani	10.00

Gujarati

Matri Darshan—"Bhaiji"	1.50
Sri Ma Anandamayi—Na—Sannnidhyama Vol. I—Containing Bhaiji's "Sat-Vani" and "Sri Ma Anandamayi Lila Katha" by Swami Bhagavatananda Giri	In Press
Sri Ma Anandamayi-Na-Sannidhyama—Vol. II—by Swami Bhagavatananda Giri	2.00
Amrit Vani—Br. Dattatreyanand	2.00

English

Mother As Revealed to Me—"Bhaiji"	4.00
Mātri Vāni (Sayings)	1.50, Special edition 2.50
Words of Sri Anandamayee Ma	3-00, " " 5.00
Mother as seen by her devotees	5·50, " " 6.50

Photos etc.

Photos—various sizes	0.50 to 15.00
Lockets	1.50
Album	2.50

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्री आनन्द मयी संघ

ॐ मा

मातृ शरणं

Registered with the Registrar of Newspapers for India under No. N. 4726/57

CC-0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi